पालि साहित्य का इतिहास

हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला—७६

पालि साहित्य का इतिहास

लेखक
स्वर्गीय महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

*

हिन्दी समिति, सूचना विभाग
उत्तर प्रदेश, लखनऊ

प्रकाशकीय

महापण्डित (स्वर्गीय) श्री राहुल साकृत्यायन द्वारा प्रणीत इस ग्रन्थ मे बौद्ध धर्म-सम्बन्धी कितनी ही महत्त्वपूर्ण कृतियो की चर्चा की गयी है और भगवान् बुद्ध के वचनो, उपदेशो एव उनके जीवन की कतिपय विशिष्ट घटनाओं का मनोरजक ढंग से विवेचन किया गया है ।

राहुल जी किस तरह पालि साहित्य और बौद्धधर्म के विद्वानो के सम्पर्क मे आये, इस पर उनकी पत्नी श्रीमती कमला साकृत्यायन ने यथेष्ट प्रकाश डाला है । बौद्ध धर्म के विशेष अध्ययन की तीव्र इच्छा उनके मन मे लद्दाख की यात्रा के बाद उत्पन्न हुई । इसके लिए उन्होंने न केवल भारत के ही बौद्ध तीर्थों का अटन किया, वरन् लंका, नेपाल, तिब्बत आदि के भी विभिन्न स्थानों का परिभ्रमण किया । तिब्बत की यात्राओ मे उन्हे प्रभूत सामग्री मिली और कितने ही मूल्यवान् सस्कृत ग्रन्थो के मूल तथा अनुवाद उपलब्ध हुए जो भारत मे लुप्त हो चुके थे । उन्होने अग्रेजी, फ्रेंच आदि भाषाओ मे प्रकाशित पुस्तको तथा जर्नलो के पृष्ठो को भी छान डाला और पत्राचार, भेंट-समागम आदि के सहारे भी अपने बौद्ध धर्म-सम्बन्धी ज्ञानभण्डार की अभिवृद्धि की । इस विषय पर उनके द्वारा लिखित दर्जनो ग्रन्थ इस बात के प्रमाण है । प्रस्तुत रचना भी उनके इसी गंभीर अध्ययन का परिणाम है । इसमे बुद्ध भगवान् के वचन, उनसे पूछे गये अनेकानेक प्रश्नो के उत्तर और गाथाओ के वर्णन ऐसे ढंग से दिये गये हैं, जिनसे मनोरजन भी होता है और साथ ही ऐसे उपदेश भी मिलते

है, जिनसे जीवन को कल्याणकारी दिशा मे मोड़ सकने मे अभीष्ट सहायता मिलती है।

शीघ्रता मे लिखी जाने के कारण इसमे कुछ त्रुटियाँ रह गयी थी, जिन्हें दूर करने मे काशीस्थ सस्कृत विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री लक्ष्मी-नारायण तिवारी ने अत्यधिक परिश्रम किया है। इसके प्रूफ-सशोधन मे भी उन्होने हमारी सहायता की है, जिसके लिए हम हृदय से उनके अनुगृहीत हैं।

ठाकुरप्रसाद सिह
सचिव, हिन्दी समिति

बौद्ध-साहित्य को राहुल जी की देन

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही लिखा गया है कि आज से सौ वर्ष पहले पालि नाम की कोई भाषा नही थी। सदियो से चटगाव और हिमालय के कुछ इलाकों के लोगो के सिवा बौद्ध धर्म और पालि भाषा का नाम भी भारत भूल बैठा था। बारहवी शताब्दी मे जयदेव ने दशावतार मे बुद्ध को एक अवतार बना दिया था। बुद्ध का नाम परवर्ती काल मे कभी-कभी सुनाई पड़ जाने पर भी पालि भाषा का नाम शायद ही सुनने मे आता था। चटगाँव के बौद्ध अपने धार्मिक ग्रन्थ मूल भाषा पालि में पढ़ते थे, किन्तु और कही इनके अस्तित्व का पता न चलता था।

सन् १८८० ई० के बाद चण्डीचरण सेन, नवीनचन्द्र सेन, गिरीशचन्द्र घोष ने बंगला मे बुद्ध की जीवनी, उन पर कविताएँ और नाटक लिखे। इसके कुछ बाद ही बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान और बौद्ध तीर्थों के उद्धार के उद्देश्य से अनगारिक धर्मपाल कलकत्ते मे रह कर अपना काम करने लगे। भारत की राजधानी मे बुद्ध, बौद्ध धर्म, पालि भाषा और साहित्य का नाम अब कुछ अधिक सुनने मे आने लगा। विलायत से मैक्स-मूलर ने (Sacred Books of the East) में पालि के कितने ही ग्रन्थो के अग्रेजी अनुवाद प्रकाशित कराये। लका के सिविलयन रीज डेविस दम्पती ने पालि टेक्स्ट सोसायटी स्थापित कर मूल त्रिपिटक और उसका अंग्रेजी अनुवाद छापना शुरू किया। वसिलियेफ और उनके शिष्य मिनाएफ ने रूस मे बौद्ध साहित्य का काम आरम्भ किया था। १८८० ई० के बाद ही रूस की तत्कालीन राजधानी सेन्ट पीटर्सबुर्ग मे 'बिब्लिओतेका बुद्धिका' ग्रन्थमाला मे संस्कृत, तिब्बती आदि के बौद्ध ग्रन्थ उनके अनुवाद श्चेर्वात्स्की, सिलवाँ लेवी, योगीहारा, डेनीसन रास आदि के सम्पादकत्व

मे निकलने लगे। फ्रांस, बेलजियम, जर्मनी भी इस दिशा मे काम करने लगे।

इसी समय चटगांव-निवासी और दार्जिलिंग प्रवासी शरत्चन्द्र दास 'बुद्धिस्ट टेक्स्ट सोसाइटी' स्थापित करके संस्कृत, तिब्बती और अंग्रेजी में बौद्ध साहित्य का सम्पादन और अनुवाद प्रकाशित करने लगे। दास ने दो-दो बार तिब्बत की यात्रा की थी, वह तिब्बती के बहुत बड़े विद्वान् थे।

फरीदपुर (पूर्वी बंगाल) निवासी महामहोपाध्याय सतीशचन्द्र विद्याभूषण संस्कृत, तिब्बती और पालि के महान् विद्वान् हो गये है। कलकत्ता संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल रहते समय उन्होंने बड़े परिश्रम से पालि पढ़ी और कलकत्ता विश्वविद्यालय से इस विषय में एम० ए० करना चाहा। उन दिनों विश्वविद्यालय कितने ही विषयो मे एम० ए० की परीक्षा तो लेता था, लेकिन उनके पढाने की व्यवस्था वहाँ न थी। पालि का प्रश्नपत्र बनाने और परीक्षक बनने के लिए विश्वविद्यालय की ओर से रीज डेविड्स साहब को लिखा गया। उन्होंने लिखा कि वही कलकत्ते मे यह काम बडी आसानी से विद्याभूषण महाशय से कराया जा सकता है। बाद मे उन्हे लिखा गया कि परीक्षार्थी स्वय वे ही है, तो वे प्रश्नपत्र बनाने और परीक्षक बनने के लिए सहर्ष तैयार हो गये। आगे चल कर भारत में पालि के प्रथम एम० ए० यही विद्याभूषण कलकत्ता विश्वविद्यालय में पालि के प्रथम अध्यापक भी रहे। उनके बाद सर आशुतोष मुखर्जी के प्रयत्न से विद्याभूषण की जगह धर्मानन्द कौसम्बी अध्यापक नियुक्त हुए। न जाने कितनी शताब्दियों के बाद पालि तो अपने देश मे फिर जड़ जमाने का मौका मिला। इसके बाद तो कलकत्ता विश्वविद्यालय के अन्तर्गत कितने ही स्कूलो और कालेजो मे पालि पढाने की व्यवस्था हुई।

इस शताब्दी के पहले दशाब्दी से ही हिन्दी मे बुद्ध की एकाध रचनाओं के अनुवाद और जीवनियां तथा धम्मपद का अनुवाद एवं यदा-कदा पत्रिकाओ मे एकाध लेख देखने मे आने लगे।

आर्य मुसाफिर विद्यालय (आगरा) से निकलने के बाद राहुल जी और १९१७ मे मिश्नरी तैयार करने के प्रयास मे लगने के पहले अपने जीवन के भूलभुलैया वाले अध्याय में लोगो से मिलते-जुलते और व्याख्यान देने पहुँचे । बौद्ध भिक्षुओ की धर्म-प्रचार की लगन के बारे मे वे बहुत बार व्याख्यान सुन चुके थे । नालन्दा-जैसे धर्मप्रचारक पैदा करने का केन्द्र चाहिए, इस विचार का अकुर बडी मजबूती के साथ उनके हृदय मे जम चुका था । इसलिए बौद्ध भिक्षु से मिलने और विहार देखने के लिए जा पहुँचे । वहाँ स्वामी बोधानन्द से ईश्वर वेद आदि के अलावा बौद्ध साहित्य त्रिपिटक के बारे मे भी बातचीत हुई । उन्होंने बौद्ध साहित्य पर बगला मे छपी पुस्तको और बगीय बौद्धो की मासिक पत्रिका "जगज्ज्योति" का पता दिया । पालि त्रिपिटक के पते के बारे में अनगारिक धर्मपाल से लिखा-पढी करने को कहा । इस सक्षिप्त साक्षात्कार के बारे मे राहुल जी ने लिखा है कि "उस वक्त यह पता नही लगता था कि मेरे जीवन के विकास मे इस साक्षात्कार द्वारा ज्ञात बाते खास पार्ट अदा करनेवाली है।" (मेरी जीवन-यात्रा, भाग १, पृष्ट २७६, इलाहाबाद, १९४६ ई०) ।

आगे लिखने पर धर्मपाल ने बर्मी, सिहली, स्यामी अक्षरो मे छपे त्रिपिटक-ग्रथो के प्राप्तिस्थान के पते दिये, तो राहुल जी ने सिहल और बर्मी लिपि मे छपे कुछ पालि-ग्रथ मगा भी लिये । महाबोधि सोसाइटी (कलकत्ता) से डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण का अग्रेजी अनुवाद सहित नागरी अक्षरो मे छपा "कच्चान व्याकरण" भी मगाया, जिससे सिहली, बर्मी और स्यामी लिपिया सीखना आसान हो गया । वे मिश्नरी-तैयारी करने के लिए महेशपुरा मे रह रहे थे । वहा पढानेवाला कोई नही था, फुर्सत के समय वे स्वय कुछ पत्रो को पढ़ते ।

१९१९ ई० के मार्शल ला के दिनो को पजाब मे बिता वे चित्रकूट की छाया मे घूमते रहे (१९२०) । इसी समय उन पर घुमक्कड़ी का भूत सवार हुआ, तो बौद्ध तीर्थों को देखने निकल पड़े । सारनाथ होते हुए कुशीनगर

देखा और वहा से लुम्बिनी-कपिलवस्तु की ओर चल पड़े। तिलौराकोट में एक महन्त ने इन्हे भोटियों के मुल्क मे जाने का रास्ता बताया और चालीस-पचास भोटिया शब्द भी लिखा दिये। वहा से सहेट-महेट (श्रावस्ती) जाकर जेतवन देखा। इन स्थानों के महत्त्व का उनका ऐतिहासिक ज्ञान अभी धुँधला था। फा-हियान, इत्सिग और ह्वेन-चाग की किताबें पढ़कर वे निकले थे। आगे नालन्दा-राजगिर और बोधगया को देखा। चीनी यात्रियो की पुस्तको ने तीर्थाटन का मजा बढा दिया था। इस वक्त की अपनी धार्मिक अवस्था के बारे मे लिखा है--"बुद्ध के प्रति मेरी भक्ति दयानन्द से भी बढकर थी---हा, उस वक्त मैं यह समझने की गलती कर रहा था कि बुद्ध दयानन्द की ही भाँति वैदिक धर्मप्रचारक ईश्वरविश्वासी ऋषि थे।" (मेरी जीवन-यात्रा, भाग १, पृष्ठ ३५३)।

इसके बाद १९२१ ई० मे सरयू की बाढ़ से पीडित लोगो की छपरा मे सेवा और सत्याग्रह की तैयारी करते रहे। अब वे जिला काग्रेस के मंत्री और प्रान्तीय काग्रेस कमेटी के सदस्य थे। गया काग्रेस के पहले प्रान्तीय काग्रेस कमेटी ने बोधगया बौद्धो को सौपने के बारे मे प्रस्ताव पास कराते वक्त उन्होंने कुछ बौद्ध भिक्षुओ को बुलाया था। यही अनगारिक धर्मपाल, भिक्षु श्रीनिवास, भिक्षु धर्मपाल और कितने ही बर्मी भिक्षुओ से उनका परिचय हुआ। गया काग्रेस (१९२२ ई०) में इस विषय मे प्रस्ताव पास कराने मे वे सफल नही हुए।

इसके बाद वे डेढ़ महीने के लिए नेपाल पहुँचे। शिखरनारायण में बौद्ध पण्डित रत्नबहादुर ने उन्हे बौद्ध साहित्य के कुछ ग्रंथ दिखाये और कुछ बाते बतायी। वह तिब्बत मे भी रह चुके थे और तिब्बती कन्जूर के कुछ ग्रथो की सूची भी बनायी थी। इन सब को देखकर राहुल जी प्रभावित हुए। रत्नबहादुर उन्हे तिब्बत भेजना चाहते थे, किन्तु उनको काम के लिए छपरा लौटना था, इसलिए मामला आगे न बढ़ सका। सवा दो साल की सजा काटकर १९२५ में जेल से निकलने पर राहुल जी ने देखा

कि राजनीति मे शिथिलता आ गयी है। छपरा जिले का दौरा कर उन्होने फिर जोश भरने की कोशिश की। बोधगया बौद्धो को दिलाने के बारे मे श्री राजेन्द्रप्रसाद के सभापतित्व मे एक कमेटी बनायी गयी थी। सदस्य की हैसियत से राहुल जी इस का काम करते रहे। इसी बीच कांग्रेस का कानपुर अधिवेशन आ गया और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य की हैसियत से उसमे शामिल हुए। यहाँ से वे काश्मीर होते लद्दाख की सैर भी कर आये। लौटकर मेंबर के नाते कौंसिल और जिला बोर्ड के चुनावों मे जोर-शोर से काम किया और १९२७ मे कांग्रेस के गौहाटी अधिवेशन मे शामिल हुए। आगे उन्होने देखा कि कांग्रेस के सामने कोई नया कार्यक्रम नही है। उधर बौद्ध धर्म के विशेष अध्ययन की इच्छा जो लद्दाख यात्रा मे जग उठी थी, जोर मार रही थी। सारनाथ मे भिक्षु श्रीनिवास ने उनके विचारो का समर्थन किया। लंका का विद्यालंकार विहार एक संस्कृत-अध्यापक की खोज में था। वहाँ के सुभीतो को बताते हुए भिक्षु श्रीनिवास ने उन्हें लंका जाने की सलाह दी।

मई १९२७ ई० से उन्नीस महीने विद्यालंकार परिवेण मे रहकर वे १८-२० विद्यार्थियों और कुछ अध्यापको को संस्कृत, काव्य, व्याकरण और न्याय पढ़ाते और धर्मानन्द महास्थविर से स्वयं पालि, बौद्ध साहित्य और दूसरे विषयों का गंभीर अध्ययन करते रहे। इसके साथ ही बौद्ध-धर्म की ओर उनका आकर्षण बढ़ता गया। लंका मे एक महीने के बाद ही उन्होने 'सुत्तपिटक' के ग्रंथो को शुरू किया। संस्कृत के अत्यन्त सन्निकट होने से पालि उनके लिए आसान थी। भारत मे रहते हुए इस भाषा का जितना अभ्यास किया था, वह भी इस समय बडे काम मे आ रहा था। पढ़ने के लिए वे अपनी पुस्तकों का इस्तेमाल करते, और भौगोलिक, ऐतिहासिक बातों पर निशान करके पीछे उन्हे नोटबुक मे उतारते जाते। नायक महास्थविर, आचार्य प्रज्ञासार, आचार्य देवानन्द, आचार्य प्रज्ञालोक से रोज डेढ-डेढ़, दो-दो घंटे समय लेने पर भी उनकी तृप्ति न होती थी।

पालि त्रिपिटक मे बुद्धकालीन भारत के समाज, राजनीति, भूगोल का काफी मसाला है। इनसे भी विद्यार्थी की भूख और तेज हुई। 'पालि टेक्स्ट सोसाइटी' (लदन) के त्रिपिटक के सस्करणो की विद्वत्तापूर्ण भूमिकाओं ने आग मे घी डालने का काम किया। उन्होंने 'पालि टेक्स्ट सोसाइटी' के जर्नल के पुराने अकों को भी पढ डाला। इसके बाद, एशियाटिक सोसाइटी (कलकत्ता), रायल एशियाटिक सोसाइटी ब्रिटेन, सीलोन, बम्बई के पुराने जर्नलों का पारायण किया। ब्राह्मी लिपि से हजारीबाग जेल मे परिचय हुआ था। यहाँ 'एपीग्राफिका इडिका' की सारी जिल्दे देख डाली। छ-सात महीने बीतते-बीतते भारतीय सस्कृति की गवेषणाओ के बारे मे उनका ज्ञान, गुण और परिमाण इतना हो गया था कि जब मार्गबुर्ग (जर्मनी) के प्रोफेसर एडाल्फ ओटो विद्यालकार विहार मे आये, तो उनसे बातचीत करके उन्हे हैरानी हुई कि राहुल जी किसी विश्वविद्यालय के कभी विद्यार्थी नही रहे। वस्तुत इसके पीछे केवल चन्द महीनो को पढाई ही नही, पहले अव्यवस्थित रूप से पढा छिटफुट ज्ञान भी था। हाँ, यह बात अवश्य थी कि सभी तरह के ज्ञानों ने मस्तिष्क और स्मृति के अन्दर उथल-पुथल मचा करके उनमे एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा कर दिया था।

ढाई हजार साल पहले के समाज मे बुद्ध के युक्तिपूर्ण सरल और चुभनेवाले वाक्यों का राहुल जी तन्मयता के साथ आस्वाद लेने लगे। त्रिपिटक मे आये मौजिजे और चमत्कार अपनी असभवता के लिए उनकी घृणा नही, बल्कि मनोरजन करते थे। विकास का प्रभाव हर चीज पर पड़ता है तो बुद्ध-वचन इससे परे कैसे हो सकते हैं। राख मे छिपे अगारो या पत्थरो से ढके रत्न की तरह बीच-बीच मे आते बुद्ध के चमत्कारिक वाक्य उनके मन को बलात् अपनी ओर खीच लेते। जब उन्होंने केसपुत्रिय कालामो को दिये बुद्ध का उपदेश—'मत तुम अनुश्रव (श्रुत) से, मत परपरा से, मत 'ऐसा ही है' से, मत पिटक-सप्रदान (अपने मान्य शासन को अनुकूलता) से मत तर्क के कारण से, मत जय (न्याय)—हेतु से, मत वक्ता के आकार

के विचार से, मत अपने चिर विचारित मत के अनुकूल होने से, मत वक्ता के भव्य रूप होने से, मत श्रमण हमारा गुरु (बड़ा) है से विश्वास करो। जब, कालामों, तुम अपने ही जानो—यह धर्म अकुशल है, यह धर्म सदोष है, यह धर्म विज्ञ-निंदित है, यह लेने, ग्रहण करने पर अहित (दुःख) के लिए होता है, तब कालामो, तुम (उसे) छोड़ देना—' पढ़ा तो हठात् उनके दिल ने कहा—यह है एक आदमी जिसका सत्य पर अटल विश्वास है, जो मनुष्य की स्वतंत्र बुद्धि की महत्ता को समझता है।' आगे जब 'मज्झिम निकाय' मे पढ़ा—'बेडे की भांति मैंने तुम्हे धर्म का उपदेश दिया है, वह पार उतरने के लिए है, सिर पर ढोये-ढोये फिरने के लिए नही—' तो उन्होने समझा कि जिस चीज को इतने दिनो से ढूँढ रहे थे, वह मिल गयी।

पढ़ाई के लिए पालि की जो पुस्तके वहाँ थी, उन्हे तो पढना ही था; इसके अतिरिक्त वे तीस-चालीस रुपये की पुस्तके प्रतिमास भारत या यूरोप से मँगाया करते। तिब्बत जाने का विचार भी उनके मन मे प्रबल होने लगा। अन्य कामो के साथ-साथ पुस्तको की सहायता से वे खुद तिब्बती पढने लगे। अपनी जगह काम करने के लिए उन्होने एक आदमी भी ठीक कर दिया। तिब्बत के लिए भारत रवाना होने के पहले ३ सितम्बर, १९२८ ई० को विद्यालकार विद्यालय ने उन्हे "त्रिपिटकाचार्य" की उपाधि प्रदान की।

दक्खिन, पश्चिम, मध्य और उत्तर भारत के अधिकांश बौद्ध तीर्थों की यात्रा कर राहुल जी बिना पासपोर्ट के नेपाल के रास्ते अगस्त, १९२९ ई० मे ल्हासा पहुँचे। वहाँ उन्होंने सस्कृत व्याकरणो और दूसरे ग्रथो को तिब्बती अनुवाद के साथ मिलाकर पढना शुरू किया। आगे ल्हासा को केन्द्र बनाकर उन्होने तिब्बत के कितने ही पुराने मठो की यात्रा करके पुस्तके, चित्रपट जमा किये। कंजूर और तंजूर* भी खरीद लिया। सारी

*कंजूर और तंजूर दो सौ से ऊपर विशालकाय ग्रंथसंग्रह हैं। प्रथम में बुद्धवचन और दूसरे में अन्य ग्रंथों के तिब्बती अनुवाद संगृहीत हैं।

चीजें पटना के लिए रवाना कर २० जून, १९३० को सवा वर्ष तिब्बत प्रवास के बाद लका पहुँचे । २२ जून को श्री धर्मानन्द महास्थविर के उपाध्यायत्व मे उनकी प्रव्रज्या हुई । लका मे वे पहले रामोदार स्वामी के नाम से परिचित थे । वहाँ से चलते समय उन्होंने गोत्र का नाम जोड़ कर अपने को रामोदार सांकृत्यायन बना लिया था । प्रव्रजित होने पर उनका नाम 'राहुल सांकृत्यायन' हुआ ।

लका मे रहते ही उन्होने ७ अक्टूबर से १४ दिसम्बर १९३० के बीच 'बुद्धचर्या' लिख डाली । इसमे बुद्ध की जीवनी और उपदेश दोनो ही सन्निविष्ट है । लका मे रहते ही डेढ़ महीने लगाकर वसुबन्धु प्रणीत 'अभिधर्म-कोश' का अपनी 'नालन्दिका टीका' के साथ सम्पादन किया । सभाष्य अभिधर्मकोश के ह्वेन-चाग कृत चीनी अनुवाद को अपने फ्रासीसी अनुवाद और टीका के साथ बेलजियम के प्रोफेसर लुई दे ला वेली पुसे ने पाँच खण्डो में पेरिस से प्रकाशित कराया था (१९२३–२६) । इसकी पादटिप्पणियो मे उन्होने सस्कृत पोथियो मे से पाँच सौ से ऊपर कारिकाएं सस्कृत में दी थी । अभिधर्म के अपने सस्करण में राहुल जी को पुसे के सस्करण मे विशेष सहायता मिली । इसीलिए "प्रमथ्य चीन-पोद्भाषामय क्षीरमहावर्णवम् । येनोधृतं कोशरत्न तस्मै श्रीपूषिणेऽर्प्यते ।।" इस श्लोक के साथ समर्पित किया । नवम्बर, १९३१ तक ये दोनो पुस्तके यथाक्रम से बाबू शिवप्रसाद गुप्त और काशी विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित कर दी गयी ।

यूरोप से लौट कर राहुल जी १९३३ मे दूसरी बार लद्दाख गये । वही लेह मे ४ जुलाई से १६ सितम्बर के बीच उन्होने 'मज्झिमनिकाय' का अनुवाद किया और 'तिब्बत मे बौद्ध धर्म 'नामक अपनी पुस्तक के अतिरिक्त 'तिब्बती प्राइमर', 'तिब्बती पदावलिया' और 'तिब्बती व्याकरण' लिखा ।

१९३४ मे दूसरी बार तिब्बत जाने के पहले लका मे रहते ह्वेन-चाग द्वारा अनूदित वसुबन्धु के 'विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि' के चीनी अनुवाद के प्रतिशब्द चीनी भिक्षु वाङमोल की सहायता से एकत्रित किये थे । इसके

आधे संस्कृत में उल्था कर 'बिहार-उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी' के जर्नल में प्रकाशित करवाया (१९३४)।

'तिब्बत मे बौद्ध-धर्म' लिखते समय जब राहुल जी ने भोटिया ग्रंथो के पन्ने उलटे, तो उन्हे विश्वास हो गया कि भारत से गयी कई हजार ताल पोथियो में से वहाँ कुछ जरूर होनी चाहिए। तिब्बत की दूसरी यात्रा मे ल्हासा मे बैठ कर उन्होने 'विनयपिटक' का अनुवाद भी समाप्त किया। इस बार रेडिङ, साक्या, आदि प्राचीन मठों की यात्रा मे 'वादन्याय अभिधर्मकोशमूल, सुभाषित रत्नकोष, न्यायबिन्दुपञ्जिका टीका, हेतु-बिन्दु-अनुटीका, प्रातिमोक्षसूत्र, मध्यान्तविभग भाष्य, वार्तिकालंकार (खण्डित) आदि भारत से लुप्त ग्रंथ मिले। उन्होने इनकी प्रतिलिपिया अथवा फोटो कापिया तैयार कर ली। पहली बार तिब्बत से लौट कर उन्होने धर्मकीर्ति के प्रमाणवार्तिक का तिब्बती से सस्कृत भाषान्तर करना शुरू किया था। तिब्बत की दूसरी यात्रा से नेपाल के रास्ते लौटते समय राजगुरु पण्डित हेमराज के यहाँ मूल की फोटो कापी ही मिल गयी, जिसमे सिर्फ दस पन्ने नही थे।

भारत लौट कर उन्होंने 'वादन्याय' छपवाया। १९३५ मे जापान, चीन, कोरिया की यात्रा पर सोवियत रूस की पहली झाँकी लेते ईरान के रास्ते भारत लौट १९३६ में राहुल जी तीसरी बार तिब्बत पहुँचे। साक्या मे 'वार्तिकालकार प्रमाणवार्तिक भाष्य' पूरा मिला। साथ ही कर्णगोमिकृत सवृत्ति टीका भी अर्थात् प्रमाणवार्तिक की टीका और भाष्य, असग की महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'योगाचारभूमि' भी मिली। प्रमाणवार्तिक के तीन परिच्छेदो पर प्रज्ञाकरगुप्त की टीका भी मिली। शलू विहार मे प्रमाणवार्तिक पर मनोरथनन्दी कृत सुन्दर वृत्ति मिली। उन्होने सबकी नकल उतार ली।

धर्मकीर्ति के 'हेतुबिन्दु' का तिब्बती से अनुवाद और अर्चट (धर्मा-करदत्त) की टीका के सहारे इसे उन्होने बाद मे संस्कृत मे किया अर्चट की टीका और 'न्यायबिन्दुपञ्जिका' (धर्मोत्तरकृत) पर दुर्वेक मिश्र की टीकाए उन्हें १९३६ मे 'ङोर' मठ में मिली।

धर्मकीर्ति की 'संबंध-परीक्षा' को भी उन्होंने संस्कृत मे तैयार कर दिया है। अब धर्मकीर्ति के न्याय के सात ग्रथो में 'सन्तान्तरसिद्धि' और और 'प्रमाणविनिश्चय' दो ही ऐसे है, जो सिर्फ तिब्बती में ही मिलते है। इनका मूल ढूँढने या तिब्बती से संस्कृत मे लाने का उनका संकल्प अपनी चौथी और अन्तिम तिब्बत यात्रा मे पूरा नही हुआ।

मई १६३८ मे राहुल जी चौथी और अंतिम बार तिब्बत गये। शलू मठ मे नैयायिक ज्ञानश्री के १२ ग्रथ मिले तथा योगाचारभूमि के खण्डित अध्याय भी मिले। नरथङ मे उन्होने कई बड़े-बडे भारतीय चित्रपटो और सलेटी पत्थरो पर बने चौरासी सिद्धो की मूर्तियो के फोटो लिये। साक्या के मित्रो से मिलते वे भारत लौट आये।

यहाँ एक बात लिख देना जरूरी है। तिब्बत की चारों यात्राओ से राहुल जी ३६३ पोथियों की प्रतिलिपिया या फोटो ले आये। इसमें से केवल एक प्रमाणवार्तिक का ही अन्वेषण उनकी अक्षय कीर्ति होता। उनकी लायी इन पोथियो की सख्या के बारे मे बहुत बड़ा भ्रम फैला दिखाई देता है। उनकी सख्या कई हजार से लेकर ६० हजार तक गिनायी जा रही है। एक विद्वान् ने लिख दिया कि सारी पोथिया ल्हासा के दूकानदार के यहा मिल गयीं, जो उन्हे फाडकर मशाले की पुड़िया बाँध रहा था। जिन्हे इन पोथियो का ब्योरा जानना हो, वे बिहार-उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी के के जर्नल (खण्ड २१, २३ और २४) मे प्रकाशित इनका विवरण देखने का कष्ट करे तथा उनकी जीवन यात्रा पढ़कर सही बाते मालूम करे। मनगढ़न्त बाते लिखने से कोई फायदा नही।

इसी तरह राहुल जी की लिखी, सम्पादित और अनूदित पुस्तकों की सख्या के बारे में भी लोग भ्रम फैला रहे है। उनकी सख्या भी डेढ़ सौ से चार-छ. सौ तक लिखी जा रही है। मैंने उनके सारे साहित्य को देखा है। उनकी सभी प्रकार की १३८ पुस्तके छप चुकी हैं। 'पालि साहित्य का इतिहास' आपके हाथो मे है। 'तिब्बती-हिन्दी कोश', साहित्य अकादमी (दिल्ली) छाप रही है। वहा से 'पालि काव्य-धारा' के भी निकलने की आशा है। १६५६

में तिरसठवें वर्ष की पूर्ति के दिन उन्होने 'मेरी जीवन यात्रा' का तीसरा खण्ड पूरा कर दिया, जो प्रकाशक के यहा पड़ी हुई है। उनकी 'नेपाल' नामक पुस्तक को भी दस सालों से पटना के एक प्रकाशक खटाई मे डाले हुए हैं।

राहुल जी के विभिन्न विषयों पर लिखे सौ से ऊपर लेख हमारे पास है। बाकी को जुटाने की कोशिश मे हूँ। इन सबको विषयानुसार सम्पादित कर छपाना है। इसके अतिरिक्त १९५६ से १९६१ तक की उनकी डायरियो, चिट्ठियो और अपनी डायरी के आधार पर मेरी जीवन-यात्रा का अतिम खण्ड तैयार कर देना चाहती हूँ।

'पालि साहित्य का इतिहास' बौद्ध साहित्य सबधी उनकी अतिम रचना है। लका मे रहते समय १९६१ मे उन्होने इसे अपने हाथ से लिखा था। इसकी मूल पाण्डुलिपि 'राहुल सग्रहालय' में सुरक्षित है। हिन्दी मे पालि साहित्य का यह दूसरा इतिहास है। आशा है राहुल जी की अन्य रचनाओ की भाँति इसका समादर होगा।

श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी जी की मैं विशेष आभारी हूँ, जिन्होने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि को अच्छी तरह से सशोधित और सम्पादित किया। पुस्तक को सुन्दर ढग से प्रकाशित करने के लिए हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश को अनेकानेक धन्यवाद।

राहुल जी द्वारा लिखित, अनूदित और सम्पादित बौद्ध साहित्य

१. अधिधर्मकोश · आचार्य वसुबन्धु प्रणीत—वाराणसी, १९३१।
२ बुद्धचर्या—वाराणसी, १९३१, द्वितीय संस्करण—१९५२।
३ धम्मपद, मूल पालि, सस्कृत-छाया और हिन्दी अनुवाद सहित। प्रथम संस्करण, सारनाथ, १९३३। द्वितीय सस्करण, लखनऊ, १९५७।
४ विनयपिटक—(१) भिक्खु-पातिमोक्ख, (२) भिक्खुनी—पाति-मोक्ख, (३) महावग्ग, (४) चुल्लवग्ग, सारनाथ १९३५।

५. धर्मकीर्तिकृत प्रमाणवार्तिक—सम्पादित।
Journal of the Bihar and Orissa Research Society, Vol. XXIV, 1938. Part I–II.

६. मातृचेटकृत अध्यर्द्धशतक—सम्पादित, श्री काशीप्रसाद जायसवाल के साथ,
Journal of the Bihar and Orissa Research Society, Vol. XXIII, Part IV (1937)

७. नागार्जुनकृत विग्रहव्यावर्तनी—सम्पादित, श्री काशीप्रसाद जायसवाल के साथ,
Journal of the Bihar and Orissa Research Society, Vol. XXIII.

८. आचार्य धर्मकीर्तिकृत प्रमाणवार्तिक, आचार्य मनोरथनन्दीकृत वृत्तिसहित—सम्पादित, पटना १९३०।

९. आचार्य धर्मकीर्तिकृत प्रमाणवार्तिक (स्वार्थानुमानपरिच्छेद) स्वोपज्ञवृत्तिसहित तथा कर्णगोमीवृत्तिसहित—सम्पूरित और सम्पादित। इलाहाबाद, १९४४।

१०. प्रज्ञाकरगुप्तकृत प्रमाणवार्तिकभाष्य—सम्पादित। पटना, १९५३।

११. तिब्बत मे बौद्ध धर्म—इलाहाबाद, १९४८।

१२. बौद्ध-दर्शन—प्रथम संस्करण, इलाहाबाद १९४४, द्वितीय मुद्रण १९४८।

१३. बौद्ध-संस्कृति—कलकत्ता १९५३।

१४. दीर्घागमस्य सूत्रद्वयम् (महावदान—महापरिनिर्वाण सूत्रे) भिक्षु बुद्धयशसश्चीनभाषान्तरतः वाङ्गमोलम् पण्डितेन साहाय्येन श्री राहुल सांकृत्यायनेन पुनः संस्कृतेऽनूदितम्। लखनऊ, १९५७।

१५. पुरातत्त्व निबन्धावली। प्रथम सस्करण, इलाहाबाद १९३५, द्वितीय १९५७।

१६. Search for Sanskrit Manuscript in Tibet Vol. XXI. Part I, pp. 8–1o., Vol. XXIII, Part I, pp–33–52 and Vol. XXIV, Part IV, pp–1–27. "Journal of the Bihar and Orissa Research Society."

१७. दीघनिकाय। हिन्दी अनुवाद। सारनाथ।

१८. मज्झिमनिकाय। " " । सारनाथ।

१९. वसुबन्धुकृत विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि। (चीनी से संस्कृत) Journal of the Bihar and Orissa Research Society.

२०. आचार्यधर्मकीर्ते. वादन्यायः सटीक। सम्पादित। Journal of the Bihar and Orissa Research Society.

२१. खुद्दकपाठ (पालि) सम्पादित।

२२. सरहपादकृत दोहाकोश—तिब्बत और हिन्दी छाया। पटना १९५७।

२३. महामानव बुद्ध। लखनऊ, १९५६।

—कमला सांकृत्यायन

—:o:—

विषय-सूची

तृतीय खण्ड

(अन्यत्र पालि)

— ०—

स्वर्गीय महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

विषय-प्रवेश

पालिपिटक

त्रिपिटक का संग्रह तथा बुद्धवचन की भाषा

बोधि की प्राप्ति से लेकर महापरिनिर्वाण-पर्यन्त करुणा के अनन्त सागर भगवान् बुद्ध संसार के प्राणियो के कल्याण के लिए अपने मार्ग का उपदेश देते रहे । बोधि की प्राप्ति के पश्चात् प्रारम्भ मे ही उन्हे इस प्रकार की धारणा उत्पन्न हुई कि अपने द्वारा खोजे गये मार्ग को विश्व को बतलाना है, और इसको तभी से उन्होंने कार्यरूप में परिणत करना प्रारम्भ कर दिया तथा इसका निर्वाह जीवन-पर्यन्त किया । इसके लिए सर्वप्रथम सुव्यवस्थित नियमो की नीव पर उन्होने एक सुदृढ भिक्षु-सघ की स्थापना की और यह सर्वदा ही बौद्ध-धर्म का मार्ग विधायक रहा है । भगवान् बुद्ध के ये उपदेश मौखिक ही होते थे । उपदेश के समय उपस्थित स्मृतिमान् तथा बहुश्रुत भिक्षु इन्हे याद कर लेते थे । बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् इनके सग्रह की आवश्यकता हुई तो त्रिपिटक रूप मे ये सगृहीत हुए । त्रिपिटक का अर्थ होता है तीन पिटारियाँ । पहले इन सग्रहों को पिटारियो में रखा जाता होगा और तीनों पिटको के लिए अलग-अलग तीन पिटारियाँ प्रयोग में लायी जाती होगी; अत कालान्तर मे यह सग्रह ही त्रिपिटक की सज्ञा से विभूषित किया गया । ये तीनो पिटक हैं—(१) सुत्तपिटक (सूत्रपिटक), (२) विनयपिटक, (३) अभिधम्मपिटक (अभिधर्मपिटक) ।

इनके संग्रह के लिए बुद्ध के निर्वाण से लेकर वर्तमान युग तक समय-समय पर सगीतियो का आयोजन होता रहा । पहली सगीति तो बुद्ध-परि-निर्वाण के तीन मास पश्चात् हुई और इसमें धम्म तथा विनय का संगायन हुआ । इसमें ५०० अर्हत् सम्मिलित हुए । राजगृह के वैभार पर्वत पर स्थित साप्तपर्णी गुहा को ही स्थान-स्वरूप चुना गया और इसके अध्यक्ष थे

महास्थविर महाकाश्यप । इन्होंने स्थविर उपालि से विनय-सम्बन्धी बातें पूछी । उन्होंने जो कुछ भगवान् से सुना था, उसे प्रस्तुत कर दिया । इसी प्रकार आयुष्मान् आनन्द से धर्म पूछा गया । इन दोनो—विनय तथा धर्म का सभी उपस्थित भिक्षुओ ने सगायन किया ।

इस सगीति के १०० वर्ष बाद भिक्षुओ को विनय-विरुद्ध आचरण से विमुख करने के लिए वैशाली मे द्वितीय सगीति का आयोजन हुआ । इसमें ७०० अर्हत् भिक्षु सम्मिलित हुए थे और इसके अध्यक्ष थे महास्थविर 'रेवत' । इसमे विनय के नियमो पर निर्णयादि हुए ।

वैशाली की सगीति के पश्चात् तृतीय सगीति सम्राट् अशोक के राज्य-काल मे हुई । इसका आयोजन पाटलिपुत्र मे हुआ था । इस युग में बौद्ध-धर्म को राज्याश्रय प्राप्त होने के कारण दूसरे मत के लोग भी अपने को बौद्ध-मतावलम्बी बतलाकर राज्य से प्राप्त सुविधाओ से लाभ उठाने लगे तथा बौद्ध-सघ के भीतर आकर वे अपने मत-मतान्तरो को भी बुद्ध-सम्मत बतलाने लगे । अत बुद्ध के वास्तविक मन्तव्य को जानने में कठिनाई होने लगी । बौद्ध-सघ अनेक सम्प्रदायो मे विभक्त हो गया था । अत 'थेरवाद' या 'विभज्यवाद' को बुद्ध का वास्तविक मन्तव्य निश्चित करने के लिए ही यह सगीति हुई । इसके अध्यक्ष 'मोग्गलिपुत्त तिस्स' हुए । इन्होंने अन्य वादो की तुलना मे 'थेरवाद' को स्थापित किया और इसके लिए 'कथावत्थु' नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसे अभिधम्मपिटक मे स्थान मिला । इसी सगीति के बाद बौद्ध-धर्म के व्यापक प्रसार के लिए अनेक भिक्षु भिन्न-भिन्न देशो मे भेजे गये । सम्राट् की पुत्री सघमित्रा तथा पुत्र महेन्द्र सिंहल द्वीप गये और वहाँ पर बौद्ध-शासन को सुदृढ़ करने मे 'देवानम्पिय तिस्स' राजा के अत्यन्त सहायक हुए । ये अपने साथ त्रिपिटक के रूप मे बुद्धवचन की परम्परा ले गये थे और सिंहल मे इसकी नीव पड़ी ।

पर अभी तक सम्पूर्ण बुद्धवचन की मौखिक परम्परा ही चलती रही । समयानुसार यह आवश्यकता समझी गयी कि स्मरणशक्ति के ह्रास होने पर कही लोग बुद्धवचन को भूल न जायँ । अत इसे लिपिबद्ध किया गया । उस समय सिंहल के शासक सम्राट् 'वट्टगामणि' थे । इसके साथ ही इन

पर रचित अट्ठकथाएँ भी लिपिबद्ध की गयी। यही चतुर्थ संगीति के नाम से विख्यात है। 'वट्टगामणि' का समय ई० पू० २९ माना गया है।

पचम संगीति थेरवाद की परम्परा के अनुसार बर्मा के सम्राट् 'मिन्डोन मिन्' (१८७१) के समय मे हुई, जिसमे सगमरमर की पट्टिकाओ पर सम्पूर्ण बुद्धवचन को उत्कीर्ण कराकर उन्हे एक स्थान पर गडवा दिया गया, जिससे वह चिरस्थायी हो सके। छठी सगीति १९५४ से लेकर १९५६ तक २५००वी बुद्ध जयन्ती के अवसर पर बर्मा मे ही सम्पन्न हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि परम्परा से बुद्धवचनो का सग्रह उपर्युक्त विधि से समय-समय पर हुआ।

बुद्धवचन की भाषा—तृतीय संगीति के वर्णन मे ऊपर यह कहा जा चुका है कि समयानुसार बौद्ध धर्म तथा दर्शन के विचारों के सम्बन्ध मे भी मतभेद होने लगा था और अशोक के समय मे यह इस स्थिति को प्राप्त हुआ था कि इसके १८ निकाय अथवा सम्प्रदाय हो गये। प्रारम्भ में यह विभाग 'थेरवाद' (स्थविरवाद, प्राचीन परम्परा के अनुयायी) तथा 'महासाङ्घिक' इन दो रूपो मे ही था। इन सम्प्रदायो ने अपने-अपने अनुसार मूल बुद्धवचन को स्वीकार किया, साथ ही भाषा के विषय मे भी ये परम-स्वतन्त्र ही रहे, क्योकि स्वय शास्ता ने किसी भाषा विशेष का आग्रह न करके बुद्धवचनो को अपनी-अपनी भाषा मे सीखने अथवा धारण करने की अनुमति प्रदान कर दी थी। अत. प्रारम्भ से ही इस धर्म में भाषा-विषयक रूढिवादिता का समावेश नही हो पाया। और इस सम्बन्ध में वस्तुस्थिति यह है कि त्रिपिटक का सग्रह अनेक भाषाओ मे हुआ। एक प्रसिद्ध तिब्बती परम्परा के अनुसार मूल-सर्वास्तिवाद सम्प्रदाय के ग्रन्थ सस्कृत मे, महासांघिको के प्राकृत मे, महासाम्मितियो के अपभ्रंश मे और स्थविर सम्प्रदाय के पैशाची मे थे।

पालि भाषा—आज हम पालि शब्द को भाषा के अर्थ में व्यवहृत करते है और इसमें बौद्ध-धर्म के 'थेरवाद' का सम्पूर्ण त्रिपिटक एव अनुपिटक साहित्य प्राप्त है। प्रारम्भ में यह शब्द मूल बुद्धवचन अथवा त्रिपिटक के लिए प्रयुक्त होता रहा और बाद मे यह उस भाषा का द्योतक हो गया,

जिसमे बुद्धवचन प्राप्त है । इस प्रकार भाषा के अर्थ मे पालि शब्द का प्रयोग नवीन ही है, विशेषकर उन्नीसवी शती से इसका व्यापक प्रचार हो गया है । आज हम जिस भाषा को पालि की सज्ञा से अभिहित करते हैं इसका परम्परा से प्राप्त नाम मागधी है । त्रिपिटक पर लिखी गयी अट्ठकथाओ के युग से ही लोग इसे इस नाम से कहते आये हैं । पर मागधी का प्राचीनतम उपलब्ध रूप उड़ीसा, बिहार और उत्तर प्रदेश में मिलनेवाले अशोक के शिलालेख हैं । इन शिलालेखों की भाषा से मागधी कही जानेवाली पालि भाषा की भिन्नताएँ हैं । पालि ने यदि 'श' का बायकाट तथा 'र' के स्थान पर भरसक 'ल' नही आने देने की कसम न खायी होती, तो शायद उसे ही मागधी का प्राचीनतम रूप होने का सौभाग्य प्राप्त होता; किन्तु सिहल के पुराने गुजराती (शौरसेनी-महाराष्ट्री-भाषी) शताब्दियों तक मागधी के उच्चारण को कैसे बनाये रखते ? तो भी हम पालि के पुराने 'सुत्तो' मे 'ल', 'श' की भरमार कर उसे मागधी के पास तक पहुँचा सकते है । मागधी का प्रभुत्व मगध के विशाल साम्राज्य की स्थापना के बाद ही स्थापित हो पाया था ।

यदि हम प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के विकास-क्रम पर विचार करे तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वैदिक भाषा निरन्तर विकास पथ पर अग्रसर होती गयी । जितनी ही भाषा बदलती गयी उतना ही हमारे परवर्ती पूर्वजों की अपने पूर्वजो की भाषा और कृतियो के प्रति अधिक लोकोत्तर श्रद्धा बढ़ती गयी और उन्होने इसकी रक्षा के अनेक उपाय किये । फिर भी बोलचाल की भाषा आगे बढ़ती ही गयी । समय बीतने के साथ लोगो को इसकी चिन्ता हुई कि इस भाषा को कैसे सजीव तथा सुरक्षित रखा जाय । इसके लिए उन्होने (वेद) मन्त्रो को जहाँ संहिता, पद, जटा, घन आदि नाना क्रम से उच्चारण तथा कठस्थ करके सुरक्षित किया, वहाँ उस भाषा की भीतरी बनावट के लिए अपनी-अपनी शाखा के प्रातिशाख्य बनाये । पर बोलचाल की भाषा तथा इस भाषा में निरन्तर अन्तर बढ़ता चला जा रहा था और जब यह काफी हद तक आगे बढ़ चुका था, तब ईसा पूर्व छठी शताब्दी मे गौतम बुद्ध उत्पन्न हुए । इन्होंने साहित्यिक भाषा को छोड़कर प्रचलित तथा उपयुक्त होने से लोकभाषा मे ही लोगो को उपदेश

दिया। पर बुद्ध की शिष्यमंडली में मगध, कोशल, कुरु, अवन्ती और गान्धार प्रदेश के लोग थे और जब उन लोगों ने बुद्धवचनों का अपनी-अपनी भाषा मे पाठ करना प्रारम्भ कर दिया तो सूक्तों की भाषा मे फेर-बदल का सन्निवेश हुआ। कुछ शिष्यों को यह बात खटकी और उन्होंने प्राचीन साहित्यिक भाषा में बुद्धवचनों को सुरक्षित करने को बात सोची और इसके लिए बुद्ध से निवेदन किया। बुद्ध ने उन्हे ऐसा करने से मना किया और ऐसा करने को हलके दण्ड से दण्डनीय एक अपराध करार दिया। पर बुद्ध निर्वाण के तीन-चार शताब्दियो के बाद यह आये दिन की अदल-बदल धर्मधरो को अरुचिकर प्रतीत होने लगी। उनमे से कुछ लोगो ने बुद्धवचनो को प्राचीन भाषा को ही अपनाया और आगे यथासम्भव प्रयत्न किया कि इसमे कुछ रद्दोबदल न होने पावे। दूसरे प्रकार के शिष्यो ने उसे अधिक स्थायी सस्कृत मे कर दिया और तीसरे प्रकारवालो ने परवर्ती भाषा में उसे सुरक्षित करने का प्रयास किया। पहले प्रकार मे सिंहल के स्थविरवादी धर्मधरो की गणना होती है। ये लोग मागधी की सबसे बड़ी विशेषताएँ—"स" की जगह "श", "न" की जगह "ण" और "र" की जगह "ल" को सहस्राब्दियो पहले छोड चुके है; तो भी कहते है—"हमारे धर्म-ग्रन्थ मूल मागधी भाषा मे है।"

इस प्रकार स्थविरवादी त्रिपिटक हमें जिस भाषा मे उपलब्ध है, उसी को पालि के नाम से अभिहित किया जाता है।

पालि पिटक

आज से डेढ हजार वर्ष पहले और बुद्धनिर्वाण से प्राय हजार वर्ष बाद आचार्य बुद्धघोष ने बुद्धवचनो के बारे मे लिखा था—"प्रथम सगीति मे सगायित अथवा असगायित सब मिलाकर—(१) दो प्रातिमोक्ष (भिक्षु-प्रातिमोक्ष तथा भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष), दो विभङ्ग (भिक्षु-विभङ्ग तथा भिक्षुणी-विभङ्ग) बीस खन्धक (स्कन्धक) तथा सोलह परिवार (इन सबसे युक्त)—यह विनयपिटक है।

(२) सुत्तपिटक (सूत्रपिटक) है—ब्रह्मजाल आदि ३४ सुत्तो का सग्रह दीघनिकाय, मूलपरियाय आदि १५२ सुत्तो का सग्रह मज्झिमनिकाय; ओघतरण आदि ७७६२ सुत्तो का संग्रह सयुत्तनिकाय; चित्तपरियादान

आदि ६५५७ सुत्तो का संग्रह अङ्गुत्तरनिकाय तथा इन पन्द्रह ग्रन्थों के भेद से (युक्त) खुद्दकनिकाय—(क) खुद्दकपाठ, (ख) धम्मपद, (ग) उदान, (घ) इतिवुत्तक, (ङ) सुत्तनिपात, (च) विमानवत्थु, (छ) पेतवत्थु, (ज) थेरगाथा, (झ) थेरीगाथा, (ञ) जातक, (ट) निद्देस, (ठ) पटिसम्भिदामग्ग, (ड) अपदान, (ढ) बुद्धवंस और (ण) चरियापिटक।

(३) अभिधम्मपिटक (अभिधर्मपिटक) है—(क) धम्मसगणि, (ख) विभंग, (ग) धातुकथा, (घ) पुग्गलपञ्ञत्ति, (ङ) कथावत्थु, (च) यमक तथा (छ) पट्ठान।"

इन सब उपर्युक्त ग्रन्थो के काल के बारे मे विद्वानो ने बहुत बहस की है और वास्तव मे यह एक विचारणीय बात है।

त्रिपिटक का काल-निर्णय

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी मे त्रिपिटक लेखबद्ध हुआ, अर्थात् तब से पाठ मे अधिक स्थिरता आयी। उससे पहले सावधानी रखते हुए भी स्मृति के स्खलन से पाठ मे हेर-फेर होना स्वाभाविक था। फिर आचार्य बुद्धघोष उपर्युक्त ग्रन्थो मे ऐसे ग्रन्थो का होना भी मानते है, जो प्रथम सगीति मे दुहराये नही गये। अभिधम्मपिटक के ग्रन्थ 'कथावत्थु' को तृतीय सगीति के प्रधान 'मोग्गलिपुत्त तिस्स' (तिष्य) ने लिखा, इसलिए वह प्रथम और द्वितीय सगीति के समय अस्तित्व मे भी नही आया था—तृतीय सगीति के समसामयिक तथा बाद के स्थविरवादि-विरोधी निकायो के मतो के खडन के लिए इसे लिखा गया था। यह इससे भी ज्ञात होता है कि इसमे खंडित २१४ सिद्धान्तो मे केवल २७ ही तृतीय सगीति के समकालीन या पुराने निकायों के थे, जिनका ही खडन 'मोग्गलिपुत्त' कर सकते थे। अधक, अपरशैलीय, पूर्वशैलीय, राजगिरिक, सिद्धार्थक, वैतुल्यक, उत्तरापथक, हेतुवाद आदि निकाय अशोक के बाद अस्तित्व मे आये। उनका खडन 'मोग्गलिपुत्त' कैसे कर सकते थे? काल के बारे मे विद्वानो ने बहुत-सी कसौटियाँ रखी है और उनमे तथ्य भी है। एक और कसौटी भी है—थेरवाद और सर्वास्तिवादके पिटको की तुलना। द्वितीय सगीति अर्थात् ३८७ ई० पू० तक सर्वास्तिवाद आदि ग्यारह निकाय थेरवाद से अलग

अस्तित्व नही रखते थे । इनमे सर्वास्तिवाद का विनयपिटक चीनी और तिब्बती अनुवाद के रूप में मौजूद है । पालि मे प्राप्त सुत्तपिटक की चीनी अनुवाद से तुलना करने पर यह ज्ञात होता है कि थेरवाद तथा सर्वास्तिवाद इन दोनों निकायों में पाँच निकाय (दीघनिकाय आदि निकाय नामक उपर्युक्त ग्रन्थ) अथवा आगम थे—दीघ (दीर्घ), मज्झिम (मध्यम), सयुत्त (सयुक्त), अङ्गुत्तर (अङ्गोत्तर) तथा खुद्दक (क्षुद्रक) । इनमें भी पहले चार निकायो में कुछ ही हेरफेर मिलता है । इनके आधार पर नीचे त्रिपिटक के सबन्ध मे तुलनात्मक विचार प्रस्तुत किया जाता है—

१ **सुत्तपिटक**—थेरवादी दीघनिकाय (पालि मे प्राप्त दीघनिकाय) के बत्तीस सूत्रो मे से सत्ताइस चीनी दीर्घागम मे मिलते हैं; शेष सात में से तीन मध्यमागम मे प्राप्त हे और बाकी चार वहाँ अप्राप्त ही हे । अतः द्वितीय सगीति के समय मे ये विद्यमान थे, इस पर सदेह किया जा सकता है । दीघनिकाय के बत्तीसवें 'सुत्त' 'आटानाटिय' मे भूतप्रेत सम्बन्धी बाते हैं और यह सम्मिलित त्रिपिटक मे नही था । इसलिए यह सर्वास्तिवादी दीघनिकाय मे तो नही है, पर तिब्बती कजूर मे उसका अनुवाद प्राप्त है । चीनी त्रिपिटक मे भी इसका अनुवाद (नजियो ९७४) मौजूद है । दोनो के सूत्रो मे इस बात मैं भी अन्तर मिलता है कि एक मे वे छोटे हैं तथा दूसरे मे बडे । सर्वास्तिवाद सम्प्रदाय के बाद मे प्रादुर्भूत होने से यह आवश्यक नही है कि उसके सूत्रो को हर जगह बढाया गया हो । पालि मे प्राप्त दीघनिकाय का 'महापरिनिब्बान-सुत्त' उससे दूने के करीब है । थेरवाद (स्थविरवाद) से भिन्न निकाय का 'महापरिनिब्बान सुत्त' चीनी भाषा मे अनूदित है । इसका पुन· सस्कृत मे अनुवाद मैंने श्री वाङ मो लम् की सहायता से किया था । इस कार्य के पश्चात् मै इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि जब पुन कभी तिब्बती तथा चीनी अनुवादो का सस्कृत मे अनुवाद होगा तभी इस प्रकार की आलोचनात्मक तुलना को अवकाश प्राप्त होगा । अभिधम्मपिटक मे पाठभेद आदि का सवाल नही था, वह सभी थेरनिकायो के एक होने के समय अस्तित्व मे आया ही नही था । थेरवादी आचार्य बुद्धघोष ने भी उस थेरवादी परपरा का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार

उसे खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत माना जाता था। विद्वानों ने खुद्दकनिकाय में उसके अंश का होना दिखलाया है।

२ **विनयपिटक**—पालि विनयपिटक का विभाग इस प्रकार से है—

१ विभङ्ग { १ भिक्खुविभङ्ग, २ भिक्खुनीविभङ्ग }

२ खन्धक { १ महावग्ग, २ चुल्लवग्ग }

३. परिवार

ग्रन्थों की दृष्टि से विनयपिटक में ये पांच ग्रन्थ आते हैं—(१) पाराजिक, (२) पाचित्तिय, (३) महावग्ग, (४) चुल्लवग्ग तथा (५) परिवार। इनमे परिवार तो बहुत बाद का है, क्योंकि इसमें त्रिपिटक के लिपिबद्ध होने की चर्चा है। विभङ्ग के अन्तर्गत ही 'पाराजिक' तथा 'पाचित्तिय' नामक ग्रन्थ आते है। वास्तव मे विभङ्ग प्रातिमोक्ष सूत्रों की व्याख्या है। प्रातिमोक्ष सूत्रो का वर्गीकरण भिक्षु तथा भिक्षुणी प्रातिमोक्षों में किया जाता है, अतएव विभङ्ग भी इसी के अनुसार है। बाद में ग्रन्थों के रूप मे इसका नामकरण 'पाराजिक' तथा 'पाचित्तिय' मे कर दिया गया। इस नामकरण का कोई विशेष सिद्धान्त नहीं है, क्योंकि 'पाराजिक' ग्रन्थ मे केवल भिक्षुओं से सम्बन्धित 'पाराजिकों' की तथा 'सङ्घादिसेस' आदि नियमो की चर्चा है, जबकि 'पाचित्तिय' से प्रारम्भ होकर भिक्षुओं के और नियम तथा उनकी व्याख्या एवं सम्पूर्ण भिक्षुणियों के नियम (पाराजिक से प्रारम्भ होकर सभी) 'पाचित्तिय' में सगृहीत है। अतएव 'पाराजिक' तथा 'पाचित्तिय' ये नाम भ्रमोत्पादक ही है, और इनकी अपेक्षा इनका 'भिक्खु' तथा 'भिक्खुणी' विभङ्ग नाम देना अधिक उपयुक्त है।

थेरवाद और सर्वास्तिवाद के विनयों मे भी समानता है। थेरवाद मे २२७ प्रातिमोक्ष नियम हैं, जिनकी अवहेलना करने से दोष की प्राप्ति होती है; पर सर्वास्तिवाद विनय के अनुसार ये २५० है। इन दोनों में इन नियमों में बहुत समानता विद्यमान है। पालि विनय के खन्धक को दो भागों मे विभक्त कर एक को 'महावग्ग' तथा दूसरे को 'चुल्लवग्ग' की संज्ञा प्रदान की जाती है। मूल-सर्वास्तिवाद के विनय को भी 'महावस्तु' तथा

'क्षुद्रक' इन दो भागों में बाँटा जाता है। इस प्रकार दोनों के खन्धकों में काफी समानता है। इससे यह भी प्रकट होता है कि इन दोनो विनयों का विकास एक ही विनयपिटक से हुआ।

३. अभिधम्मपिटक—पालि अभिधम्मपिटक में तथा सर्वास्तिवाद के अभिधर्मपिटक में विनय की उपर्युक्त-समानता के दर्शन नही होते। यद्यपि दोनों की ग्रन्थ-सख्या सात ही है तथापि उनके नामो तथा विषयों मे कोई समानता नही है। इस भिन्नता के साथ-साथ सर्वास्तिवाद की अपनी यह विशेषता और है कि वह इसे बुद्धवचन नही मानता, जैसे—

ग्रन्थ	कर्त्ता
१. ज्ञानप्रस्थान	कात्यायनीपुत्र
२. सगीतिपर्याय	महाकौष्ठिल
३. प्रकरणपाद	वसुमित्र
४. विज्ञानकाय	देवशर्मा
५. धातुकाय	पूर्ण
६. धर्मस्कन्ध	शारिपुत्र
७ प्रज्ञप्तिशास्त्र	मौद्गल्यायन

'ज्ञानप्रस्थान' के अधिकाश भाग का पुन सस्कृत अनुवाद विश्व-भारती के डाक्टर शान्ति शास्त्री ने किया है और यह वही से प्रकाशित भी हुआ है।

अभिधर्म के सात ग्रन्थकर्ताओ मे शारिपुत्र, मौद्गल्यायन और पूर्ण बुद्ध के शिष्य माने गये हैं। सातो मे 'ज्ञानप्रस्थान' को प्रधान माना जाता है, जिसको कात्यायनीपुत्र की कृति कहा जाता है। कात्यायनीपुत्र कश्मीर के सर्वास्तिवादी आचार्य थे। कश्मीर को बौद्ध बनानेवाले आर्य मध्यान्तिक अशोक के समय तीसरी सगीति द्वारा कश्मीर भेजे गये थे। थेरवाद अभिधम्म को बुद्धवचन मानता है और उसके सात ग्रन्थों में से एक ग्रन्थ 'कथावत्थु' के रचयिता 'मोग्गलिपुत्त तिस्स' माने जाते हैं। तीनों संगीतियों में धर्म और विनय का ही संगायन किया गया, यह भी कहा जाता है। धर्म का अर्थ है सूत्र। अङ्गुत्तरनिकाय में अभिधम्म की कुछ बातें आती हैं।

फिर जब तक अभिधम्म का स्वतत्र अस्तित्व नहीं माना गया था, तब तक उसे खुद्दकनिकाय में सम्मिलित किया जाता था।

इस तरह जान पडता है, अभिधम्म तृतीय सगीति मे भी तैयार नहीं हुआ, अतः वह अर्हत् महेन्द्र के साथ सिंहल नही गया था।

विद्वानों ने पिटक-रचना के काल को पाँच भागो में बाँटा है—

पहला युग ४८३ ई० पू० से ३८३ ई० पू०, अर्थात् पहली और दूसरी सगीति के बीच।

दूसरा युग ३८३ ई० पू० से २६५ ई० पू०, अर्थात् अशोक के राज्यारभ तक।

तीसरा युग २६५ ई० पू० से २३० ई० पू०, अर्थात् अशोक के राज्य के अत तक।

चौथा युग २३० ई० पू० से ८० ई० पू० तक, अर्थात् सिहल मे।

पाँचवाँ युग ८० ई० पू० से २० ई० पू०, अर्थात् त्रिपिटक के लेखबद्ध होने तक।

डॉ० रीज डेविड्स ने पालि त्रिपिटक का बुद्ध परिनिर्वाण काल से लेकर अशोक के काल तक निम्नलिखित विकास-क्रम दिया है[1]।

१ वे बुद्धवचन जो समान शब्दो मे ही त्रिपिटक के प्राय. सभी ग्रन्थों की गाथाओ आदि मे मिलते है।

२. वे बुद्धवचन जो समान शब्दो मे केवल दो या तीन ही ग्रन्थो में प्राप्त है।

३. शील, पारायणवग्ग तथा अट्ठकवग्ग, पातिमोक्ख।

४. दीघ, मज्झिम, अङ्गुत्तर और सयुत्तनिकाय।

५. सुत्तनिपात, थेरगाथा, थेरीगाथा, उदान, खुद्दकपाठ।

६. सुत्तविभङ्ग, खन्धक।

७. जातक, धम्मपद।

८. निद्देस, इतिवुत्तक, पटिसम्भिदामग्ग।

९. पेतवत्थु, विमानवत्थु, अपदान, चरियापिटक, बुद्धवस।

१०. अभिधम्मपिटक के सभी ग्रन्थ, जिनमे विकास-क्रम के अनुसार पुग्गलपञ्ञत्ति प्रथम तथा कथावत्थु अन्तिम है।

---

१. द्र०—बुद्धिस्ट इन्डिया, पृ० ८४।

डॉ० विमलाचरण लाहा ने उपर्युक्त मत में संशोधन उपस्थित करते हुए इस त्रिपिटक-विकास-क्रम को निम्नप्रकार से व्यक्त किया है[1]—

१. वे बुद्धवचन, जो समान शब्दो मे त्रिपिटक के प्राय सभी ग्रन्थो की गाथाओ मे प्राप्त होते है ।

२. वे बुद्धवचन, जो समान शब्दो में केवल दो या तीन ग्रन्थो मे ही विद्यमान है ।

३. शील, पारायण, अट्ठकवग्ग, सिक्खापद ।

४. दीघनिकाय (प्रथम स्कन्ध), मज्झिमनिकाय, सयुत्तनिकाय, अङ्गुत्तरनिकाय, पातिमोक्ख के १५२ नियम ।

५. दीघनिकाय (द्वितीय तथा तृतीय स्कन्ध), थेरगाथा, थेरीगाथा, ५०० जातक, सुत्तविभङ्ग, पटिसम्भिदामग्ग, पुग्गलपञ्ञत्ति, विभङ्ग ।

६. महावग्ग, चुल्लवग्ग, पातिमोक्ख (२२७ नियमो के रूप मे पूर्ण होना), विमानवत्थु, पेतवत्थु, धम्मपद, कथावत्थु ।

७. चुल्लनिद्देस, महानिद्देस, उदान, इतिवुत्तक, सुत्तनिपात, धातुकथा, यमक, पट्ठान ।

८. बुद्धवस, चरियापिटक, अपदान ।

९. परिवार ।

१०. खुद्दकपाठ ।

इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हुए हम पालि त्रिपिटक के विकास-क्रम को समझ सकते है । तथ्यो के आधार पर लोगो ने इस विकास-क्रम को ही अपने शोध का विषय बनाकर इस पर विस्तृत अध्ययन भी प्रस्तुत किया है[2] ।

मूल बुद्धवचन—त्रिपिटक मे कुछ गाथाओ के प्रक्षिप्त होने की बात को प्राचीन आचार्यों ने भी स्वीकार किया है । यह तो हम स्पष्ट रूप से कह सकते है कि मात्रिकाओ को छोड़ कर सारा अभिधम्मपिटक पीछे का है और इसीलिए आचार्य बुद्धघोष के समय से ही इसके बुद्धवचन होने

१. द्र०—हिस्ट्री ऑफ पालि लिट्रेचर, भाग १, पृ० ४२ ।

२. द्र०—गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, स्टडीज इन दि ओरिजिन्स ऑफ बुद्धिज्म ।

में सन्देह प्रकट किया जाने लगा था, यद्यपि इसे भी बुद्धवचन ही सिद्ध करने के लिए इस थेरवादी आचार्य को जमीन-आसमान एक करना पड़ा था। जिस प्रकार हम सुत्त तथा विनय के सम्बन्ध मे थेरवादी तथा सर्वास्तिवादी पिटको में समानता बाद का होने के कारण पाते है, वह तो अभिधम्मपिटक के सम्बन्ध मे नही प्राप्त होती। इसका एक ग्रन्थ 'कथावत्थु' तो, जिसकी रचना परम्परा से अशोक के समय में मानी जाती है, उस समय न लिखा जाकर ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में लिखा गया था, क्योकि उस समय के वैपुल्यवादी आदि निकायो का खडन इसमें प्राप्त होता है। 'चुल्लवग्ग' के प्रथम सगीति तथा द्वितीय सगीति के विवरण मे भी धर्म (सुत्त) तथा विनय की ही चर्चा है और इससे भी अभिधम्म का बाद मे ही होना सिद्ध होता है।

इन सबको लेकर पुन· यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या सम्पूर्ण मुत्त तथा विनय पिटक बुद्धवचन है ? सुत्तपिटक के कई सुत्त (घोटमुख-सुत्त, मज्झिमनिकाय, सु० सं० ९४) तो स्पष्ट ही बुद्ध-निर्वाण के बाद के है। खुद्दकनिकाय के 'पटिसम्भिदामग्ग' तथा 'निद्देस' जैसे ग्रन्थ तो अधिकाश रूप मे पहले आये सूत्रो के भाष्यमात्र है। सुत्तपिटक मे आयी वे सभी गाथाएँ, जिन्हे बुद्ध के मुख से निकला उदान नही कहा गया है, पीछे की प्रक्षिप्त ज्ञात होती है। इनके अतिरिक्त भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यो की दिव्य शक्तियाँ और स्वर्ग, नरक, देव तथा असुर की अतिशयोक्तिपूर्ण कथाओ को भी प्रक्षिप्त ही माना जा सकता है। इन अपवादो के साथ सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि सुत्तपिटक मे दीघ, मज्झिम, संयुत्त तथा अङ्गुत्तर ये चारो निकाय और पाँचवे खुद्दकनिकाय के खुद्दक-पाठ, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक और सुत्तनिपात ये छह ग्रन्थ अधिक प्रामाणिक है। बल्कि खुद्दकनिकाय के इन ग्रन्थो मे अधिकतर पहले चारो निकायों के ही सुत्तो और गाथाओ के आने से तथा कितने ही ऐतिहासिक लेखो मे 'चतुनिकायिक' शब्द के प्रयुक्त होने से तो दीघ, मज्झिम, सयुत्त और अङ्गुत्तर—इन चार निकायो को ही वह स्थान देना अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है। इन चारो मे भी मज्झिमनिकाय को सर्वाधिक प्रामाणिकता विदित होती है।

प्रथम खंड

भारत में पालि

पहला अध्याय

१. सुत्तपिटक

१. दीघनिकाय

भारत की देन पालि त्रिपिटक अथवा बुद्धवचन है। पहले पिटक के रूप मे धम्म तथा विनय की ही परिगणना थी। अभिधम्म को तो बाद में स्थान मिला, इसका व्याख्यान ऊपर किया जा चुका है। धम्म तो सुत्तपिटक का ही नामान्तर है।

सुत्तपिटक

सुत्तपिटक इन पाँच निकायो अथवा आगमो मे विभक्त है—(१) दीघनिकाय, (२) मज्झिमनिकाय, (३) सयुत्तनिकाय, (४) अङ्गुत्तर-निकाय और (५) खुद्दकनिकाय। इनके वर्णित विषय निम्नप्रकार से है—

१. दीघनिकाय

पालि मे ग्रन्थपरिमाण बतलाने के लिए ३२ अक्षरो के अनुष्टुप् छद को गिना जाता है। २२० छदों का एक भाणवार होता है, जो शायद आह्निक का पर्याय है। एक भाणवार मे इस प्रकार २२०×३२=७०४० अक्षर होते है। दीघनिकाय मे सीलक्खन्ध, महा और पाथिकवग्ग नाम के तीन वग्ग, चौतीस सूत्र और ६४ भाणवार है, जिनका विवरण है—

१. सीलक्खन्धवग्ग

(१) ब्रह्मजालसुत्त
(२) सामञ्ञफलसुत्त
(३) अम्बट्ठसुत्त
(४) सोणदण्डसुत्त

(५) कूटदन्तसुत्त
(६) महालिसुत्त
(७) जालियसुत्त
(८) कस्सपसीहनादसुत्त
(९) पोट्ठपादसुत्त
(१०) सुभसुत्त
(११) केवट्टसुत्त
(१२) लोहिच्चसुत्त

२. महावग्ग

(१३) तेविज्जसुत्त
(१४) महापदानसुत्त
(१५) महानिदानसुत्त
(१६) महापरिनिब्बानसुत्त
(१७) महासुदस्सनसुत्त
(१८) जनवसभसुत्त
(१९) महागोविन्दसुत्त
(२०) महासमयसुत्त
(२१) सक्कपञ्हसुत्त
(२२) महासतिपट्ठानसुत्त
(२३) पायासिसुत्त

३. पाथिकवग्ग

(२४) पाथिकसुत्त
(२५) उदुम्बरिकसीहनादसुत्त
(२६) चक्कवत्तिसीहनादसुत्त
(२७) अग्गञ्ञसुत्त
(२८) सम्पसादनीयसुत्त
(२९) पासादिकसुत्त

(३०) लक्खणसुत्त
(३१) सिगालोवादसुत्त
(३२) आटानाटियसुत्त
(३३) सगीतिपरियायसुत्त
(३४) दसुत्तरसुत्त

इन सूत्रों का भारत के तात्कालिक इतिहास, भूगोल तथा सास्कृतिक परिचय के लिए कितना महत्त्व है, यह उनमे वर्णित विषयो से ही ज्ञात होता है। अत इस दृष्टि से इनका परिचय दिया जाता है—

१ सीलक्खन्धवग्ग

(१) **ब्रह्मजालसुत्त**—अपनी शिष्य-मडली के साथ बुद्ध राजगृह और नालन्दा के बीच राजपथ पर जा रहे थे। उनके पीछे सुप्रिय नामक परिव्राजक भी अपने शिष्य ब्रह्मदत्त के साथ जा रहा था। सुप्रिय अनेक प्रकार से बुद्ध, धर्म तथा संघ की निन्दा कर रहा था और ब्रह्मदत्त उनकी प्रशसा। भिक्षु-सघ के साथ बुद्ध तथा ये दोनो 'अम्बलट्ठिका' के राजागार मे रात भर के लिए ठहर गये तथा वहाँ भी सुप्रिय तथा ब्रह्मदत्त वैसा ही करते रहे। भिक्षुओं में इसकी चर्चा हो रही थी; उसी समय बुद्ध उनके पास पहुँचे। पूछे जाने पर भिक्षुओ ने सारी बात उन्हें बतलायी। बुद्ध ने कहा कि यदि कोई मेरी निन्दा करे तो तुम लोगो को उससे वैर, असन्तोष अथवा चित्त मे कोप नही करना चाहिए, साथ ही हम सबों की प्रशसा में भी तुम्हें आनन्दित नही होना चाहिए। इन दोनो हालतों मे तुम लोगों का कर्त्तव्य है उस कथन की सत्यता की जाँच करना। इसके पश्चात् बुद्ध ने शील (सदाचार) का विभाजन बतलाते हुए उसके क्षुद्र (प्रारम्भिक), मध्यम तथा महा ये तीन विभाग किये। प्रारम्भिक शील के अन्तर्गत उन्होने अदत्तादान-त्याग, व्यभिचार-त्याग, कठोरभाषण-त्याग, चापलूसी-त्याग, हिंसा-त्याग; मध्यमशील के अन्तर्गत चीजो का अपरिग्रह, जुआ आदि खेल-त्याग, ठाटबाट की शय्या का त्याग, सजने-धजने का त्याग, राजकथा, चोरकथा आदि व्यर्थ कथाओ का त्याग, बेकार की बहस का

त्याग, राजा आदि के दूत का काम न करना, पाखडी, वंचक, बातूनी न होना, और महाशील के अन्तर्गत अग (लक्षण) विद्या, स्वप्न, भाखना, भूत-प्रेत, साँप-बिच्छू के झाड़फूँक की विद्या का त्यागना, राजविराजी भाखना, ग्रहण-फल भाखना, उल्कापात आदि का फल भाखना, हस्तरेखा गणना, कविता आदि हीनविद्या से जीविका न करना, शरीर पर देवता बुलाकर प्रश्न पूछना तथा वमन-विरेचन आदि क्रियाओं का परित्याग करते हुए उनसे भिक्षुओ को अलग रहने की देशना की। इसके बाद बुद्ध ने उस समय मे प्रचलित बासठ दार्शनिक मतो की व्यर्थता के सम्बन्ध मे भिक्षुओ को उपदेश दिया। इसमे से अट्ठारह पूर्वान्तकल्पिक (आदि-सम्बन्धी) तथा चौवालिस अपरान्तकल्पिक (अन्तसम्बन्धी) धारणाएँ हैं, जो मिथ्या दृष्टि-स्वरूप ही हैं। अट्ठारह पूर्वान्त दृष्टियाँ—(१) शाश्वतवाद, (२) नित्यता-अनित्यतावाद, (३) सान्त अनन्तवाद, (४) अमराविक्षेप-वाद (अनेकान्तवाद) तथा (५) अकारणवाद पर आधारित हैं। अपरान्त चौवालिस दृष्टियाँ मरणान्तर होशवाले आत्मा, मरणान्तर बेहोश आत्मा, मरणान्तर न होशवाला न बेहोश आत्मा, आत्मा का उच्छेद तथा इसी जन्म मे निर्वाण की प्राप्ति सम्बन्धी है।

बासठ दृष्टियो की असारता दिखलाते हुए बुद्ध ने कहा—जन्म के लोभ (भवतृष्णा) के उच्छिन्न हो जाने पर भी तथागत का शरीर जब तक रहता है, तभी तक उन्हे मनुष्य और देवता देख सकते है। शरीरपात हो जाने पर, उनके जीवनप्रवाह के निरुद्ध हो जाने से, उन्हे देव और मनुष्य नही देख सकते। भिक्षुओ, जैसे किसी आम के गुच्छे की ढेप के टूट जाने पर उस ढेप से लगे सभी आम नीचे आ गिरते है, उसी तरह भवतृष्णा के छिन्न होने पर तथागत का शरीर होता है।

इस सूत्र का उपदेश करने के पश्चात् जब आनन्द ने इसके नाम के सम्बन्ध मे जिज्ञासा प्रकट की तो बुद्ध ने उसका यह उत्तर दिया—"आनन्द, तुम इस धर्मोपदेश को अर्थजाल, धर्मजाल, ब्रह्मजाल, दृष्टिजाल अथवा अलौकिक-संग्राम विजय कह सकते हो।"

इस सूत्र का तिब्बती तथा चीनी अनुवाद प्राप्त है। चीनी अनुवाद को मैने फिर से सस्कृत मे किया है।

(२) सामञ्ञफलसुत्त—श्रामण्यफलसूत्र, दीघनिकाय का दूसरा सूत्र, राजगृह मे जीवक के आम्रवन मे कहा गया। राजा मागध वैदेही-पुत्र अजातशत्रु शरद पूनो (आश्विन पूर्णिमा) को मन्त्रियो के साथ राज-प्रासाद की छत पर बैठा हुआ था। एकाएक उसके मुँह से निकला—"कैसी रमणीय चाँदनी रात है, कैसी सुन्दर चाँदनी रात है, किस श्रमण या ब्राह्मण का सत्सग करे, जो हमारे चित्त को प्रसन्न करे।" इस पर मन्त्रियो मे से किसी ने कहा—"महाराज, यह 'पूरणकस्सप' सघ-स्वामी गणा-ध्यक्ष, गणाचार्य, ज्ञानी, यशस्वी, तीर्थंकर, (संप्रदायप्रवर्तक) बहुत लोगो से सम्मानित, अनुभवी, चिरकाल के साधु, वयोवृद्ध है। महाराज, उन्ही 'पूरणकस्सप' से धर्मचर्चा करे। थोड़ी ही चर्चा करने से आपका चित्त प्रसन्न हो जायेगा।" ऐसा कहने पर राजा चुप रहा।

दूसरे मन्त्री ने कहा—'महाराज, यह 'मक्खलिगोसाल' सघ-स्वामी है .." इस उत्तर से भी राजा चुप ही रहा।

इसके पश्चात् और मन्त्रियों ने क्रमश 'पकुधकच्चायन', 'सञ्जय-बेलट्ठिपुत्त' तथा 'निगण्ठनातपुत्त' आदि गणाचार्यो की चर्चा की। पर राजा को इन नामो से कोई तुष्टि नही हुई और वह चुप ही बैठा रहा।

उस समय राजा के पास ही प्रसिद्ध वैद्य जीवक कुमारभृत्य बैठा था। वह चुपचाप ही था। उसकी चुप्पी के सम्बन्ध मे राजा ने प्रश्न किया। इस पर उसने अजातशत्रु को सम्यक् सम्बुद्ध के पास जाने की सलाह दी। राजा तैयार हो गया और उसने आज्ञा की—"तो सौम्य जीवक, हाथियों की सवारी तैयार कराओ।"

राजा पाँच सौ हाथियों पर रानियों को बिठला कर, स्वय राजहाथी पर सवार हो, मशालो की रोशनी के साथ निकला। बगीचे के निकट पहुँचने पर (बाप के हत्यारे) अजातशत्रु को भय, घबराहट तथा रोमांच होने लगा। वह घबड़ाकर जीवक से बोला—"सौम्य जीवक, कहीं तुम मुझे धोखा

तो नही दे रहे हो ? कही तुम मुझे शत्रुओं के हाथ मे तो नही दे रहे हो ? साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के बडे सघ के रहने पर भी भला कैसे थूकने तथा खाँसने तक का या किसी दूसरे प्रकार का शब्द न होगा ?"

"महाराज मत डरे, आगे चले महाराज, वह मण्डप में दीप जल रहे हैं. . . ."

अजातशत्रु जहाँ भगवान थे, वहाँ गया निर्मल जलाशय की तरह बिलकुल चुपचाप शान्त भिक्षु-सघ को देखकर यह प्रीतिवाक्य (उदान) उचारा—"मेरा उदयभद्र भी इसी शान्ति से युक्त हो, जैसा यह भिक्षु-सघ विराज रहा है।" राजा भगवान् को अभिवादन कर, भिक्षु-सघ को हाथ जोड, एक ओर बैठ गया और भगवान् से कुछ पूछने की अनुमति माँगी।

बुद्ध ने कहा—"जो चाहो पूछो।" उसने पूछा—"जैसे भन्ते, यह भिन्न-भिन्न जो शिल्पस्थान है, इनके शिल्पफल से इसी शरीर मे लोग प्रत्यक्ष जीविका करते हैं। इसी प्रकार क्या श्रामण्य (साधुत्व) फल का भी इसी जन्म मे साक्षात्कार किया जा सकता है ?"

बुद्ध ने उससे इस प्रश्न के विषय मे यह भी पूछा कि इसे उसने दूसरे श्रमण तथा ब्राह्मणो से पूछा है अथवा नही, और यदि पूछा है तो वहाँ पर उसे क्या उत्तर प्राप्त हुआ है ? बुद्ध के ऐसा पूछने पर राजा ने इस सम्बन्ध मे जो उत्तर दूसरे तीर्थकरो ने उसे दिए थे, उसे उनके समक्ष उपस्थित किया—

'पूरणकस्सप' ने पूछने पर कहा—महाराज, करते-कराते, छेदन करते, सेंध काटते, गाँव लूटते, बटमारी करते, परस्त्री-गमन करते, झूठ बोलते भी पाप नही होता। दान देते, दान दिलाते, यज्ञ करते, यज्ञ कराते, गगा के उत्तर तीर भी जाये, तो इस कारण पुण्य नही होता। दान, दम तथा सयम करने और सत्य बोलने से न पुण्य है, न पुण्य का आगम। इस प्रकार उन्होने प्रत्यक्ष श्रामण्यफल के पूछने पर अक्रियावाद का वर्णन किया। जैसे, भन्ते, पूछे आम, जवाब दे कटहल, यही बात वहाँ भी हुई।

'मक्खलिगोसाल' (आजीवक आचार्य) से भी एक दिन राजा ने वही प्रश्न पूछा, तो गोसाल ने कहा—महाराज, जीवों के क्लेश का कोई हेतु

नहीं; बिना हेतु-प्रत्यय के ही सत्व क्लेश पाते हैं, शुद्ध होते है। सभी जीव निर्बल, निर्वीर्य, भाग्य और सयोग के फेर से जातियों में उत्पन्न हो सुख-दुख भोगते है। अस्सी लाख छोटे-बडे कल्प हैं, जिन्हे मूर्ख और पडित जानकर और अनुगमन कर दु खो का अन्त कर सकते है। वहाँ यह नही है—इस शील या व्रत या तप अथवा ब्रह्मचर्य से मैं अपरिपक्व कर्म को परिपक्व करूँगा; परिपक्व कर्म को भोगकर अन्त करूँगा। सुख-दुःख द्रोण (नाप) से तुले हुए है तथा ससार मे घटना-बढना—उत्कर्ष-अपकर्ष नही होता। जैसे सूत की गोली फेंकने पर खुलती हुई गिरती है, वैसे ही मूर्ख और पडित दौड़कर दु.ख का अन्त करेंगे। श्रामण्यफल के बारे में पूछने पर 'मक्खलि-गोसाल' ने इस प्रकार से अहेतुक ससार की शुद्धि का निरूपण किया।

'अजितकेसकम्बल' के सम्बन्ध में राजा ने कहा—अजितकेसकम्बल से यही प्रश्न पूछा, तो अजित ने उत्तर दिया—महाराज, न दान है, न यज्ञ है, न होम है और न पुण्य अथवा पाप का अच्छा-बुरा फल होता है। न यह लोक है, न परलोक है, न माता है, न पिता है, न अयोनिज देव हैं और न इस लोक मे वैसे ज्ञानी और समर्थ श्रमण या ब्राह्मण है, जो इस लोक या परलोक को स्वय जानकर, देखकर बतलायेंगे। मनुष्य चार महाभूतो से मिलकर बना है। जब वह मरता है, तब पृथिवी महापृथिवी में, जल जल मे, तेज तेज मे, वायु वायु में और इन्द्रियाँ आकाश में लीन हो जाती है। लोग मरे को खाट पर रख कर ले जाते हैं, उसकी निन्दा-प्रशसा करते हैं। हड्डियाँ कबूतर की तरह उजली हो (बिखर) जाती हैं और सब कुछ भस्म हो जाता है। मूर्ख लोग जो दान देते है, उसका कोई फल नही होता। आस्तिकवाद (आत्मा है) झूठा है। मूर्ख और पंडित दोनो ही शरीर के नष्ट होते ही नाश (उच्छेद) को प्राप्त होते है। मरने के बाद कोई नहीं रहता। इस प्रकार श्रामण्यफल के पूछे जाने पर उन्होने उच्छेदवाद का ही विस्तार किया।

'पकुधकच्चायन' ने यही प्रश्न पूछने पर कहा—महाराज, ये सात काय अकृत, अवध्य तथा स्तम्भवत् है। ये चल नही होते, विकार को

प्राप्त नही होते । वे कौन सात काय है ? पृथिवीकाय, आपकाय, तेज-काय, वायुकाय, सुख, दुख और जीवन । यहाँ न कोई हन्ता है, न कोई घातयिता । तीक्ष्ण शस्त्र से यदि शीश भी काट दे तो भी कोई किसी को प्राण से नही मारता । अस्त्र उन कायो से अलग उनके बीचवाले अवकाश में गिरता है । इस प्रकार 'कच्चायन' ने दूसरी ही इधर-उधर की बातें बतायीं ।

भन्ते, 'निगण्ठनातपुत्त' से पूछने पर उन्होने इसका उत्तर दिया—महाराज, निगठ चार प्रकार के संवरो से आच्छादित रहता है—(१) वह जल के व्यवहार का वारण करता है (जिससे जल के जीव मारे न जाये), (२) सभी पापो का वारण करता है, (३) सभी पापो के वारण से धुले पाप-वाला होता है तथा (४) सभी पापो के वारण करने मे लगा रहता है । इस प्रकार यह भी उत्तर सन्तोषप्रद नही रहा ।

'सञ्जयबेलट्ठिपुत्त' से भी जब मैंने यही प्रश्न पूछा तो उन्होंने इसका उत्तर अनिश्चयवाद मे दिया—महाराज, यदि आप पूछे कि क्या परलोक है और यदि मै समझू कि परलोक है तभी तो उसे आप को बता सकता हूँ । मै ऐसा भी नही कहता, मै वैसा भी नही कहता, मै दूसरी तरह से भी नही कहता, मै यह भी नही कहता कि यह नही है, मै यह भी नही कहता कि यह नही नही है । यही स्थिति उनकी अयोनिज प्राणियो अथवा तथागत के सम्बन्ध मे रही । इस प्रकार उन्होने अनिश्चयवाद का ही व्याख्यान किया ।"

अजातशत्रु ने वही प्रश्न बुद्ध से भी पूछा । बुद्ध ने उत्तर मे प्रश्न किया—"तो मै आप से ही पूछता हूँ, जैसा आप समझे, वैसा उत्तर दे । आपका नौकर (जो) आपके सारे कामो को करता है—आप के कहने से पहले ही आप के सारे कामो को कर देता है; आपके सोने या बैठने के बाद ही स्वय सोता या बैठता है; आपकी आज्ञा सदा सुनने के लिए तैयार रहता है, प्रिय आचरण करनेवाला, प्रिय बोलनेवाला है; आपकी आज्ञाओ को सुनने के लिए सदा आपके मुँह की ओर ताकता है । उस

नौकर के मन में यह होता है—मगधराज वैदेहीपुत्र भी मनुष्य है, मैं भी मनुष्य हूँ। यह मगधराज पाँच प्रकार के भोगों का भोग करता है, जैसे मानो कोई देव हो, और मैं उसका नौकर हूँ; मैं भी क्यों न पुण्य करूँ ? ऐसा कहकर यदि वह शिर-दाढ़ी मुंडा, काषाय वस्त्र पहन, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाये, तो क्या आप कहेंगे कि यह पुरुष लौट आवे तथा फिर मेरा नौकर हो जाये ?"

"हम ऐसा नहीं कह सकते। बल्कि हम ही उसका अभिवादन करेंगे, उसकी सेवा करेंगे, उसे आसन देंगे; चीवर, पिंडपात, शयनासन, पथ्य देने के लिए निमंत्रण देंगे; उसकी सभी तरह देखभाल करेंगे।"

"तो महाराज, क्या साधु होने का यह फल इसी जन्म में नहीं मिल रहा है ?"

अजातशत्रु ने "हाँ" कहा।

इसके बाद बुद्ध ने आरम्भिक-शील, मध्यम-शील, महाशील एवं इन्द्रिय-सयम, स्मृति की सावधानी, सन्तोष, समाधि, चार ध्यान, ज्ञान-साक्षात्कार, सिद्धियाँ, दिव्यश्रोत, परचित्तज्ञान, पूर्वजन्मस्मृति और दिव्यदृष्टि प्राप्त करनेवाले श्रमणों की बात कही, जिनकी साधुता का फल भी इसी जन्म में मिलता है।

राजा बुद्ध के वचन का अभिनन्दन कर चला गया। बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा—"यदि इसने अपने धार्मिक धर्मराज पिता की हत्या न की होती, तो यह इसी आसन पर निष्पाप धर्मचक्षुवाला हो जाता।"

(३) **अम्बट्ठसुत्त**—भगवान् उस समय कोशल (अवध) देश के 'इच्छानगल' नामक ब्राह्मण-ग्राम में विहार करते थे। कोशल के राजा प्रसेनजित् ने पौष्करसाति नामक विद्वान् ब्राह्मण को 'उक्कट्ठा' की जागीर दे रखी थी। वह ब्राह्मण स्वय भगवान् के दर्शन को नहीं जा सका। उसने अपने प्रमुख छात्र अम्बष्ठ को यह कहकर इच्छानगल भेजा—"जाओ, देखो कि श्रमण गौतम की जो इतनी ख्याति फैली हुई है, वह ठीक है या यों ही। क्या उनमें शास्त्रों में वर्णित बत्तीस महापुरुष-लक्षण विद्यमान हैं ?"

अम्बष्ठ रथ द्वारा उस स्थान पर गया, जहाँ बुद्ध ठहरे थे और वहाँ जाकर भिक्षुओ से यह पूछा कि भगवान् कहाँ है ? उन्होंने कहा—"वह बंद द्वारवाली कोठरी है, चुपचाप धीरे से जा कर वहाँ पर कुंडी को हिलाओ, भगवान् तुम्हारे लिए द्वार खोल देंगे।" अम्बष्ठ ने वैसा ही किया। बुद्ध ने द्वार खोल दिया और उसने अन्दर प्रवेश किया।

उस समय अम्बष्ठ माणवक स्वय बैठे हुए ही भगवान् के टहलते वक्त कुछ पूछ रहा था; स्वय खडे हो बैठे भगवान् से कुछ पूछ रहा था। उसके इस अशिष्टाचार को देख भगवान् ने कहा—"अम्बष्ठ, क्या वृद्ध आचार्य-प्राचार्य ब्राह्मणो के साथ कथा-सलाप ऐसे ही होता है, जैसे कि तुम चलते, खडे, बैठे हुए मेरे साथ कर रहे हो ?"

"नही, हे गौतम, चलते ब्राह्मणो के साथ चलते हुए, खडे ब्राह्मणों के साथ खडे हुए, बैठे ब्राह्मणो के साथ बैठकर बात करनी चाहिए। किन्तु हे गौतम, जो मुडक, श्रमण, इम्य (नीच) कालों के पेट की सतान (शूद्र) है, उनके साथ ऐसे ही कथा-सलाप होता है, जैसा कि मेरा आप गौतम के साथ।"

"अम्बष्ठ, याचक के तौर पर तेरा यहां आना हुआ है। मनुष्य जिस काम के लिए आये, उसी अर्थ को उसे मन मे करना चाहिए। अम्बष्ठ जान पड़ता है, तू ने गुरुकुल मे वास नही किया।"

तब अम्बष्ठ खुन्साते, भगवान् की निन्दा करते तथा ताना देते हुए बोला—"शाक्य जाति चड है, शाक्य जाति क्षुद्र है, शाक्य जाति बकवादी है। नीच होने से शाक्य ब्राह्मणो का सत्कार नही करते और यह अयोग्य है कि नीच, नीच-समान शाक्य लोग ब्राह्मणों का सत्कार नही करते।"

इस प्रकार अम्बष्ठ ने इम्य (नीच) कह शाक्यो पर यह प्रथम आक्षेप किया।

"शाक्यो ने तेरा क्या बिगाड़ा ?"

"हे गौतम, एक समय मैं अपने आचार्य ब्राह्मण पौष्करसाति के किसी काम से कपिलवस्तु गया था। वहाँ शाक्यो का जहाँ सस्थागार (ससद्भवन)

था, वहाँ पहुँचा । उस समय बहुत से शाक्य तथा शाक्यकुमार संस्थागार में ऊँचे-ऊँचे आसनों पर बैठकर एक दूसरे पर अगुली गड़ाते हँस-खेल रहे थे । वहाँ किसी ने मुझे आसन नही दिया । अतः हे गौतम, यह अयुक्त है, जो इम्य तथा इम्यसमान शाक्य ब्राह्मणों का सत्कार नहीं करते ।"

इस प्रकार अम्बष्ठ माणवक ने शाक्यों पर दूसरा आक्षेप किया ।

"गौरैया भी, अम्बष्ठ, अपने घोसले पर स्वच्छन्द आलाप करती है, कपिलवस्तु तो शाक्यो का अपना घर है । अम्बष्ठ, इस थोड़ी-सी बात से तुम्हें अमर्ष नही करना चाहिए ।"

"हे गौतम, चार वर्ण है—क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र । इनमें क्षात्रय, वैश्य और शूद्र ये तीनो वर्ण ब्राह्मणो के ही सेवक है । अत यह अयुक्त है ।"

इस प्रकार अम्बष्ठ ने शाक्यो पर तीसरी बार आक्षेप किया ।

तब भगवान् को यह हुआ—यह बहुत बढ-बढ कर, इम्य कह, शाक्यो पर आक्षेप कर रहा है । क्यों न मैं इससे गोत्र पूछूँ ।

"अम्बष्ठ, तुम्हारा क्या गोत्र है ?"

"कृष्णायन, हे गौतम ।"

"तुम्हारे पुराने नाम-गोत्र के अनुसार शाक्य आर्यपुत्र होते है, तुम शाक्यो के दासी-पुत्र हो । शाक्य राजा इक्ष्वाकु को अपना पुरखा मानते है । अपनी प्रिया रानी के पुत्र को राज्य देने के ख्याल से ही राजा इक्ष्वाकु ने अपने चार बडे लड़को—उल्कामुख, करण्डु, हास्तिनिक और सिनी-सूर—को राज्य से निर्वासित कर दिया । वे निर्वासित हो हिमालय के पास सरोवर के किनारे एक बडे शाल (साखू) के वन मे रहने लगे । वर्ण (रग) के बिगड़ने के डर से उन्होने बहनो के साथ सहवास किया । राजा इक्ष्वाकु के पूछने पर अमात्यों ने यह बात बतायी, तो इक्ष्वाकु ने कहा—'कुमार शाक्य (शक्तिवाले) है ।' तब से यही (शाक्य) नाम पड़ गया । पिशाचों को देखकर उस समय उन्हे कृष्ण कहते थे । उसी कृष्ण के वंश के कार्ष्णायन है; तुम शाक्यो के दासी-पुत्र हो ।"

अम्बष्ठ ने इसे स्वीकार किया । तब दूसरे माणवकों ने यह हल्ला करना शुरू किया—"अम्बष्ठ शाक्यों का दासी-पुत्र है ।" भगवान् ने काष्र्ण्यायनो के पूर्वज कृष्ण की महिमा बतलायी और कहा—"कृष्ण ने दक्षिण देश मे जाकर, ब्रह्ममत्र (वेद) पढकर, राजा इक्ष्वाकु से उसकी क्षुद्ररूपी कन्या माँगी । राजा ने सोचा—मेरी दासी का पुत्र होकर मेरी कन्या माँगता है । यह सोच, क्रुद्ध होकर, उसने बाण चढाया; पर वह ऋषि के प्रताप से बाण को न छोड सकता था, न समेट सकता था । अमात्यो ने कृष्ण ऋषि के पास जाकर प्रार्थना की—'भदन्त, राजा का मगल हो ।'

कृष्ण ऋषि ने उन अमात्यो को यह अवगत कराया कि इन परिस्थितियो मे ऐसा करने पर ही राजा का मंगल होगा, और वैसा हुआ भी । उस ब्रह्मदण्ड से तर्जित राजा इक्ष्वाकु ने ऋषि को अपनी कन्या प्रदान की । अतएव वे कृष्ण एक महान् ऋषि थे ।" बुद्ध ने यही कहते हुए उन दूसरे माणवको को सम्बोधित करके कहा—"माणवको, अम्बष्ठ माणवक को दासी-पुत्र कह तुम बहुत अधिक मत लजवाओ । इससे कृष्ण की महत्ता ही सिद्ध होती है ।"

आगे सूत्र मे बुद्ध ने जातिवाद का खडन करते हुए बतलाया—"क्षत्रिय लोग जाति से शुद्धता का ज्यादा ख्याल रखते है—ब्राह्मण-कन्या से क्षत्रिय-कुमार का जो पुत्र होगा, उसे क्षत्रिय अभिषेक नही देगे; क्योकि मा की ओर से कमी है । इसके विरुद्ध ब्राह्मण क्षत्रिय-कन्या से उत्पन्न ब्राह्मण-पुत्र को श्राद्ध, स्थालिपाक यज्ञ, पहुनाई आदि सब में सहभोज देगे । ब्राह्मण उसे वेद पढ़ायेगे । उसे अपनी कन्या भी देगे । इस प्रकार, अम्बष्ठ, स्त्री की ओर से तथा पुरुष की ओर से क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है, ब्राह्मण हीन है ।"

"गोत्र लेकर चलनेवाले जनो मे क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है ।"

बुद्ध ने जाति तथा गोत्र के अभिमान को छोड विद्या और आचरण को मुख्य बतलाया—"हे अम्बष्ठ, क्या तुमने ब्राह्मणो के आचार्य-प्राचार्यों से सुना है कि जो वे ब्राह्मणो के अष्टक आदि आचार्य थे, क्या वे वैसे सुस्नात, सुविलिखित (अगराग लगाये), केश-मूँछ संवारे, मणिकुडल

आभरण पहने, स्वच्छवस्त्रधारी पाँच काम-भोगों में लिप्त, युक्त, घिरे रहते थे, जैसे कि आज आचार्य सहित तुम ?"

"नही, हे गौतम ।"

अम्बष्ठ ने लौटने पर आचार्य पौष्करसाति से सब बाते बतलायीं। वह स्वय दर्शन करने आया और अपने यहाँ भोजन का निमत्रण दे गया। भोजन के बाद बुद्ध-उपदेश सुन पौष्करसाति पुत्र-भार्या-परिषद्-अमात्य-सहित भगवान् की शरण मे आ उपासक हुआ। उसने कहा—"जैसे 'उक्कट्ठा' मे आप गौतम दूसरे उपासक-कुलो मे आते हैं, वैसे ही पौष्करसाति-कुल मे आवे। वहाँ माणवक या माणविका भगवान् का अभिवादन करेगी, आपको जल देंगी या आपके प्रतिचित्त को प्रसन्न करेगी, और यह उनके लिए चिरकाल तक हित तथा सुख के लिए होगा।

(४) **सोणदण्डसुत्त**—'सोणदण्ड' अंग देश के ब्राह्मण महाशाल और मगधराज बिम्बिसार की ओर से चपा का जागीरदार था। बुद्ध अंग देश मे चारिका करते हुए चंपा पहुँचे और 'गग्गरा' पुष्करणी के तट पर विहार करने लगे। उस समय 'सोणदण्ड' उनके दर्शन के लिए आया। उससे बुद्ध ने ब्राह्मण-धर्म के विषय मे प्रश्न किये। इसके उत्तर मे 'सोणदण्ड' ने 'सुजातित्व, वेद मे पारगत होना, अभिरूपत्व, शील तथा पाण्डित्य और मेधा' इन पाँच ब्राह्मण-धर्मों को बताया।

'पाँचो धर्मो मे किसी की कमी से भी क्या ब्राह्मण हो सकता है यह पूछने पर एक-एक को छोडते प्रज्ञा और शील को उसने आवश्यक बतलाया; क्योकि दोनो एक दूसरे को पूर्ण तथा शुद्ध करते हैं। इस पर साथ गये ब्राह्मणो ने बहुत हल्ला किया—"सोणदण्ड तो श्रमण गौतम की बात मान गया।" इस पर 'सोणदण्ड' ने स्वय उनसे वाद करने की बात करते हुए अपने भाजे अगक माणवक की उपमा देते कहा—"अगक माणवक अतिसुवर्ण तथा वेदपाठी भी है, किन्तु यदि वह शीलभ्रष्ट हो, तो वह सम्पूर्ण गुण किस काम का ?"

निमत्रण स्वीकार कर भगवान् दूसरे दिन सोणदण्ड' के घर भोजन

करने गये। 'सोणदण्ड' को धार्मिक कथा का उपदेश करके भगवान् चले गये।

बिलकुल शिष्य की तरह आचरण करने पर 'सोणदण्ड' का यश क्षीण होता, जिसमे उसके भोगों को हानि को सभावना होती। इसलिए उसने बुद्ध से कहा—"परिषद् मे बैठ हाथ जोडने को आप प्रत्युपस्थान, साफा हटाने को शिर से अभिवादन, यान मे बैठे कोडा उठाने को यान से उतरना तथा छत्र उठाने को अभिवादन समझे।"

(५) **कूटदन्तसुत्त**—मगधराज-सम्मानित विद्वान् ब्राह्मण महाशाल कूटदन्त सोणदण्ड के जैसा ही वैभवशाली मगधदेश के 'खाणुमत' गाँव का स्वामी था। पास के 'अम्बलट्ठिका' मे भगवान् विहार कर रहे थे। उनके दर्शन के लिए 'खाणुमत' के ब्राह्मण जा रहे थे। कूटदन्त ने भी जाना चाहा। इस पर ब्राह्मणों ने कहा—"आप बडे हैं आप न जाइए।" उस समय कूटदन्त एक महायज्ञ करने जा रहा था, जिसके लिए एक बड़ी संख्या मे बैल, बछड़े, बकरियाँ तथा अन्य पशु यज्ञ के स्थूण पर बलि के लिए लाये गये थे। कूटदन्त ने सुन रखा था कि भगवान् बुद्ध सोलह परिष्कार सहित त्रिविध-यज्ञ-सम्पदा से भलीभाति परिचित हैं। अतएव ब्राह्मणों के उस कथन पर कूटदन्त ने बुद्ध की महिमा का व्याख्यान करते हुए कहा—

"श्रमण गौतम विद्या तथा आचरण से युक्त है और इन्ही गुणो के कारण मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार ऐसे सम्राट् तथा पौष्करसाति के समान उच्च ब्राह्मण आदि उनकी शरण को गये है। इस समय वे हमारे गाँव 'खाणुमत' मे आये हैं। जो हमारे गाँव-खेत मे आते हैं, वे हमारे अतिथि होते है और अतिथि हमारे लिए सत्करणीय, गुरुकरणीय एवं पूजनीय है। साथ ही इस समय जो मै विशाल यज्ञ संपन्न करना चाहता हूँ, उसके सबन्ध मे मै बुद्ध से पूछना चाहता हूँ।"

ब्राह्मणों ने यह सुनकर उसका समर्थन किया और उसने बुद्ध के पास जाकर यज्ञ-सम्पदा के सम्बन्ध में प्रश्न किया। बुद्ध ने अतीत काल के महाविजित राजा के अहिंसामय यज्ञ का वर्णन उसे सुनाया, जिसमें गाय;

बैल, भेड़, बकरियाँ, सुअर तथा मुर्गियो आदि का वध नही हुआ था, साथ ही नौकरो को भयतर्जित करके उनसे बेगार भी नही लिया गया था। यज्ञों मे बुद्ध ने ज्ञान-यज्ञ, त्रिशरण-यज्ञ, शिक्षापद-यज्ञ, समाधि-यज्ञ तथा प्रज्ञा-यज्ञ को भी सम्मिलित करते हुए कूटदन्त को उनका व्याख्यान सुनाया।

कूटदन्त भी उनकी शरण गया तथा उसने दूसरे दिन बुद्ध को भोजनार्थ अपने घर पर निमन्त्रित किया। बुद्ध उसके यहाँ भोजन के लिए गये और भोजनोपरान्त उपदेश देकर वहाँ से चले गये।

(६) **महालिसुत्त**—वैशाली के महावन की कूटागारशाला मे बुद्ध विराज रहे थे। भिक्षु नागित भगवान् के उपस्थाक थे। उस समय मगध तथा कोशल के कुछ ब्राह्मण दूत किसी कार्य से वैशाली आये हुए थे। वे भगवान् के दर्शन के लिए कूटागारशाला मे पहुँचे। आयुष्मान् नागित ने कहा—"भगवान् के दर्शन का यह समय नही है।" यह सुनकर वे प्रतीक्षा करने लगे। लिच्छविकुमार 'ओट्ठद्ध' (कटे होठो वाले) भी एक बड़ी लिच्छवि-परिषद् के साथ वहाँ पहुँचे। भिक्षु नागित ने उनसे भी वही कहा कि भगवान् के दर्शन का यह समय नही है।

तब 'सिंह श्रमणोद्देश' ने दर्शनार्थ आये इन लोगो को प्रतीक्षा करते हुए देखकर नागित से कहा—"भन्ते काश्यप, अच्छा हो यदि यह जनता भगवान् का दर्शन पाये।" भिक्षु नागित ने उन्ही को भगवान् से यह निवेदन करने के लिए कहा। उन्होंने बुद्ध से निवेदन किया कि लोग उनके दर्शनार्थ प्रतीक्षा कर रहे है।

बुद्ध ने 'सिंह श्रमणोद्देश' को विहार की छाया में आसन बिछाने को कहा और वही आकर बैठ गये। वे ब्राह्मण दूत तथा 'ओट्ठद्ध' लिच्छवी आदि भी वही आये। वहाँ 'ओट्ठद्ध' लिच्छवी ने 'सुनक्खत्त' लिच्छवीपुत्र की बात छेड़ी कि वह तो दिव्यश्रोत्र आदि चमत्कारो के उद्देश्य से ही भिक्षु बना था और तीन वर्षों तक जब कुछ हाथ नही आया तो वह अलग हो गया। बुद्ध ने इसके उत्तर मे कहा—"महालि, इनसे भी अधिक उत्तम धर्म आदि है, जिनके साक्षात्कार तथा अनुभूति के लिए लोग भिक्षु-धर्म का पालन करते हैं।"

इसके पश्चात् बुद्ध ने आत्मवाद के सम्बन्ध मे 'मण्डिस्स' की कथा कही और निर्वाण के साक्षात्कार के उपाय बतलाये ।

(७) **जालियसुत्त**—बुद्ध के कौशाम्बी मे घोषिताराम नामक विहार मे विहार करते समय 'मुण्डिय' परिव्राजक तथा दारुपात्रिक के शिष्य जालिय इन दोनो ने वहाँ जाकर उनसे पूछा—"आवुस गौतम, वही जीव है, वही शरीर है, अथवा जीव दूसरा और शरीर दूसरा है ?" बुद्ध ने जीव तथा शरीर के भेद-अभेद कथन को अयुक्त बतलाते हुए शील, समाधि तथा प्रज्ञा के विश्लेषण द्वारा इसका व्याख्यान किया और उन्हे समझाया कि ये प्रश्न तो उनके सामने उठते है, जो अज्ञानान्धकार से आच्छादित है । पर एक अर्हत् के लिए इन प्रश्नो का कोई महत्त्व नही है, क्योकि वह अज्ञानान्धकार से दूर मिथ्यादृष्टियो से परे रह कर अन्तर्दृष्टि द्वारा स्थिति की वास्तविकता को समझता है ।

(८) **महासीहनादसुत्त**—कोशल देश के 'उजुञ्ञा' के पास 'कण्णकत्थल' 'मिगदाय' (मृगदाव) मे बुद्ध विहार करते थे । अचेल (नग्न साधु) काश्यप ने भगवान् के पास जाकर तपस्याओ के बारे मे पूछा । भगवान् ने कहा—"सभी तपस्याये निन्दनीय नही है । सच्चे धर्माचरण से भी मै सहमत हूँ । जो श्रमण-ब्राह्मण निपुण, पडित, शास्त्रार्थ-विजयी, बाल की खाल निकालनेवाले अपनी बुद्धि से दूसरे के मन को भिन्न करते दीखते है, वे भी किन्ही-किन्ही बातो मे मुझ से सहमत है, पर किन्ही मे मै सहमत नही हूँ । कुछ बाते जिन्हे वे ठीक कहते है, उन्हे हम भी ठीक कहते है और कुछ बातें जिन्हे वे ठीक नही कहते, उन्हें हम भी ठीक नही कहते । किन्तु कुछ बाते जिन्हे वे ठीक नही कहते, उन्हे हम ठीक कहते है । उनके पास जाकर मै ऐसा कहता हूँ—'आवुसो, जिन बातो मे हमलोग सहमत नही है, उनको अभी जाने दे, जिनमे सहमत है, उन्हे ही एक दूसरे से पूछे-विचारे'।"

वहाँ नाना प्रकार की झूठी तपस्याओ एव उनसे सम्बन्धित समस्याओ का उल्लेख अचेल काश्यप ने किया । भगवान् ने उनका खडन करते हुए

कहा—"जो नग्न रहता है, वह आचार-विचार को छोड़ देता है । वह शील-सम्पत्ति, चित्त-सम्पत्ति और प्रज्ञा-सम्पत्ति की भावना नही कर पाता और वह उनका साक्षात्कार भी नही कर पाता । अतः वह श्रामण्य तथा ब्राह्मण्य दोनो से दूर है । जब भिक्षु वैर और द्रोह से रहित होकर मैत्री-भावना करता है, चित्त-मलों के क्षय होने से निर्मल चित्त की मुक्ति और प्रज्ञा की मुक्ति को इसी जन्म मे स्वयं जानकर साक्षात्कार प्राप्तकर विहार करता है, यथार्थ में वही भिक्षु तब श्रमण या ब्राह्मण की संज्ञा से विभूषित होता है; सागमात्र खानेवाला शील, चित्त एव प्रज्ञा की भावना नही कर पाता।" इस प्रकार से बुद्ध ने झूठी शारीरिक तपस्याओ का निषेध किया और उनके विपरीत शील, चित्त एव प्रज्ञा सम्पत्तियो का व्याख्यान किया।

इसी प्रकरण मे बुद्ध ने राजगृह मे न्यग्रोध तपस्वी के प्रश्नो के पूछने की चर्चा की तथा उनके उत्तरो से सन्तुष्ट होकर किस प्रकार से सन्तुष्टि को प्राप्त हो वह उनकी शरण मे आकर प्रव्रजित हुआ, इसे भी उन्होने बतलाया । दूसरे मतवाले जो बुद्ध के दर्शन से प्रभावित होकर उनके पास प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा चाहते हैं, उसके बारे मे बुद्ध ने कहा—"काश्यप, दूसरे मतवाले परिव्राजक इस धर्म मे प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा चाहते हैं तो वे चार मास परीक्षार्थवास (परिवास) करते है, तब भिक्षु उन्हे प्रव्रज्या देते हैं । अभी तो मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि तुम कोई मनुष्य हो ।" अचेल काश्यप ने कहा—"भन्ते, मैं चार साल परिवास करूँगा, यदि भिक्षु लोग मुझ से सतुष्ट हो, तो प्रव्रज्या दे ।"

अचेल काश्यप ने भगवान् के पास प्रव्रज्या-उपसम्पदा पायी ।

(६) **पोट्ठपादसुत्त**—बुद्ध श्रावस्ती मे जेतवनाराम मे विहार कर रहे थे । उस समय 'पोट्ठपाद' परिव्राजक वही पास मे एक शाला मे ठहरा था । श्रावस्ती जाते समय बुद्ध 'पोट्ठपाद' के यहाँ गये । उस समय इस परिव्राजक की परिषद् में राजकथा, चोरकथा तथा ग्रामकथा आदि व्यर्थ की कथाओं की चर्चा हो रही थी । बुद्ध ने पहुँचते ही पूछा—"क्या कथा

बीच में चल रही थी ?" 'पोट्ठपाद' ने उत्तर दिया—"जाने दीजिए, भन्ते, इस कथा को.... यह भगवान् को पीछे भी सुनने को दुर्लभ न होगी ;" तथा इसके पश्चात् 'अभिसञ्ञा-निरोध' के सम्बन्ध मे अनेक मतो का उल्लेख करते हुए इसकी चर्चा बुद्ध से की । बुद्ध ने इन मतो को अन्धविश्वास बतलाते हुए उस अनुपम साधना का व्याख्यान किया, जिससे साधक 'निरोध-समापत्ति' नामक अवस्था को प्राप्त करता है, साथ ही इसके लिए शील तथा समाधि आदि सम्पत्तियो को भी उन्होने बताया। 'निरोध-समापत्ति' के बारे मे बुद्ध ने यह कहा—"इसमे 'अभिसञ्ञा' का पूर्ण निरोध हो जाता है । उसको यह होता है—'मेरा चिन्तन करना बहुत बुरा है और चिन्तन न करना ही श्रेयस् है । यदि मै अभिसस्करण न करूँ तो मेरी ये सञ्ञाएँ नष्ट हो जायेगी, और दूसरी उदार (विशाल) सञ्ञाएँ उत्पन्न होगी । क्यो न मैं न चिन्तन करूँ और न अभिसस्करण ।' उसके चिन्तन न करने तथा अभिसस्करण न करने से वे सञ्ञाएँ नष्ट हो जाती हैं और दूसरी उदार संज्ञाएँ उत्पन्न नहीं होती । वह निरोध को प्राप्त होता है और उसे क्रमश: अभिसञ्ञा निरोधवाली 'सप्रज्ञात-समापत्ति' उत्पन्न होती है'।" इसके पश्चात् वहाँ सञ्ञा और आत्मा पर प्रश्न उपस्थित हुआ और बुद्ध ने उसका भी विवेचन किया ।

'पोट्ठपाद' इस प्रसङ्ग को छोडकर अव्याकृत (अनिर्वचनीय) प्रश्नो पर आया कि (१) लोक नित्य है, (२) लोक अनित्य है, (३) लोक अन्तवान् है, (४) लोक अनन्तवान् है, (५) वही जीव है वही शरीर है, (६) जीव दूसरा है शरीर दूसरा है, (७) तथागत मरने के बाद उत्पन्न होते है, (८) मरने के बाद तथागत उत्पन्न नही होते, (९) मरने के बाद तथागत होते हैं, नही भी होते तथा (१०) मरने के बाद तथागत न होते है, न नही होते ।

बुद्ध ने इनका निर्वचन करते हुए यह व्यक्त किया कि ये दस प्रश्न अर्थयुक्त नही है और न धर्मयुक्त । ये न आदि-ब्रह्मचर्य के लिए, न उदासीनता के लिए, न विराग के लिए, न निरोध के लिए, न शान्ति के

लिए, न अभिज्ञा के लिए, न सम्बोधि के लिए और न निर्वाण के लिए उपयुक्त हैं। इसीलिए इनको अव्याकृत कहा गया है।

'पोट्ठपाद' ने तब व्याकृत के विषय में उनसे पूछा और बुद्ध ने उत्तर दिया कि उन्होने (१) दुःख, (२) दुःखहेतु, (३) दुःखनिरोध तथा (४) दुःखनिरोधगामिनी-प्रतिपद् (मार्ग) को व्याकृत किया है, क्योकि ये ही सार्थक, धर्म-उपयोगी, आदि- ब्रह्मचर्य-उपयोगी, निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, सम्बोधि तथा निर्वाण के लिए हैं। 'पोट्ठपाद' ने इस उपदेश का अनुमोदन किया और बुद्ध वहाँ से चले गये।

बुद्ध के जाने के पश्चात् परिव्राजको ने 'पोट्ठपाद' को चारो ओर से वाग्बाणो द्वारा जर्जरित करना प्रारम्भ कर दिया कि उसने ऐसे बुद्ध का अनुमोदन क्यो किया, जिसका कोई धर्म एकसा नही है? इसके दो-तीन दिन बाद 'पोट्ठपाद' तथा 'चित्त हत्थिसारपुत्त' बुद्ध के यहाँ गये और सब वृत्तान्त से उन्हे अवगत कराया।

भगवान् ने कहा—"पोट्ठपाद, परिव्राजक आँख बिना अधे है, उनमें तू ही एक आँखवाला है। कोई-कोई श्रमण ब्राह्मण आत्मा को मरने के बाद नीरोग, एकान्त-सुखी बतलाते हैं। उनसे मै पूछता हूँ—क्या तुम उस एकान्त-सुखवाले आत्मा को जानते हो? पूछने पर नही कहते हैं। क्या एकान्त-सुखवाले देवताओ के शब्द को सुनते हो? पूछने पर नही कहते हैं। ऐसा होने पर उनका कथन प्रमाणरहित है। 'पोट्ठपाद', जैसे कोई पुरुष कहे—इस जनपद मे जो जनपदकल्याणी (देश की परम सुन्दरी) है, उसे मै चाहता हूँ; उससे लोग पूछें—जिसे तू प्रेम करता है, जानता है वह क्षत्रियाणी है, ब्राह्मणी है, वैश्य-स्त्री है या शूद्री है? ऐसा पूछने पर 'नही' कहे। तब पूछे—जिसे तू चाहता है, जानते हो, वह किस नामवाली है, किस गोत्रवाली है, लम्बी, नाटी अथवा मझोली है, काली, श्यामा या मद्गुर वर्ण की है, ग्राम, निगम या नगर मे रहती है? ऐसा पूछने पर वह 'नही' यह उत्तर दे। तब लोग यह कहे—जिसे तू नही जानता, जिसको तूने नहीं देखा, उसको तू चाहता है, उसकी तू कामना करता है। इस पर

वह 'हाँ' कहे। ऐसा होने पर उस पुरुष का कथन क्या प्रमाणरहित नहीं हो जाता ?"

'पोट्ठपाद' ने इसे स्वीकार किया। इस पर बुद्ध ने यह कहा कि इसी प्रकार से उन श्रमण-ब्राह्मणों का कथन प्रमाणरहित है।

इसके पश्चात् बुद्ध ने कहा—"तीन प्रकार के शरीर है—स्थूल, मनोमय और अरूप। स्थूल शरीर चार महाभूतों से बना है। मनोमय शरीर इन्द्रियों से पूर्ण अङ्ग-प्रत्यङ्गवाला है। देवलोक में सञ्ञात्रय होना, यह अरूप शरीर है।

'पोट्ठपाद', मैं स्थूल शरीर-परिग्रह से छूटने के लिए धर्म का उपदेश करता हूँ। इस तरह मार्गारूढ हुए के चित्तमल उत्पन्न करनेवाले धर्म छूट जायेंगे, शोधक धर्म प्रज्ञा की परिपूर्णता तथा विपुलता को प्राप्त होंगे और वह पुरुष इसी जन्म में स्वयं जानकर, साक्षात् कर, प्राप्त कर विहरेगा.. मैं मनोमय शरीर तथा अरूप शरीर के परिग्रह से छूटने के लिए भी धर्मोपदेश करता हूँ।"

बुद्ध ने यह भी कहा कि वर्तमान शरीर ही सत्य है। 'पोट्ठपाद' तथा 'चित्त हत्थिसारिपुत्त' दोनों ने बुद्ध के पास प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा पायी।

(१०) सुभसुत्त—भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के थोड़े ही समय बाद आयुष्मान् आनन्द श्रावस्ती आये हुए थे। वहाँ पर 'सुभ' माणवक ने उनसे उन धर्मों को सीखने की जिज्ञासा प्रकट की, जिसका प्रतिपादन तथा प्रतिष्ठापन स्वयं बुद्ध द्वारा हुआ था। आनन्द ने उन्हें शील, समाधि तथा प्रज्ञा स्कन्धों के विषय में उपदेश दिया।

(११) केवट्टसुत्त—बुद्ध नालन्दा के पावारिकाम्रवन में ठहरे थे। वहाँ पर 'केवट्ट' गृहपति ने किसी भिक्षु द्वारा अलौकिक ऋद्धियों को प्रदर्शित करने के लिए बुद्ध से निवेदन किया, पर बुद्ध ने इसे स्वीकार नहीं किया। इसके पश्चात् बुद्ध ने उसे उस भिक्षु की कहानी सुनायी, जो अपने ऋद्धिबल से विभिन्न लोकों के देवताओं के पास गया था और सभी से यह प्रश्न किया

था कि चारो महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु) कहाँ निरुद्ध होते है। पर कोई सन्तोषजनक उत्तर न दे सका। यहाँ तक कि ब्राह्मणों के देवता ब्रह्मा भी इससे अनभिज्ञ थे। अन्त मे वह भिक्षु बुद्ध के पास आया और उपमा के द्वारा बुद्ध ने उसके इस प्रश्न का यह उत्तर दिया कि अनिदर्शन, अनन्त तथा अत्यन्त प्रभायुक्त निर्वाण जहाँ है, वहाँ चारो महाभूत नही रहते और वही दीर्घ, ह्रस्व, अणु, स्थूल, शुभाशुभ, नाम और रूप सर्वथा समाप्त हो जाते हैं।

(१२) **लोहिच्चसुत्त**—कोशल देश के 'सालवतिका' नदी के तट के पास का जागीरदार ब्राह्मण महाशाल लौहित्य तथा बुद्ध के सवाद का वर्णन इस सूत्र मे है। वह सभी धर्मो तथा धर्माचार्यों को झूठा मानता था। बुद्ध ने उसे इस ऐकान्तिक दृष्टि से मुक्त किया।

(१३) **तेविज्जसुत्त**—कोशल देश मे विचरण करते हुए बुद्ध अचिरवती (राप्ती) नदी के किनारे 'मनसाकट' नामक ब्राह्मण ग्राम मे पहुँचे। उस समय वह स्थान कोशल के प्रमुख ब्राह्मण 'चङ्की', 'तारुक्ख', 'पोक्खरसाति', 'जानुस्सोणि', 'तोदेय्य' तथा अन्य प्रसिद्ध ब्राह्मणो का निवास-स्थान था। वहाँ पर वशिष्ठ तथा भारद्वाज इन दो ब्राह्मण-तरुणो मे ब्रह्मलोक की प्राप्ति के विवादग्रस्त प्रश्न को लेकर विवाद उपस्थित हो गया। दोनो बुद्ध के पास गये। बुद्ध ने वेदो के रचयिता अष्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अङ्गिरा, भारद्वाज, वशिष्ठ, काश्यप तथा भृगु के बारे मे कहा कि उन्हे भी ब्रह्मा की सलोकता का मार्ग विदित नही था तथा इन त्रैविद्य ब्राह्मणो के पूर्वज ऋषियो को भी इसका ज्ञान नही था। बुद्ध ने उन्हे समझाते हुए कहा—"इस परिस्थिति मे भी त्रैविद्य ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—'जिसको न जानते हैं, जिसको न देखते हैं, उसकी सलोकता के लिए मार्ग का उपदेश करते हैं।'

जिस प्रकार अचिरवती नदी जल से लबालब भरी हो और किनारे पर बैठे कौवे के पानी पीने लायक हो। उसी समय पार जाने की इच्छा-वाला पुरुष आवे और इस किनारे पर खडे होकर दूसरे तीर का आह्वान

करे कि हे तीर तुम चले आओ। तो क्या नदी का पार (दूसरा किनारा) इस पार आ जायेगा? इसी प्रकार 'इन्द्र हवेम' (इन्द्र को पुकारता हूँ) आदि कहने से क्या ये चले आयेंगे। इस तरह इनके आवाहन में कोई अर्थ नहीं है।"

इसके पश्चात् बुद्ध ने अपने मार्ग का उन्हें उपदेश दिया।

२. महावग्ग

(१४) **महापदानसुत्त**—अपदान (अवदान) पुराण पुरुषों के चरित को कहते हैं। श्रावस्ती के जेतवन में कहे गये इस सूत्र में अनैतिहासिक विपश्यी बुद्ध के जाति, गोत्र, गर्भ में आने का लक्षण, गृहत्याग, प्रव्रज्या, बुद्धत्व-प्राप्ति, धर्मचक्र-प्रवर्तन, देवता-साक्षी आदि की कथा है, जो बुद्ध-जीवनी के ही आधार पर वर्णित है।

(१५) **महानिदानसुत्त**—उपनिषद् युग में प्रज्ञा-ज्ञान के लिए प्रसिद्ध कुरु देश के 'कम्मासदम्म' नामक निगम (कस्बे) में यह सूत्र आनन्द से भगवान् ने कहा। इसमें बुद्धदर्शन के मुख्य सिद्धान्त प्रतीत्यसमुत्पाद, नानात्मवाद, अनात्मवाद तथा प्रज्ञाविमुक्ति आदि का वर्णन है।

(१६) **महापरिनिब्बानसुत्त**—यह सूत्र बुद्ध की जीवनी के अन्तिम वर्ष (४८३ ई० पू०) का पूरा विवरण देता है। बुद्ध राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर रहते हैं, फिर पैदल चल पाटलिग्राम आते हैं, जहाँ मगध के महामन्त्री सुनीथ और वर्षकार लिच्छवियों (वज्जियों) से रक्षा पाने के लिए पाटलिपुत्र (पटना) नगर बसा रहे थे; फिर वैशाली में जीवन के अन्तिम वर्ष को बिता पेचिश की बीमारी में फँसते हैं। अच्छे होकर पैदल चलते 'कुसीनारा' (कसया) जा, वैशाख की पूर्णिमा को निर्वाण प्राप्त करते हैं।

लिच्छवियों पर कई बार आक्रमण कर असफल हो राजा अजातशत्रु ने अपने मन्त्री वर्षकार ब्राह्मण को भगवान् बुद्ध के पास गृध्रकूट पर्वत पर यह कहकर भेजा—"ब्राह्मण, भगवान् के पास जाओ और जाकर कहो—भन्ते, राजा इन वैभवशाली 'वज्जियों' को उच्छिन्न करना चाहता है।

भगवान् जैसा तुमसे बोले, उसे यादकर मुझसे कहो; तथागत अयथार्थ नहीं बोला करते।"

यह आदेश पाकर वर्षकार भगवान् बुद्ध के पास गृध्रकूट पर्वत पर पहुँचा और उनसे जाकर राजा अजातशत्रु के सन्देश को कहा। उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान् के पीछे खडे हो उन्हे पंखा झल रहे थे। भगवान् ने आनन्द को सम्बोधित करके कहा--

गण के अपराजेय होने के कारण

१. "आनन्द, क्या तुमने सुना है--वज्जी सम्मति के लिए बराबर बैठक (सन्निपात) करते है तथा सन्निपात-बहुल है ?"

"हाँ, भन्ते।"

"आनन्द, जब तक वज्जी बैठक करते रहेगे, सन्निपात-बहुल रहेगे, तब तक उनकी वृद्धि ही समझना, हानि नही।

२. आनन्द, क्या तुमने सुना है--वज्जी एक हो बैठक करते है, एक हो उत्थान करते है, एक हो करणीय को करते है ?"

"हाँ, भन्ते।"

"आनन्द, जब तक वज्जी .

३ आनन्द, क्या तुमने सुना है--वज्जी अप्रज्ञप्त (गैरकानूनी) को प्रज्ञप्त नही करते, प्रज्ञप्त का उच्छेद नही करते। जैसे प्रज्ञप्त है, वैसे ही प्राचीन वज्जि-धर्म को ग्रहण कर बर्तते है ?"

"हाँ, भन्ते।"

"आनन्द जब तक वज्जी...

४ आनन्द, क्या तुमने सुना है--वज्जियो के जो वृद्ध है, उनका वे सत्कार करते है, उन्हे मानते है, पूजते है तथा उनकी सुनने योग्य बात स्वीकार करते है ?

"हाँ, भन्ते"।

"आनन्द, जब तक वज्जी...

५ आनन्द, क्या तुमने सुना है—जो वह कुल-स्त्रियाँ है, कुल-कुमारियाँ है, उन्हे वे छीनकर जबर्दस्ती नही बसाते ?"

"हाँ, भन्ते ।"

"आनन्द, जब तक वज्जी .

६ आनन्द, क्या तुमने सुना है—वज्जियो के नगर के भीतर या बाहर के जो चैत्य (चौरा) है, वे उनका सत्कार करते है, मानते है, पूजते है, उनके लिए पहले किये गये दान को, पहले की गयी धर्मानुसार बलि को लोप नहीं करते ?"

"हाँ, भन्ते ।"

"आनन्द जब तक वज्जी .

७ आनन्द, क्या तुमने सुना है—वज्जी लोग अर्हतो की अच्छी तरह धार्मिक रक्षा करते हैं। किसलिए ? भविष्य मे अर्हत् राज्य मे आवे तथा आये हुए अर्हत् राज्य मे सुख से विहार करे ।"

"हाँ, भन्ते ।"

"आनन्द, जब तक वज्जी "

तब भगवान् बुद्ध ने वर्षकार ब्राह्मण को सम्बोधित किया—"ब्राह्मण, जब तक ये सात अपरिहानीय धर्म वज्जियो मे रहेगे, तब तक उनकी वृद्धि ही समझना चाहिये, हानि नही ।"

वर्षकार ने कहा—"हे गौतम, इनमे से एक भी अपरिहानीय धर्म से वज्जियो की वृद्धि ही समझनी होगी, सात धर्मो की तो बात ही क्या । राजा को उपलाप (रिश्वत) या आपस मे फूट को छोड युद्ध करना ठीक नही ।" ऐसा कहकर वह वहाँ से चला आया ।

'अट्ठकथा' के अनुसार ब्राह्मण ने लौटकर सारी बात राजा से कही । राजा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उपलाप का सौदा महँगा है, इसलिए फूट कराने का रास्ता पकडना चाहिये । दिखावे के रूप में राजा से झगडा करके निर्वासित हो वर्षकार वैशाली पहुँचा और वज्जियो ने उसका विश्वास किया । चार वर्षो मे ही उसने ऐसी फूट पैदा कर दी कि

दो आदमी भी एक साथ रास्ता नहीं चलने लगे। और इस प्रकार से इस अजेय गणतन्त्र को निर्बल कराकर अजातशत्रु ने उसे पराजित कर दिया।

अन्तिम यात्रा के लिए बुद्ध राजगृह से निकले। इसके पश्चात् इस सूत्र में राजगृह और नालन्दा के बीच 'अम्बलट्ठिका' (सिलाव) में आयुष्मान् शारिपुत्र द्वारा व्यक्त किये गये बुद्ध के प्रति सुन्दर उद्‌गारों का कथन है, पर यह असगत ही जान पड़ता है, क्योंकि उसके पहले ही शारिपुत्र का नालन्दा में देहावसान हो चुका था।

पाटलिपुत्र की ओर

'अम्बलट्ठिका' में ठहर कर बुद्ध पाटलिग्राम (पटना) की ओर चले। वहाँ के उपासकों ने नये आवसथागार (अतिथिशाला) में आसन बिछा, बुद्ध का उपदेश सुना। वहाँ सदाचार के लाभ तथा दुराचार की हानि पर रात भर उनका उपदेश होता रहा।

उस समय सुनीथ और वर्षकार मगध महामात्य वज्जियों को रोकने के लिए पाटलिग्राम में नगर बसा रहे थे। दोनों महामात्यों ने बुद्ध को भोजन का निमंत्रण दिया। भगवान् ने स्वीकार किया। भोजनोपरान्त दोनों मन्त्री भगवान् के पीछे-पीछे यह सोचते चले—जिस द्वार से श्रमण गौतम निकलेंगे, उसका नाम 'गौतम' द्वार होगा तथा जिस घाट से गंगा नदी पार करेंगे, उसका नाम 'गौतम' तीर्थ होगा। वही हुआ।

वैशाली की ओर

गंगा तट से वैशाली जाते समय बुद्ध कोटिग्राम में ठहरे और वहाँ पर उन्होंने भिक्षुओं को उपदेश दिया। इसके पश्चात् वे 'नादिका' (ज्ञातृका) गये और वहाँ भी धर्म के आदर्शों पर उनका व्याख्यान हुआ। वहाँ से बुद्ध वैशाली गये और अम्बपाली गणिका के आम्रवन में ठहरे। अम्ब-पाली ने सुना कि भगवान् आकर मेरे आम्रवन में ठहरे हैं। तब वह सुन्दर-सुन्दर यानों को जुतवाकर, उन पर बैठ, वैशाली से निकली और भगवान्

के ठहरने के स्थान पर गयी। वहाँ पहुँच, उन्हे अभिवादन करके, वह एक ओर बैठ गयी और भगवान् के उपदेशों का उसने श्रवण किया। धार्मिक कथा से संदर्शित होकर उसने दूसरे दिन के भोजन के लिए अपने यहाँ बुद्ध को निमत्रण दिया। भगवान् ने मौन हो उसे स्वीकार किया।

लिच्छवियों (वज्जियों) ने भी भगवान् के आगमन की बात सुनी। वे भी सुन्दर-सुन्दर यानो पर आरूढ हो वैशाली से निकले। उनमे से कोई कोई नीले, नील वर्ण, नील वस्त्र तथा नील अलकारवाले थे, तथा दूसरे दूसरे वर्णवाले। अम्बपाली ने तरुण लिच्छवियो के धुरो से धुरा, चक्को से चक्का तथा जुओ से जुआ टकरा दिया। उन लिच्छवियो ने उससे इसका कारण पूछा। उसने कहा—"आर्यपुत्रों, क्योकि मैंने भिक्षु-सघ के साथ कल के भोजन के लिए भगवान् को निमत्रित किया है।" लिच्छवियो ने कहा—"सौ हजार कार्षापण लेकर यह भोजन हमे कराने दे।" इसका उत्तर अम्बपाली ने दिया—"आर्यपुत्रो, यदि वैशाली जनपद भी दे दो, तब भी इस महान् भोजन को मैं न दूँगी।" लिच्छवियो ने चुटकी बजाते कहा—"अरे, हमे अम्बिका ने जीत लिया, अरे, हमे अम्बिका ने वंचित कर दिया।"

वे लिच्छवी भगवान् के दर्शनार्थ अम्बपाली-वन को गये। भगवान् ने दूर से ही उन्हे आते देखकर कहा—"अवलोकन करो, भिक्षुओ, लिच्छवियो की परिषद् को, अवलोकन करो, भिक्षुओ, लिच्छवियो की परिषद् को। भिक्षुओं, इस परिषद् को त्रायस्त्रिश-देव-परिषद् समझो।"

लिच्छवियो ने दूसरे दिन के भोजन के लिए भगवान् को निमंत्रित किया, जिसके सम्बन्ध मे बुद्ध ने यह उत्तर दिया कि उसके लिए वे अम्बपाली को वचन दे चुके हैं।

अगले दिन भोजन कराकर अम्बपाली ने उस आराम को बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-सघ को दे दिया।

वेलुवग्राम

वर्षा आ गयी। जब बुद्ध वेलुवग्राम (वेणुग्राम) मे पहुँचे तो उन्होने भिक्षुओ को जगह-जगह वर्षावास करने के लिये कहा, और स्वय वेलुवग्राम

मे ठहरे। वर्षावास के समय भगवान् को कड़ी बीमारी हो गयी, मरणान्तक पीड़ा होने लगी। भगवान् ने दृढ़ मनोबल से उसे सहा। बीमारी से उठने पर आनन्द ने प्रसन्नता प्रकट की—"भन्ते, भगवान् को मैंने सुखी देखा, अच्छा देखा। भगवान् की बीमारी मे मुझे दिशायें नही सूझ रही थी।"

"आनन्द, भिक्षु-संघ मुझसे क्या चाहता है ? मैंने बिना अन्दर-बाहर किये (छिपाये) धर्म-उपदेश कर दिये हैं। आनन्द, तथागत की कोई आचार्य-मुष्टि (रहस्य) नही है। जैसे पुराना छकड़ा बाँध-बूँधकर चलाये, वैसे ही तथागत का शरीर भी बाँध-बूँधकर चल रहा है। आनन्द, आत्म-शरण (स्वावलबी) नपरशरण, धर्मशरण होकर विहरो।"

निर्वाण की तैयारी

भगवान् चापालचैत्य में आनन्द के साथ विहरने गये। वहाँ उन्होने आयु-सस्कार (जीवनशक्ति) छोड दी। भूचाल हुआ। भगवान् ने अपने देखे स्थानो को स्मरण करते हुए कहा—"रमणीय है राजगृह का गौतम-न्यग्रोध, 'चोरपपात', वैभार-पर्वत की बगल मे सप्तपर्णी गुहा, ऋषिगिरि की बगल मे कालशिला, शीतवन के सर्प-शौण्डिक पहाड, तपोदाराम, वेणुवन का 'कलन्दक-निवाप,' जीवकाम्रवन, मद्रकुक्षि मृगदाव। इन-इन स्थानों मे भी, आनन्द, मैंने यह कहा था—'आनन्द, जिसने चार ऋद्धिपाद साधे है, वह चाहे तो कल्प भर ठहर सकता है, या कल्प के बचे काल तक।' मैंने भी चार ऋद्धिपाद साधे है, यदि मै चाहूँ तो कल्प भर ठहर सकता हूँ या कल्प के बचे काल तक। यदि आनन्द, तुमने याचना की होती तो तथागत दो ही बार तुम्हारी बात को अस्वीकार करते, तीसरी बार स्वीकार कर लेते। इसलिए, आनन्द, यह तुम्हारा ही दुष्कृत है, तुम्हारा ही अपराध है।

आनन्द, क्या मैंने पहले ही नही कह दिया—'सभी प्रियो से जुदाई, वियोग तथा अन्यथाभाव होता है। आनन्द, सो वह कहाँ मिल सकता है कि जो उत्पन्न, भूत, संस्कृत तथा नाशवान् है, वह नष्ट न हो। यह

संभव नहीं।' आनन्द, जो यह तथागत ने जीवन-संस्कार छोड़ा, त्यागा तथा प्रतिनिःसृष्ट किया, तथागत ने बिल्कुल पक्की बात कही है। जल्दी ही आज से तीन मास बाद तथागत का परिनिर्वाण होगा। जीवन के लिए तथागत क्या फिर वमन किये को निगलेंगे ? यह संभव नहीं। आओ, आनन्द, जहाँ महावन कूटागारशाला है, वहाँ चलें।"

महावन कूटागारशाला में आकर उन्होंने आयुष्मान् आनन्द से कहा—"वैशाली के सभी भिक्षुओं को उपस्थानशाला में एकत्रित करो।" वहाँ जाकर बुद्ध ने भिक्षु-संघ को उपदेश दिया—"मैंने जो धर्म का उपदेश किया है, तुम लोग अच्छी तौर से सीखकर उसका सेवन करना, भावना करना, भावना बढ़ाना, जिससे कि यह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी, बहुजनहितार्थ, बहुजनसुखार्थ, लोकानुकम्पार्थ तथा देव-मनुष्यों के अर्थ-हित-सुख के लिए हो," और इसी प्रसङ्ग में उन्होंने उस धर्म का व्याख्यान भी किया। उन्होंने कहा—"हन्त, भिक्षुओ, तुम्हें कहता हूँ—'संस्कार नाश होनेवाले हैं, प्रमादरहित हो आदर्श का सम्पादन करो, अचिरकाल में ही तथागत का परिनिर्वाण होगा, आज से तीन मास पश्चात् तथागत को परिनिर्वाण की प्राप्ति होगी।'"

इसके बाद बुद्ध पूर्वाह्न के समय वैशाली में पिण्डचार करके भोजनोपरान्त नागावलोकन (हाथी की तरह सारे शरीर को घुमाकर देखना) से वैशाली को देखकर आयुष्मान् आनन्द से बोले—"चलो, भण्डग्राम आम्रग्राम, जम्बूग्राम तथा भोगनगर चलें।" भोगनगर जाकर वहाँ के आनन्द चैत्य में विहार करते हुए धर्म (बुद्धोपदेश) की चार कसौटियाँ (महाप्रदेश) उन्होंने बतायीं—

बुद्धोपदेश की चार कसौटियाँ

(१) "भिक्षुओ, यदि कोई भिक्षु ऐसा कहे—'मैंने इसे भगवान् के मुख से सुना, मुख से ग्रहण किया है; यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता का उपदेश है' तो, भिक्षुओ, उस भिक्षु के भाषण का न अभिनन्दन करना

न निन्दा करना। ऐसा न करके उन पद-व्यजनो को अच्छी तरह सीख-कर, सूत्र से तुलना करना, विनय मे देखना। यदि सूत्र से तुलना करने पर तथा विनय मे देखने पर वह न सूत्र मे उतरे, न विनय मे दिखायी दे तो विश्वास करना कि अवश्य ही यह भगवान् का वचन नही है, इस भिक्षु का ही दुर्गृहीत है। ऐसा होने पर, भिक्षुओ, उसको छोड देना। यदि उपर्युक्त तुलना मे वह सूत्र तथा विनय दोनो मे उपस्थित हो तो यह विश्वास करना कि अवश्य ही वह भगवान् का वचन है और उसे धारण करना।

(२) और, भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु ऐसा कहे कि अमुक आवास मे स्थविर-युक्त, प्रमुख-युक्त भिक्षु-सघ विहार करता है, और मैंने उसके मुख मे सुना है कि यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता का शासन है तो विश्वास करना कि अवश्य ही वह भगवान् का वचन है, इसे सघ ने सुगृहीत किया।

(३) और, भिक्षुओ, यदि कोई भिक्षु ऐसा कहे कि अमुक आवास मे बहुत से बहुश्रुत, आगतागम, धर्मधर, विनयधर तथा मात्रिकाधर भिक्षु विहार करते हैं, यह मैंने उन स्थविरो के मुख से सुना और ग्रहण किया है तो विश्वास करना कि अवश्य ही वह भगवान् का वचन है, इसे सघ ने सुगृहीत किया।

(४) और, भिक्षुओ, यदि कोई भिक्षु ऐसा कहे कि अमुक आवास मे एक बहुश्रुत, आगतागम, धर्मधर, विनयधर तथा मात्रिकाधर भिक्षु विहार करता है और यह मैंने उस स्थविर के मुख से सुना है, मुख से ग्रहण किया है तो विश्वास करना कि अवश्य ही वह भगवान् का वचन है, इसे सघ ने सुगृहीत किया।"

बुद्धोपदेश की सत्यता की जाँच के लिए बुद्ध ने इन्ही चार कसौटियों को बताया।

वहा से वे पावा गये और चुन्द कर्मारपुत्र (सोनार) के आम्रवन मे ठहरे। चुन्द ने भोजन का निमत्रण दिया, उत्तम खाद्य (भोज्य) बहुत सा शूकरमार्दव तैयार कराया।

चुन्द के भात को खाकर भगवान को खून गिरने की कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई, मरणान्तक पीड़ा होने लगी। भगवान् ने बिना दुःखित हुए सब सहन

किया। फिर 'कुसीनारा' (कसया) की ओर वे चले। भगवान् मार्ग से हट एक वृक्ष के नीचे गये। आनन्द ने सघाटी बिछा दी।

"मेरे लिये पानी लाओ, प्यासा हूँ, पीऊँगा।"

आनन्द पानी लाये।

रास्ते मे 'आलारकालाम' के शिष्य 'पुक्कुस मल्लपुत्र' ने प्रसन्न हो, इगु वर्ण का एक शाल भगवान् को और एक आनन्द को ओढा दिया।

उसके जाने के पश्चात् आनन्द ने उस शाल मे भगवान् के शरीर को ढाँक दिया। उस समय बुद्ध का शरीर देदीप्यमान था। इसे देखकर आनन्द ने कहा--"कितना परिशुद्ध तथागत का वर्ण है ?" बुद्ध ने उत्तर दिया--"ऐसा ही है, आनन्द, ऐसा ही है, आनन्द। दो समयो मे, आनन्द, तथागत के शरीर का वर्ण अत्यन्त परिशुद्ध ज्ञात होता है। किन दो समयो मे ? जिस समय तथागत ने अनुपम सम्यक् सम्बोधि का साक्षात्कार किया, और जिस रात तथागत उपादि-रहित निर्वाण को प्राप्त होते है। आनन्द, आज रात के पिछले पहर 'कुसीनारा' के उपवर्त्तन नामक मल्लो के शालवन मे जोडे शाल वृक्षो के बीच तथागत का परिनिर्वाण होगा। आओ, आनन्द, जहाँ 'ककुत्था' नदी है, वहाँ चले। "अच्छा" कहकर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान को उत्तर दिया। वहाँ जाकर तथा स्नान करके बुद्ध थक गये थे, वे आयुष्मान् चुन्दक से बोले--"चुन्दक, मेरे लिए चौपती सघाटी बिछा दो। थक गया हूँ, लेटूँगा।" इसके पश्चात् उन्होने आनन्द से कहा--"कोई यदि चुन्द को फटकारे तो कहना--आवुस, लाभ है तुझे, तुमने सुलाभ कमाया, जो कि तथागत तेरे पिडपात को भोजन कर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। यह दो पिडपात समान-फलवाले है। कौन से दो ? जिस पिड-पात को भोजन कर तथागत अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करते है और जिस पिडपात को भोजन कर तथागत अनुपादिशेष निर्वाण-धातु को प्राप्त करते है।

हिरण्यवती नदी को पार करके बुद्ध 'कुसीनारा' के मल्लो के शालवन उपवर्त्तन मे पहुँचे। उन्होने आयुष्मान आनन्द को आमन्त्रित किया--

"आनन्द, यमक (जुड़वें) शालो के बीच मे उत्तर की ओर सिरहाना करके मचक (चारपाई) बिछा दो, थका हूँ, लेटूँगा।"

तब भगवान् दाहिनी ओर करवट करके सिंह-शय्या से लेटे। उस समय अकाल ही मे वे जोड़े शाल खूब खिले हुए थे। तथागत की पूजा के लिए उनके पुष्प भगवान् के शरीर पर बिखरते थे।

भगवान् ने कहा--"श्रद्धालु कुलपुत्रों के लिए ये चार स्थान दर्शनीय है, वैराग्य-दायक है--(१) जहाँ तथागत पैदा हुए(लुम्बिनी), (२) जहाँ तथागत बुद्धत्व को प्राप्त हुए (बोधगया), (३) जहाँ तथागत ने धर्मचक्र-प्रवर्तन किया (सारनाथ) और (४) जहाँ तथागत निर्वाण को प्राप्त हुए (कुसीनारा)। श्रद्धालु भिक्षु भिक्षुणियाँ उपासक-उपासिकायें यहाँ आवेगी।"

आनन्द से खबर सुन 'कुसीनारा' के मल्ल स्त्री-पुरुष तथागत की वन्दना करने आये। परिव्राजक सुभद्र ने दर्शन करना चाहा। आनन्द ने कहा--"नही, आवुस सुभद्र, तथागत को तकलीफ मत दो। भगवान् थके हुए है।"

आनन्द के मना करने को तथागत ने सुन लिया। उन्होंने उसे बुलाया और बिना चार मास का परिवास कराये सुभद्र को उपसम्पदा (भिक्षु-दीक्षा) दी। वे भगवान् के अन्तिम शिष्य हुए। अन्त मे बुद्ध ने कहा--"भिक्षुओ, अब तुम्हें कहता हूँ, सारे सस्कार (कृतवस्तु) नाशवान् है, आलस न कर जीवन-लक्ष्य का संपादन करो। यही तथागत का अन्तिम वचन है।"

भगवान् निर्वाण को प्राप्त हुए। अविरागी भिक्षु बाँहे पकड़ कर रोने लगे। आनन्द ने 'कुसीनारा' के मल्लो को सूचना दी। वे बडे धूमधाम से नृत्य-वाद्य द्वारा भगवान् के शरीर का सत्कार करते नगर के बाहर-बाहर उत्तर से जाकर, उत्तर द्वार से प्रवेश कर, पूर्वद्वार से निकल, नगर के पूर्व ओर, जहाँ मुकुट-बन्धन नामक मल्लो का चैत्य था, वहाँ ले गये। चिता जलाने के लिए महाकाश्यप के पावा से आने की प्रतीक्षा की गयी। महाकाश्यप ने एक कधे पर चीवर कर, अजली जोड़, तीन बार चिता की परिक्रमा की तथा उनके द्वारा भगवान् के चरणो मे शिर से वन्दना करने पर चिता जल उठी। अजातशत्रु ने, वैशाली के लिच्छवियो ने, कपिलवस्तु के शाक्यो ने, 'अल्लकप्प'

के 'बलियों' ने, वेठद्वीप (बेतिया) के ब्राह्मणों ने 'कुसीनारा' के मल्लों के पास दूत भेजकर स्तूप बनाने के लिए बुद्ध-धातु को माँगा। कुसीनारा के मल्लो ने भी उन सघो और गणो से कहा—"भगवान् हमारे ग्रामक्षेत्र मे परिनिर्वृत हुए, हम भगवान् के शरीरों का भाग नही देंगे।" वहाँ पर झगडा होने की सभावना हो गयी, पर द्रोण ब्राह्मण ने समझा-बुझाकर उन्हे उनमे बाँट दिया। सबने उन पर अपने-अपने यहाँ स्तूप बनवाये। बाँटनेवाले कुम्भ पर द्रोण ने स्वय स्तूप बनवाया। 'पिप्पलीवन' के मौर्य देर से आये थे। वे चिता के कोयले को ही स्तूप बनाने के लिए ले गये।

(१७) **महासुदस्सनसुत्त**—इसमे चक्रवर्ती राजा के जीवन का वर्णन है।

(१८) **जनवसभसुत्त**—इस सूत्र मे भक्तों की गति पर प्रकाश डाला गया है।

(१९) **महागोविन्दसुत्त**—मे शक्र द्वारा बुद्ध-धर्म की प्रशसा की गयी है, साथ ही बुद्ध के आठ गुण तथा उनके धर्म की महिमा का व्याख्यान है।

(२०) **महासमयसुत्त**—इसमे उस समय के प्रसिद्ध देवताओं के नाम-ग्राम आदि दिये हैं।

(२१) **सक्कपञ्हसुत्त**—इसमें इन्द्र द्वारा बुद्ध से किये गये प्रश्न दिये गये हैं और गन्धर्व पञ्चशिख का तिम्बरु गन्धर्वराज की कन्या से प्रेम का वर्णन है।

(२२) **सतिपट्ठानसुत्त**—यहाँ पर कायानुपश्यना, वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना तथा धर्मानुपश्यना आदि चार स्मृति-प्रस्थानो का व्याख्यान है।

(२३) **पायासिराजञ्ञसुत्त**—कोशलराज प्रसेनजित् के धर्मपुत्र भिक्षु कुमार काश्यप 'सेतव्या के' जागीरदार क्षत्रिय 'पायासी' के घोर नास्तिक (भौतिकवादी) विचारों का समाधान करने का प्रयत्न करते है। सेतव्या के 'पायासिय' राजन्य के जैन बनाने की बात जैनागम के 'रायपेसेणइय' मे भी है। 'पेसणइय' 'पायासी' का ही नाम है। दोनो मे 'सेतव्या' के

राजन्य को घोर नास्तिक (भौतिकवादी) बतलाया गया है। जैन सूत्र ने उसे अपना मत छोड जैन धर्म स्वीकार करने की बात लिखी है।

एक बार भिक्षु कुमार काश्यप कोसल देश मे पाँच सौ भिक्षुओ के साथ विचरते उस देश 'सेतव्या' (श्वेताम्बी) नगर में पहुँचे और शिशपावन मे ठहरे। उस समय पायासी राजन्य (माडलिक राजा) कोसल राजा प्रसेनजित् द्वारा दत्त 'सेतव्या' का स्वामी होकर रहता था। ब्राह्मण गृहस्थो को जाते देख, कारण जान, वह भी कुमार काश्यप के पास गया और बोला—'हे काश्यप मै इसी सिद्धान्त को मानता हूँ कि यह लोक भी नही है, परलोक भी नही है क्योंकि मरे नही लौटते; धर्म मे आस्तिको को भी मरने को इच्छा नही होती, मृत शरीर में यह चिह्न नही मिलता कि जीव यहाँ से निकला है।

"मेरे नौकर लोग चोर को पकडकर मेरे पास लाते हैं। उनको मै यह आदेश देता हूँ कि इस पुरुष को जीते जी एक बडे हडे मे डाल, मुँह बन्दकर, गीले चमड़े से बाँध, गीली मिट्टी लेपकर चूल्हे पर रख आँच लगाओ। वे वैसा ही करते हैं। जब मै जान लेता हूँ कि वह पुरुष मर गया होगा, तब मै उस हडे को उतार, धीरे से मुँह खोलकर (इस आशा से) देखता हूँ कि जीव को बाहर निकलते देखूँ। किन्तु मै यह नही देखता। इस कारण से यह लोक भी नही है, परलोक भी नही है, जीव मरकर पैदा नही होते तथा अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल नही होता।"

"राजन्य, मैं तुम्हीं से पूछता हूँ कि दिन मे सोते समय कभी स्वप्न मे तुमने रमणीय आराम, रमणीय वन, रमणीय भूमि, रमणीय पुष्करिणी नही देखी है ?"

"हाँ, देखी है।"

"उस समय क्या तुम्हारे यहाँ कुबड़े, बौने, स्त्रियाँ तथा कुमारियाँ पहरे पर नही होती।"

"ये पहरे पर उस समय होती है।"

"वे सब क्या तुम्हारे जीव को उद्यान के लिए निकलते और भीतर आते देखते है ?"

"नही, हे काश्यप।"

"राजन्य, जब वे तुम्हारे जीते हुए जीव को निकलते और भीतर जाते नही देख सकते, तो तुम मरे हुए जीव को निकलते या भीतर आते कैसे देख सकते हो।

राजन्य, इस कारण से भी लोक है "

"हे काश्यप, मेरे नौकर लोग चोर को पकडकर मेरे पास ले आते है। उन्हे मै यह आदेश देता हूँ कि इस पुरुष को पहले जीते जी तराजू पर तौल कर, रस्सी से गला घोट कर मार दो, और फिर तराजू पर तौलो। वे वैसा ही करते है। पर जब वह जीता रहता है तो हल्का होता है, किन्तु मरकर वही लोथ भारी हो जाती है। अत इस कारण से भी यह लोक नही है ..।"

"राजन्य, जैसे कोई पुरुष किसी सतप्त, आदीप्त, सप्रज्वलित, दहकते हुए लोहे के गोले को तराजू पर तौले, और फिर कुछ समय के बाद उसके ठडा हो जाने पर उसे तौले। इन दोनो परिस्थितियो मे वह लोहे का गोला कब हलका रहता है" ?

"हे काश्यप, जब वह लोहे का गोला आदीप्त होता है, तब हल्का होता है, किन्तु जब वह ठडा तथा बुझा हुआ होता है, तब भारी होता है।"

"राजन्य, इसी तरह जब यह शरीर आयु के साथ, श्वास के साथ तथा विज्ञान के साथ रहता है तो हल्का होता है और जब इनके साथ नही रहता तो भारी हो जाता है। अत इस कारण से भी लोक है।"

"हे काश्यप, जब मेरे नौकर चोर को पकड़कर लाते है तो उन्हे मै यह आदेश देता हूँ कि इस पुरुष को बिना मारे चमडा, माँस, स्नायु, हड्डी और मज्जा को अलग-अलग कर दो, जिसमे मै उसके जीव को निकलते देख सकूँ। वे वैसा ही करते है। इस प्रकार जब वह मरणासन्न होता है तो मै उसे चित सुलवा देता हूँ, जिससे मै जीव को निकलते देख सकूँ। किन्तु मै ऐसा नही देखता। उसकी वही आँखे रहती है, वही रूप रहते है, वही आयतन रहते है, पर वह देख नही सकता......उसका वही शरीर रहता है वही स्प्रष्टव्य रहता है, किन्तु स्पर्श नही कर सकता। अत. इस कारण से भी यह लोक नही है . ।"

"राजन्य, एक शख बजानेवाला शंख लेकर गाँव में गया और वहाँ गाँव के बीच मे तीन बार शख बजा, शख को जमीन पर रखकर एक ओर बैठ गया। तब वहाँ के लोगो ने एकत्रित होकर उससे यह पूछा कि यह शब्द किसका है। उसने उन्हे शंख को दिखाया। वे लोग शख को चित रखकर, पट रखकर, करवट रखकर यह कहने लगे कि हे शंख बजो। पर वह शंख नही बजी। यह देखकर उस शख बजानेवाले ने सोचा कि ये लोग बड़े मूर्ख हैं और पुन शख बजाकर वह वहाँ से चल दिया।

राजन्य, इसके पश्चात् उन गाँववालो के मन में यह आया कि जब यह शख पुरुष, व्यायाम तथा वायु के साथ होता है, तब बजता है, उसी तरह से ब यह शरीर आयु के साथ, श्वास के साथ और विज्ञान के साथ होता है तभी यह कार्यो को करने मे समर्थ होता है।

अतः, राजन्य, इस कारण से भी लोक है।"

अन्त मे अनेक प्रकार की उपमाओ से समझाते हुए कुमार काश्यप ने उससे कहा—"राजन्य, तुम बाल और अजान होकर अनुचित प्रकार से परलोक की खोज कर रहे हो। इस बुरी धारणा को छोड़ो, जिससे कि तुम्हारा भविष्य अहित तथा दु ख के लिए न होवे।"

पहले अपनी नास्तिकता को प्रसिद्धि के कारण 'पायासी' उसे छोड़ना नही चाहता था, पर अन्त मे वह उनका उपासक हो गया।

३. पाथिकवग्ग

(२४) **पाथिकसुत**—मल्ल देश के अनूपिया नगर मे भाषित इस सूत्र मे सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र के बौद्ध-धर्म से हटने को बात है। इसी सूत्र में पाथिक-पुत्र अचेल (नग्न) की बात आयी है।

बुद्ध ने कहा—"एक समय मै वैशाली के महावन कूटागारशाला मे विहार करता था। उस समय अचेल पाथिकपुत्र बड़े लाभ और बड़े यश को प्राप्त था। वह वैशाली मे सभाओ मे कहता था—'श्रमण गौतम ज्ञानवादी है, मै भी ज्ञानवादी हूँ। ज्ञानवादो को ज्ञानवादी के साथ अलौकिक

ऋद्धिबल दिखलाना चाहिए। श्रमण गौतम आधा मार्ग आवे, मैं भी आधा मार्ग आऊँ। हम दोनो मिलकर ऋद्धिबल दिखावे। यदि श्रमण गौतम एक ऋद्धिबल दिखावेंगे, तो मैं दो दिखाऊँगा।'. यह सुन कर एक दिन मैं अचेल पाथिकपुत्र के आराम को गया। और वैशाली के लोगो का एक भारी जमघट वहाँ पर एकत्रित हो गया। यह सब देख सुन कर अचेल पाथिकपुत्र सविग्न होकर वहाँ से चला गया। लोग उसे बुलाने गये, पर वह नही आया।"

ईश्वर निर्माणवाद का खंडन

इसी सूत्र मे आगे कहा है--"जो श्रमण-ब्राह्मण ईश्वर या ब्रह्मा के सृष्टि-कर्तापन के मत को श्रेष्ठ बतलाते हैं, उनके पास जाकर मैं कहता हूँ---क्या सचमुच आप लोग ईश्वर के कर्तापन को श्रेष्ठ बतलाते है ? मेरे ऐसा पूछने पर उत्तर न देकर मुझी से पूछने लगते है। मैं कहता हूँ--आवुसो, बहुत दिनो के बाद कोई समय आयेगा, जब इस लोक का प्रलय होगा . जब इस लोक की उत्पत्ति होती है। उसके (ब्रह्मा) मन मे होता है---मै ब्रह्मा, महाब्रह्मा, विजेता, अविजित, सर्वज्ञ, वशवर्ती, ईश्वर, कर्ता, निर्माता, स्वामी, भूत तथा भविष्य के प्राणियो का पिता हूँ। मैंने ही इन प्राणियो को उत्पन्न किया। सो क्यो मेरे ही मन से उत्पन्न होकर ये प्राणी यहाँ आये है[1]। और जो प्राणी पीछे उत्पन्न होते हैं, उनके मन मे भी होता है---यह ब्रह्मा, महाब्रह्मा, ईश्वर, कर्ता, पिता है। इसने हम लोगो को उत्पन्न किया है. . इस प्रकार आप लोग ईश्वर का कर्तापन बतलाते है।"

इस प्रकार से ब्रह्मा के सृष्टिकर्ता होने की कल्पना का यहाँ खंडन किया गया है।

(२५) उदुम्बरिकसीहनादसुत्त---इसमे वास्तविक तपस्याओं का वर्णन है।

---

१. मिलाओ, उपनिषद्---एकोऽहं बहु स्याम्।

(२६) **चक्कवत्तिसीहनादसुत्त**—इस सुत्त में स्वावलम्बन, चक्रवर्तिव्रत, 'निर्धनता सभी पापो की जननी', 'पापो से आयु तथा वर्ण का ह्रास', 'पुण्य से आयु तथा वर्ण की वृद्धि' और भिक्षुओ के कर्त्तव्य का व्याख्यान है ।

(२७) **अग्गञ्ञसुत्त**—इस सुत्त मे वर्णित विषय है—प्रलय के बाद सृष्टि, प्राणियो का प्रथम आहार, स्त्री-पुरुष का भेद, वैयक्तिक सम्पत्ति का आरम्भ, चारों वर्णों का निर्माण, राजा की उत्पत्ति, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र की उत्पत्ति, श्रमण की उत्पत्ति, जन्म नही कर्म की प्रधानता ।

(**वैयक्तिक सम्पत्ति**)—आदिकाल मे खाने-पीने की चीजें स्वय होती थी । तब किसी आलसी के मन मे यह आया—शाम-सुबह दोनो समय धान लाने के लिए जाने का काम क्यो करूँ ? क्यो न एक ही बार शालि (धान) लाऊँ । वह प्राणी एक ही बार लाया, तब कोई दूसरा प्राणी उस प्राणी के पास गया, जाकर बोला,—"आओ, शालि लाने चले ।" "हम तो एक ही बार लाये ।" देखा-देखी वह भी एक ही बार चार दिनों के लिए लाया । फिर शालि बाँटने लगे, दो खेत मे मेड बाँधने लगे । लालची आदमी ने अपने भाग की रक्षा करते हुए दूसरे के भाग को चुराकर खा लिया । दूसरी बार भी उसने दूसरे के भाग को चुराकर खा लिया । लोगो ने उसे पकड़ लिया । कोई हाथ से मारने लगे, कोई डडे से, कोई लाठी से । इसके बाद चोरी, निन्दा, मिथ्या-भाषण और दडकर्म होने लगे । तब प्राणी इकट्ठा हो कहने लगे—"प्राणियो में पाप प्रकट हुए, जो कि चोरी है । आओ, हम लोग एक ऐसे आदमी को निर्वाचित करे, जो हम लोगो को ठीक से चलाये । हम उसे शालि का भाग देंगे । महाजनो द्वारा सम्मत (निर्वाचित) होने से उसका नाम 'महासम्मत' पड़ा—'क्षत्रिय' दूसरा नाम पड़ा । वह धर्म से दूसरो का रजन करता था, अतः 'राजा' यह उसका तीसरा नाम पड़ा ।

(२८) **सम्पसादनीयसुत्त**—मे यह वर्णित है कि परम ज्ञान में बुद्ध तीनो कालो में अनुपम हैं और सर्वदा ही उनमें अभिमानशून्यता रहती है; साथ ही यहाँ बुद्ध के उपदेशों की विशेषताओं का भी उल्लेख है ।

(२६) **पासादिकसुत्त**--इसे बुद्ध ने शाक्य देश मे 'वेधञ्ञा' नामक स्थान मे कहा था। 'निगण्ठनातपुत्त' (जैन तीर्थंकर) की उसी समय 'पावा' में मृत्यु हुई थी। और इसके पश्चात् उनके अनुयायियों में फूट हो गयी थी। उनके दो पक्ष हो गये थे और वे आपस मे खूब लड़ रहे थे। चुन्द ने यह खबर आनन्द को दी। वे इसे लेकर बुद्ध के पास गये। तथागत ने विवाद के लक्षण, योग्य गुरु तथा धर्म आदि का व्याख्यान करते हुए बुद्ध के उपदिष्ट धर्मों तथा बुद्धवचन की कसौटी को बताया। उन्होने यह भी कहा कि बुद्ध कालवादी तथा यथार्थवादी हैं और इसी प्रसग मे अव्याकृत तथा व्याकृत एवं पूर्वान्ति और अपरान्त दर्शनो को बताते हुए स्मृति-प्रस्थानो का उन्होंने उपदेश किया।

(३०) **लक्खणसुत्त**--मे महापुरुषो के बत्तीस लक्षण वर्णित हैं; साथ ही यह भी बताया गया है कि किस कर्म-विपाक से इन लक्षणो मे से कौन-सा लक्षण उत्पन्न होता है।

(३१) **सिगालोवादसुत्त**--राजगृह के वेणुवन कलन्दकनिवाप में भाषित यह सुत्त है। इसमे गृहस्थो का कर्तव्य बतलाया गया है, इसीलिए इसे गृहस्थो का विनय भी कहते हैं।

'सिगाल' राजगृह का वैश्य-पुत्र था, वह साँझ-सबेरे उठकर सभी दिशाओ को हाथ जोड़कर नमस्कार करता था। भगवान् के पूछने पर उसने कहा--"मरते समय पिता ने कहा था--तात, दिशाओ को नमस्कार करना। पिता के वचन को मानकर मै नमस्कार करता हूँ।" भगवान् ने कहा--"ऐसे नही; चार कर्मक्लेशो के नाश से इस लोक तथा परलोक की विजय होती है। (१) प्राणी न मारना, (२) चोरी न करना, (३) व्यभिचार न करना, (४) झूठ न बोलना।

सम्पत्ति नाश के कारण है--(१) शराब आदि का सेवन, (२) चौरस्ते की सैर, (३) समाज-नाच-तमाशा, (४) जुआ, (५) बुरे मित्र की मित्रता, (६) आलस्य मे फँसना। इनमें से हरेक से अनिष्ट होता है।" इसमे आगे बतलाया है--

"चार मित्र-रूप में शत्रु है—(१) परधनहारक, (२) बातूनी, (३) सदा मीठा बोलनेवाला, (४) अपाय (हानिकर) बात में सहायक।

सच्चे मित्र में चार बातें होती हैं—(१) उपकारी होना, (२) सुख-दुःख में समान रहनेवाला, (३) अर्थ प्राप्त करानेवाला, (४) अनुकम्पक।

दिशाओ का नमस्कार है—(१) माता-पिता पूर्व दिशा, (२) आचार्य दक्षिण दिशा, (३) पुत्र-स्त्री पश्चिम दिशा, (४) मित्र-अमात्य उत्तर दिशा, (५) दास-कमकर नीचे की दिशा, (६) श्रमण-ब्राह्मण ऊपर की दिशा। इनकी सेवा दिशा-नमस्कार है।"

(३२) आटानाटियसुत्त—भूत-प्रेतो को सतुष्ट करने के लिये यह सुत्त राजगृह में गृध्रकूट पर भाषित किया गया। इसमें बहुत से भूतो तथा यक्षों के नाम आये हैं।

(३३) संगीतिपरियाय[1]—'पावा' में चुन्द कर्मारपुत्र के आम्रवन में विहार करते समय वहाँ के नवीन संस्थागार मे यह सुत्त भाषित किया गया। 'निगण्ठनातपुत्त' के मरने पर जैनो के आपसी विवाद की खबर सुनकर यहाँ बुद्ध के मन्तव्यो की सूची एक-दो-आदि सख्याक्रम से 'सारिपुत्त' के मुख से दी गयी है।

(३४) दसुत्तरसुत्त—एक समय भगवान् बुद्ध चम्पा में 'गग्गरा' पुष्करणी के तीर पर विहार कर रहे थे। वहाँ पर 'सारिपुत्त' ने बौद्ध-मन्तव्यों की सूची प्रस्तुत करते हुए उपकारक, भावनीय, परिज्ञेय, प्रहातव्य, हानि-भागीय, विशेषभागीय, दुष्प्रतिवेध्य, उत्पादनीय, अभिज्ञेय तथा साक्षात्करणीय आदि दशोत्तर धर्मों का व्याख्यान किया।

—:o:—

---

१. अङ्गुत्तरनिकाय के प्रारम्भिक छोटे रूप को यह सुत्त व्यक्त करता है।

दूसरा अध्याय

२. मज्झिमनिकाय

मज्झिमनिकाय सुत्तपिटक का दूसरा निकाय है। इसमें १५२ सुत्त हैं और नालन्दा देवनागरी संस्करण के ११, ११४ पृष्ठों को एक भाणवार मानकर यदि हम गणना करें तो इस निकाय में ११६ भाणवार होते हैं। इस निकाय में भाणवारों की संख्या उल्लिखित नहीं है। ११६ भाणवार का अर्थ हुआ कि ३२ अक्षरों के श्लोकों में गिनने पर अनुष्टुप् संख्या होगी २६७५० । इसका हिन्दी अनुवाद मैंने किया था, जो कि महाबोधि सभा, सारनाथ से १९३३ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसमें वर्णित विषय क्या है, यह भी उसी संस्करण से मैं उद्धृत करता हूँ। इस सम्बन्ध में इस निकाय का विभाजन बतलाना अत्यन्त आवश्यक है। इसमें तीन पण्णासक हैं— (१) मूलपण्णासक, (२) मज्झिमपण्णासक तथा (३) उपरिपण्णासक। प्रथम दो पण्णासकों में ५०–५० सुत्त हैं और अन्तिम में ५२। ये पण्णासक भी विभिन्न वर्गों में विभक्त हैं। नीचे यह सम्पूर्ण विभाजन सुत्त, स्थान तथा विषय के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है—

§ २. मूलपण्णासक

१. (१) मूलपरियायवग्ग

सुत्त	स्थान	विषय
१. (१) मूलपरियायसुत्त	उक्कट्ठा (कोसल)	अज्ञानियों की दृष्टि
२. (२) सब्बासव०	जेतवन (श्रावस्ती)	चित्तमल का शमन, अनात्मवाद
३. (३) धम्मदायाद०	"	धर्मके वारिस बनो, वित्त के नहीं, मध्यम मार्ग

४. (४) भयभेरव०	,,	भय-भूत, सम्मोहन, विद्याएँ
५. (५) अनङ्गण०	,,	चित्त-मलवाले चार व्यक्ति, भिक्षुपन का ध्येय
६. (६) आकङ्खेय्य०	,,	भिक्षु-नियमो का ग्रहण, ध्यान, प्रज्ञा, भवसागर के बन्धन
७ (७) वत्थ०	,,	चित्त-मलो का दुष्प-रिणाम, उपक्लेश, मैत्री आदि भावनायें, तीर्थ-स्नान व्यर्थ
८ (८) सल्लेख०	,,	यथार्थ तप
९. (९) सम्मादिट्ठि०	,,	पुण्य, पाप, अष्टाङ्गिक मार्ग, प्रतीत्य-समुत्पाद
१०. (१०) सतिपट्ठान०	कम्मासदम्म (कुरु)	काय, मन आदि की भावनायें, बोधि-लाभ के ढग, आर्य सत्य

२. (२) सीहनादवग्ग

११ (१) चूलसीहनाद०	जेतवन	उपादान या आस-क्ति का त्याग, निदान या प्रतीत्य-समुत्पाद

१२.	(२) महासीहनाद०	अवरपुरवनसड (वैशाली)	बुद्ध-जीवनी, तपस्यायें, अचेलक व्रत, आहार-शुद्धि
१३.	(३) महादुक्खक्खन्ध०	जेतवन	भोगों के दुष्परिणाम, राजदण्ड
१४.	(४) चूलदुक्खक्खन्ध०	न्यग्रोधाराम (कपिलवस्तु)	भोगों के दुष्परिणाम, भोगो के कारण दुष्कर्म, सुख से सुख अप्राप्य मतवाद
१५	(५) अनुमान०	संसुमारगिरि, भेसकलावन मिगदाव (भग्ग)	दुर्वचन के कारण और उनके हटाने के उपाय
१६.	(६) चेतोखिल०	जेतवन	चित्त के काटे, ऋद्धियाँ
१७.	(७) वनपत्थ०	,,	कैसा अरण्य-वास करना चाहिए
१८.	(८) मधुपिण्डक०	,,	विषयो के स्पर्श, उत्पत्ति और परित्याग
१९.	(९) द्वेधावितक्क०	,,	चित्तमलो का शमन, ध्यान, अष्टाङ्गिक मार्ग
२०.	(१०) वितक्कसण्ठान०	,,	राग-द्वेष-मोह के हटाने का उपाय

३. (३) ओपम्मवग्ग

२१.	(१) ककचूपम०	,,	आरे से चीरे जाने पर भी शान्त रहना, शान्ति है।
२२.	(२) अलगद्दूपम०	,,	साँप पकड़ने की सावधानी उपदेश ग्रहण में भी अपेक्षित, अनात्मवाद
२३.	(३) वम्मिक०	,,	पुरुष की निर्वाण-प्राप्ति में बाधाएँ,

२४. (४) रथविनीत० „ ब्रह्मचर्य के गौण और मुख्य उद्देश्य, विशुद्धियाँ
२५. (५) निवाप० „ संसार के शिकार होने से बचने का उपाय
२६. (६) पासरासि० „ बुद्धजीवनी (गृहत्याग से धर्म-चक्रप्रवर्तन तक)
२७. (७) चूलहत्थिपदोपम० „ यथार्थ गुरु और उसकी मोक्षोपयोगी शिक्षायें,
२८. (८) महाहत्थिपदोपम० „ उपादान स्कन्धो से मुक्ति, प्रतीत्य-समुत्पाद
२९. (९) महासारोपम० गृध्रकूट (राजगृह) भिक्षु-जीवन का वास्तविक उद्देश्य
३०.(१०) चूलसारोपम० जेतवन „ „ „

४. (४) महायमकवग्ग

३१. (१) चूलगोसिङ्ग० गिजकावसथ (नादिका) अनुरुद्ध आदि की सिद्धाई
३२. (२) महागोसिङ्ग० गोसिङ्गसालवन कैसे पुरुष से तपोभूमि शोभित,
३३. (३) महागोपालक० जेतवन बुद्धधर्म में सफलताओ की ग्यारह बाते,
३४. (४) चूलगोपालक० उक्काचेल० मुमुक्षुओ की श्रेणियाँ
३५. (५) चूलसच्चक० कूटागार(वैशाली) आत्मवाद-खंडन, अनात्म-वाद-मंडन
३६. (६) महासच्चक० महावन (वैशाली) काया की नही, मन की साधना
३७. (७) चूलतण्हासङ्खय० पूर्वाराम (श्रावस्ती) तृष्णा के क्षय का उपाय

३८. (८)	महातण्हासङ्खय०	जेतवन ,,	(अनात्मवाद, धर्म बेड़े की की भाँति पार होने के लिए पकड रखने के लिए नही, प्रतीत्यसमुत्पाद, जीवनप्रवाह, गर्भ, बाल्य, यौवन, संन्यास, शील-समाधि)
३९. (९)	महाअस्सपुर०	अश्वपुर(अंग)	श्रमण-ब्राह्मण बनने का ढंग
४०.(१०)	चूलअस्सपुर०	,,	,, ,,

५. (५) चूलयमकवग्ग

४१ (१)	सालेय्य०	साला (कोसल)	काय-वचन-मन के सदाचार और दुराचार से सुगति, दुर्गति
४२ (२)	वेरञ्जक०	जेतवन	,, ,,
४३. (३)	महावेदल्ल०	,,	प्रज्ञाहीन, प्रज्ञावान्, प्रज्ञा, विज्ञान, वेदना, सज्ञा, शील, समाधि, प्रज्ञा, आयु, उष्मा और विज्ञान
४४. (४)	चूलवेदल्ल०	वेणुवन (राजगृह)	आत्मवाद-त्याज्य, उपादान-स्कन्ध, अष्टाङ्गिक मार्ग आदि
४५. (५)	चूलधम्मसमादान०	जेतवन	चार प्रकार के धर्मानुयायी
४६. (६)	महाधम्मसमादान०	,,	धर्मानुयायियो के भेद
४७. (७)	वीमसक०	,,	गुरु की परीक्षा
४८. (८)	कोसम्बिय०	कौशाम्बी	मेलजोल के लिए उपयोगी छह बाते
४९. (९)	ब्रह्मनिमन्तनिक०	,,	बुद्ध द्वारा सृष्टिकर्ता ईश्वर तथा ब्रह्मा का खडन
५०.(१०)	मारतज्जनीय०	सुसुमारगिरि	मानापमान का त्याग, मार को फटकारना

§ २. मज्झिमपण्णासक

६. (१) गहपतिवग्ग

५१. (१) कन्दरक०	गग्गरा (चंपा)	स्मृति-प्रस्थान भावना, आत्म-तप आदि चार पुरुष
५२. (२) अट्ठकनागर०	वेणुग्राम (वैशाली)	ग्यारह अमृतद्वार (ध्यान)
५३ (३) सेख०	न्यग्रोधाराम (कपिलवस्तु)	सदाचार, इन्द्रिय-संयम, परिमितभोजन, जागरण, सद्धर्म, ध्यान
५४. (४) पोतलिय०	आपण (अगुत्तराप)	संसार के जाल तोड़ने के उपाय
५५. (५) जीवक०	जीवकाम्रवन (राजगृह)	मास-भोजन मे नियम
५६. (६) उपालि०	प्रावारिकाम्रवन (नालन्दा)	मन ही प्रधान, काया-वचन गौण
५७. (७) कुक्कुरवतिक०	हलिद्दवसन (कोलिय)	निरर्थक व्रत, चार प्रकार के कर्म
५८. (८) अभयराजकुमार०	वेणुवन (राजगृह)	हित-अप्रिय बात कहनी चाहिएँ
५९. (९) बहुवेदनीय०	जेतवन	नीरक्षीर सा मेलजोल, संज्ञा-वेदयित निरोध
६० (१०) अपण्णक०	साला (कोसल)	द्विविधारहित धर्म, अक्रियावाद आदि मतवाद, आत्मतप आदि चार पुरुष

७. (२) भिक्खुवग्ग

६१ (१) अम्बलट्ठिक-राहुलोवाद०	वेणुवन (राजगृह)	मिथ्या-भाषण की निन्दा

६२. (२) महाराहुलोवाद०	जेतवन	प्राणायाम, कायिकभावना, मैत्री आदि भावनाएं
६३. (३) चूलमालुङ्क्य०	,,	व्याकृत, अव्याकृत करने का कारण
६४. (४) महामालुङ्क्य०	,,	ससार के बन्धन और उनसे मुक्ति
६५. (५) भद्दालि०	,,	नियमित जीवन, क्रमशः शिक्षा
६६. (६) लकुटिकोपम०	आपण (अगुत्तराप)	छोटी बात भी भारी हानि पहुँचा सकती है
६७. (७) चातुम०	आमलकीवन (चातुमा)	भिक्षुपन के चार विघ्न
६८. (८) नलकपान०	नलकपान (कोसल)	मुमुक्षु के कर्तव्य
६९. (९) गुलिस्सानि०	वेणुवन (राजगृह)	सयम, नही तो अरण्यवास व्यर्थ
७०. (१०) कीटागिरि०	कीटागिरि (काशी देश)	सयम, चार प्रकार के पुरुष, लोभी गुरु

८. (३) परिब्बाजकवग्ग

७१. (१) तेविज्जवच्छ-गोत्त०	महावनकूटागार-शाला (वैशाली)	बुद्ध अपने को सर्वज्ञ नही मानते, तीन विद्याएँ, सुगति के उपाय
७२. (२) अग्गिवच्छगोत्त०	जेतवन	मतवादो का बधन, अव्याकृत, आग के बुझने जैसा निर्वाण,
७३. (३) महावच्छगोत्त०	वेणुवन (राजगृह)	निर्वाण का मार्ग, निर्वाण प्राप्ति का उपाय
७४. (४) दीघनख०	गृध्रकूट (राजगृह)	मतवादों का आग्रह, काया

		अपनी नहीं, सभी अनुभव अनित्य
७५. (५) मागन्दिय०	कम्मासदम्म (कुरु)	इन्द्रिय-संयम, ऊपर जाने पर नीचे का सुख फीका
७६. (६) सन्दक०	घोशिताराम (कौशाम्बी)	व्यर्थ और असतोषकर प्रव्रज्या, अक्रियावाद आदि मत, विद्याएँ, अर्हत् का ज्ञान
७७ (७) महासकुलुदायी०	कम्मासादम्म (कुरु)	गुरु मे वास्तविक श्रद्धा कैसे, बुद्धत्व के उपयोगी धर्म
७८. (८) समणमण्डिक०	जेतवन	सुकर्मी पुरुष
७९ (९) चूलसकुलदायि०	वेणुवन (राजगृह)	जैनो का सिद्धान्त, परिव्राजको का सिद्धान्त, सुखमय लोक का मार्ग
८०.(१०) वेखणस०	जेतवन	परिव्राजकों का सिद्धान्त, पूर्वान्त अपरान्त के सिद्धान्त

९. (४) राजवग्ग

८१ (१) घटिकार०	(कोसल)	त्यागमय गृहस्थ-जीवन
८२. (२) रट्ठपाल०	थुल्लकोट्ठित (कुरु)	त्यागमय भिक्षु-जीवन, भोगो की असारता
८३. (३) मखादेव०	मिथिला (विदेह)	कल्याणमार्ग
८४. (४) माधुरिय०	गुन्दवन (मथुरा)	वर्ण-व्यवस्था का खडन
८५. (५) बोधिराजकुमार०	भेसकलावन (सुसुमारगिरि)	बुद्धजीवनी (गृहत्याग से बोधि-प्राप्ति तक)
८६. (६) अङ्गुलिमाल०	जेतवन	अङ्गुलिमाल डाकू का जीवन-परिवर्तन
८७. (७) पियजातिक०	,,	प्रियों से शोक और दुःख की उत्पत्ति

८८. (८) वाहीतिय०	,,	बुद्ध निन्दनीय कर्म नहीं कर सकते
८९. (९) धम्मचेतिय०	मेतलूप (शाक्य)	भोगो के दुष्परिणाम, बुद्ध-प्रज्ञा
९०.(१०) कण्णत्थलक०	कण्णत्थल-कमिगदाय (उजुका)	सर्वज्ञता असभव, वर्ण-व्यवस्था-खडन, देव, ब्रह्मा

१०. (५) ब्राह्मणवग्ग

९१. (१) ब्रह्मायु०	मिथिला (विदेह)	महापुरुषलक्षण, बुद्ध का रूप, गमन, घर में प्रवेश आदि
९२. (२) सेल०	आपण (अगुत्तराप)	भोजन का ढग, ब्राह्मण, वेदगू आदि की व्याख्या, बुद्ध के गुण, सेल ब्राह्मण की प्रव्रज्या
९३ (३) अस्सलायण०	जेतवन	वर्ण-व्यवस्था-खंडन
९४ (४) घोटक-मुख०	खेमियअम्बवन (वाराणसी)	आत्मतप आदि चार पुरुष
९५ (५) चङ्कि०	ओपसाद-देववन (कोसल)	बुद्ध के गुण, ब्राह्मणो के वेद और ऋषि, सत्य की रक्षा और प्राप्ति
९६ (६) फासुकारि०	जेतवन	वर्ण-व्यवस्था-खंडन
९७. (७) धान-ञ्जानि०	वेणुवन (राजगृह)	अपना किया अपने साथ
९८. (८) वासेट्ठ०	इच्छानङ्गल	वर्ण-व्यवस्था-खडन
९९. (९) सुभ०	जेतवन	गृहस्थ और सन्यास की तुलना, ब्रह्मलोक का मार्ग,
१००. (१०) सङ्गारव०	मडलकप्प (कोसल)	बुद्ध की तपश्चर्या

§ ३. उपरिपण्णासक

११. (१) देवदहवग्ग

१०१. (१) देवदह०	देवदह (शाक्य)	कायिक तपस्या निस्सार, मानस-तप ही लाभप्रद, भिक्षुपन का सुख,
१०२. (२) पञ्चत्तय०	जेतवन	आत्मवाद आदि नाना मतवाद
१०३. (३) किन्ति०	बलिहरणवनसड (कुसिनारा)	मेलजोल का ढग
१०४ (४) सामगाम०	सामगाम (शाक्य)	बुद्ध के मूल उपदेश, सघ में विवाद होने का कारण, सात प्रकार के फैसले, मेलजोल का ढग
१०५. (५) सुनक्खत्त०	महावनकूटागार-शाला (वैशाली)	ध्यान, चित्त-सयम
१०६ (६) आनञ्ज-सप्पाय०	कम्मासदम्म (कुरु)	भोग निस्सार हैं
१०७. (७) गणकमोग्ग-ल्लान०	पूर्वाराम (श्रावस्ती)	क्रमश धर्म मे प्रगति
१०८ (८) गोपकमो-ग्गल्लान०	वेणुवन (राजगृह)	बुद्ध के बाद भिक्षुओ का मार्ग दर्शयिता
१०९. (९) महापुण्णम०	पूर्वाराम (श्रावस्ती)	स्कन्ध, आत्मवाद-खंडन
११०. (१०) चूलपुण्णम०	,,	सत्पुरुष और असत्पुरुष

१२. (२) अनुपदवग्ग

१११. (१) अनुपद०	जेतवन	सारिपुत्त के गुण—प्रज्ञा, समाधि आदि

११२. (२) छब्बिसोधन०	,,	अर्हत् की पहचान
११३. (३) सप्पुरिसधम्म०	,,	सत्पुरुष और असत्पुरुष
११४. (४) सेवितब्ब-नसेवितब्ब०	,,	सेवनीय; असेवनीय
११५. (५) बहुधातुक०	,,	धातुए, दृष्टि-प्राप्त पुरुष, स्थाना-स्थान-जानकार
११६ (६) इसिगिलि०	ऋषिगिरि (राजगृह)	ऋषिगिरि के प्रत्येक बुद्ध
११७. (७) महाचत्ता-रीसक०	जेतवन	ठीक समाधि
११८. (८) आनापान-सति०	पूर्वाराम (श्रावस्ती)	प्राणायाम, ध्यान
११९ (९) कायगता-सति०	जेतवन	कायायोग
१२० (१०) सङ्खारुप्पत्ति०	,,	पुण्य-सस्कारों का विपाक

१३. (३) सुञ्ञतावग्ग

१२१. (१) चूलसुञ्ञता०	पूर्वाराम (श्रावस्ती)	चित्त की शून्यता का योग
१२२ (२) महासुञ्ञता०	न्यग्रोधाराम (कपिलवस्तु)	,,
१२३ (३) अच्छरियधम्म०	जेतवन	बुद्ध कहाँ और कैसे उत्पन्न होते है
१२४. (४) बक्कुल०	वेणुवन (राजगृह)	बक्कुल का त्यागमय भिक्षु-जीवन
१२५. (५) दन्तभूमि०	,,	चित्त की एकाग्रता, सयम की शिक्षा

१२६. (६) भूमिज०	,,	उचित रीति से पालन किया गया ब्रह्मचर्य सफल होता है
१२७. (७) अनुरुद्ध०	जेतवन	भावना-योग (अप्रमाण चित्त-विमुक्ति)
१२८. (८) उपक्किलेस०	घोषिताराम (कौशाम्बी)	कलह का कारण और चिकित्सा, योग-युक्तियाँ
१२९. (९) बाल पंडित०	जेतवन	नरक, पापी मूर्ख के कर्म स्वर्ग, चक्रवर्ती राजा
१३०. (१०) देवदूत०	,,	नरक-वर्णन

१४. (४) विभङ्ग-वग्ग

१३१. (१) भद्देकरत्त०	जेतवन	भूत-भविष्य की चिन्ता छोड वर्तमान में लगो
१३२. (२) आनन्दभद्देकरत्त०	,,	,, ,,
१३३. (३) महाकच्चायन-भद्देकरत्त०	तपोदाराम (राजगृह)	,, (सविस्तार)
१३४. (४) लोमसकङ्गिय-भद्देकरत्त०	जेतवन	,,
१३५. (५) चूलकम्मविभङ्ग०	,,	कर्मों का ल
१३६. (६) महाकम्मविभङ्ग०	वेणुवन (राजगृह)	,,
१३७. (७) सळायतनविभङ्ग०	जेतवन	छह आयतन, कामना और निष्कामना, स्मृति-प्रस्थान
१३८. (८) उद्देसविभङ्ग०	,,	इन्द्रिय-संयम, ध्यान, अपरिग्रह
१३९. (९) अरणविभङ्ग०	,,	मुमुक्षु की चर्या
१४०. (१०) धातुविभङ्ग०	राजगृह	धातुओं का विभाग, मन की साधना

१४१. (११)	सच्चविभङ्ग०	ऋषिपतन-मृगदाव (वाराणसी)	चार आर्यसत्य
१४२ (१२)	दक्खिणाविभङ्ग०	न्यग्रोधाराम (कपिलवस्तु)	सब व्यक्ति से ऊपर है

१५. (५) सळायतनवग्ग

१४३	(१) अनाथपिण्डिकोवाद०	जेतवन	अनाथपिण्डिक की मृत्य, अनासक्ति योग
१४४	(२) छन्नोवाद०	वेणुवन (राजगृह)	अनात्मवाद, छन्न की आत्म-हत्या
१४५	(३) पुण्णोवाद०	जेतवन	धर्म-प्रचारक की सहिष्णुता और त्याग
१४६	(४) नन्दकोवाद०	,,	अनात्मवाद, बोध्यङ्ग
१४७	(५) चूलराहुलोवाद०	,,	अनात्मवाद
१४८	(६) छछक्कक०	,,	इन्द्रिय, विषय, विज्ञान और और तीनो का समागम, अनात्मवाद (सविस्तार)
१४९	(७) महासळायतन०	,,	तृष्णा और दु ख
१५०	(८) नगरविन्देय्य०	नगरविन्देय्य (कोसल)	सत्कार के पात्र
१५१	(९) पिण्डपातपारिसुद्धि०	वेणुवन (राजगृह)	विषयो का त्याग, स्मृति-प्रस्थान आदि भावनाये
१५२.	(१०) इन्द्रियभावना०	मुवेणुवन (कजगला)	इन्द्रिय-सयम

मज्झिमनिकाय के ४० सूत्र सक्षिप्त तथा गम्भीर है। ये राजमहल (बिहार) के कजगल (ककजोल) से लेकर कुरु देश के 'कम्मासदम्म'

नगर तक कहे गये है। इन सूत्रो से स्पष्टतया यह ज्ञात होता है कि बुद्ध के मूल उपदेशों तथा उनके कार्य का लक्ष्य क्या था ? दो सूत्रो में बुद्ध ने वत्सराज उदयन के पुत्र बोधिराजकुमार से सुसुमारगिरि (चुनार) मे अपने जीवनी से सम्बन्धित कुछ बातें भी बतलायी है। सूत्रों की विषय-सूची पहले ही दे दी गयी है। यहाँ पर कुछ विशेष सूत्रो का उल्लेख किया जा रहा है—

१. **मूलपरियायसुत्त** (१)—इस निकाय का यह प्रथम सुत्त है। ज्ञान के अभिमान मे चूर ब्राह्मण भिक्षुओ को यह उपदेश दिया गया था। यह तत्त्व-ज्ञान से परिपूर्ण सुत्त है। अत इसे समझने मे उन्हे कठिनाई हुई तथा इसे वे न समझ सके, और उपदेश के समाप्त होने पर चुप रहते हुए बुद्ध के कथन का उन्होने अभिनन्दन नही किया। इस सुत्त मे दर्शन का व्याख्यान इस प्रकार से किया गया है—ससार मे मिट्टी, पानी, आग, हवा, प्राणी, देवता, प्रजापति, ब्रह्मा, आभास्वर देवता, शुभकृत्स्न देवता, अभिभू देवता, आकाशानन्त्यायतन देवता, विज्ञानानन्त्यायतन देवता, आकिञ्चन्यायतन देवता, नैवसज्ञानासज्ञायतन देवता, एकत्व, नानात्व, तथा निर्वाण आदि सज्ञाएँ सभी व्यवहार के लिए हैं। एक अल्पज्ञ सामान्य व्यक्ति से लेकर अर्हत् तक सभी व्यवहार मे इन सबका प्रयोग नित्य करते है। पर इन दो प्रकार के पुरुषो के इस व्यवहार मे अन्तर केवल इतना है कि मूर्ख अथवा सामान्य जन उन्हे परमार्थत वैसा ही ग्रहण करके उनसे लिप्त होते है, पर अर्हत् जो परमार्थत उनके शून्य स्वभाव का ज्ञाता होता है, उनमे लिप्त नही होता। जिस व्यक्ति ने अपने ज्ञान के विकास मे जिस स्तर की प्राप्ति की है, वह उसी के अनुसार व्यवहार की सम्पूर्ण वस्तुओ को परमार्थ रूप मे देखता है, और अपने स्तर के अनुसार ही उतनी ही दूर तक वह उनसे अलिप्त हो पाता है।

इस प्रकार इस सुत्त मे उस समय की देवकल्पना भी व्यक्त है। यह दार्शनिक तत्त्वो के गम्भीर विवेचन से परिपूर्ण सुत्त है, अतएव कठिन है।

२. अनङ्गणसुत्त (५)—इस सुत्त मे यह कहा गया है कि संसार में चार प्रकार के मनुष्य होते हैं—(१) वे जो बुरे होते हुए भी यह नहीं जानते कि उनमे बुराई है, (२) वे जो बुरे होते हुए यह जानते हैं कि उनमें बुराई है, (३) वे जो अच्छे होते हुए भी यह नही जानते कि उनमे अच्छाई है और (४) वे जो अच्छे होते हुए यह जानते हैं कि उनमे अच्छाई है। इनमें पहले प्रकार के मनुष्य सबसे हीन हैं और चौथे प्रकार के सबसे उत्तम। इस प्रकार से इस सुत्त मे बुद्ध के अग्रश्रावकों (सारिपुत्त तथा मोग्गल्लान) के वार्तालाप का उल्लेख है। अन्त मे आयुष्मान् 'महामोग्गल्लान' ने आयुष्मान् 'सारिपुत्त' के इस धर्मोपदेश का बड़ा अभिनन्दन किया।

३. चूलदुक्खक्खन्धसुत्त (१४)—एक समय भगवान् शाक्य देश में कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम मे विहार करते थे। शाक्यो का प्रधान नेता महानाम शाक्य एक दिन बुद्ध के पास गया। बुद्ध ने बताया कि रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श ये पाँच कामगुण है। सारा ससार इन्ही के आस्वाद के पीछे पड़ा है। यही अशान्ति तथा दुःख के घर है। इस सम्बन्ध मे बात करते-करते बुद्ध ने निर्ग्रन्थ (जैन साधुओं) की बात कही—

"महानाम, मै राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर रहता था। उस समय बहुत से निर्ग्रन्थ साधु ऋषिगिरि की कालशिला पर खड़े रहने का व्रत ले, आसन छोड, उपक्रम करते, दुःख, कटु, तीव्र वेदना झेल रहे थे। शाम को उनके पास जाकर मैने पूछा—'आवुसो, तुम क्यों दुःख कटु, तीव्र, वेदना झेल रहे हो'? उन्होने कहा—'आवुस, 'निगण्ठनातपुत्त' (महावीर) सर्वज्ञ, सर्वदर्शी एव अपरिशेष दर्शन के जाननेवाले है और चलते, खड़े, सोते तथा जागते सदा ही उनको ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है।

वे ऐसा कहते है—

निगण्ठो, तुम्हरा पहले का किया जो कर्म है, उसे इस कड़वी दुष्कर तपस्या से अन्त करो और जो इस वक्त यहाँ काय-वचन-मन से संवृत हो, यह भविष्य के लिए पाप का न करना हुआ। इस प्रकार पुराने कर्मों का

तपस्या से अन्त होने से और नये कर्मों के न करने से भविष्य मे चित्त अनास्रव (निर्मल) होगा। भविष्य मे आस्रव न होने से कर्म का क्षय होगा। कर्मक्षय से दुःखक्षय, दुःखक्षय से वेदना (झेलने) का क्षय, वेदनाक्षय से सभी दुःख नष्ट होगे। हमे यह विचार पसन्द है। हम इससे सन्तुष्ट है।'

"ऐसा कहने पर, महानाम, मैंने इन निगण्ठो से कहा—

'क्या तुम आवुसो, जानते हो—हम पहले थे ही, हम नही न थे ?'

'नही, आवुस।'

'क्या तुम आवुसो, यह जानते हो—हमने पूर्व मे पाप कर्म किये ही है, नही नहीं किये ?'

'नही, आवुस।'

'क्या तुम आवुसो, यह जानते हो—अमुक अमुक पाप कर्म किये है ?'

'नही, आवुस।'

'क्या तुम आवुसो, यह जानते हो—इतना दुःख नाश को प्राप्त हो गया, इतना दुःख नष्ट करना है तथा इतने दुःख के नष्ट होने से सब दुःख का नाश हो जायेगा।'

'नही, आवुस।'

'क्या तुम आवुसो, जानते हो—इसी जन्म मे अकुशल धर्मों का प्रहाण और कुशल धर्मों का लाभ होता है ?'

'नही, आवुस।'

'इस प्रकार, निगण्ठो, तुम इन सबको नही जानते। ऐसा होने से तो इस पक्ष की प्राप्ति होने लगेगी कि जो लोक में रुद्रकर्मा हैं वे ही निगण्ठ साधु बनते है।'

इस पर निगण्ठों ने फिर कहा—

'आवुस गौतम, सुख से सुख प्राप्य नही है, दुःख से सुख प्राप्य है। यदि सुख से सुख प्राप्य होता, तो राजा मागध श्रेणिक बिम्बिसार सुख प्राप्त

करता और आप से अधिक सुखविहारी होता। चूंकि सुख से सुख प्राप्य नही है, अतएव यह स्थिति नही है। और यदि इसका उत्तर हम आप ही से जानना चाहे, तो क्या होगा ?'

'तो, आवुसो निगण्ठो, हम तुम्ही से पूछते है, जैसा तुम्हे जॅचे, वैसा उत्तर दो। तुम लोग क्या मानते हो--राजा बिम्बिसार काया से बिना हिले, वचन से बिना बोले सात रात-दिन एकान्त सुख अनुभव करते क्या विहार कर सकता है अथवा वह छह, पाँच, चार, तीन, दो तथा केवल एक रात-दिन एकान्त सुख का अनुभव करते विहार कर सकता है ?'

'नही आवुस।'

'आवुसो निगण्ठो, मै काया से बिना हिले, वचन से बिना बोले एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह तथा सात रात-दिन एकान्त सुख का अनुभव करता विहार कर सकता हूँ। निगण्ठो, ऐसा होने पर कौन अधिक सुख-विहारी है--राजा मागध श्रेणिक बिम्बिसार अथवा मै ?'

'ऐसा होने पर तो राजा बिम्बिसार से आयुष्मान् गौतम ही अधिक सुखविहारी है।'"

बुद्ध ने महानाम को यह प्रदर्शित किया कि राजा यथार्थ मे सुखी नही है। उसके जो सुख दिखलायी पडते है, वे बाह्य साधनो पर अवलम्बित है और वे साधन परम रूप से अस्थायी है। राजा को यदि एकान्त स्थान मे रहना पडे, तो वह व्याकुल हो जायेगा। पर इसके विपरीत ध्यानी भिक्षु अनेक दिनो तक एक बन्द स्थान मे पडे-पडे अपने स्वय के अन्दर प्रस्फुटित होनेवाले सुख-स्रोत मे आनन्द लेता रहेगा। इससे यही सिद्ध होता है कि वास्तविक सुख एक ध्यानी प्रव्रजित को ही प्राप्त होता है, राजा को नही।

महानाम ने सन्तुष्ट हो भगवान् के उपदेश का अभिनन्दन किया।

४. अलगद्दूपमसुत्त (२२)--बुद्ध अपने उपदेशों मे बड़ी सुन्दर उपमाएँ देते थे। इस सुत्त मे उपदेशो के ग्रहण करने की उपमा सर्प (अलगद्द) पकड़ने से दी गयी है।

एक बार अरिष्ट भिक्षु को ऐसी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई थी—"मैं भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म को ऐसे जानता हूँ, जैसे कि जो निर्वाण आदि के अन्तरायक (विघ्नकारक) धर्म भगवान् ने कहे है, सेवन करने पर भी वे अन्तराय नही कर सकते।"

यह बात बुद्ध तक पहुँची। बुद्ध ने उसे बुला कर कहा—"मोघ-पुरुष, किसको मैंने ऐसा धर्मोपदेश किया है, जिसे तू ऐसा जानता है ? मैंने तो अनेक प्रकार से अन्तरायिक धर्मों को अन्तरायिक कहा है और उनके बहुत से दुष्परिणाम बतलाये है, पर तू अपनी उल्टी धारणा से हमे झूठ लगा रहा है और अपनी भी हानि कर रहा है तथा बहुत अपुण्य कमा रहा है। यह चिरकाल तक तेरे लिए अहितकारक तथा दुखकारक होगा।"

इसके पश्चात् बुद्ध ने भिक्षुओ को सम्बोधित करके कहा—"भिक्षुओ, अरिष्ट इस धर्म मे छू तक नही गया है; क्या तुम भी मेरे ऐसे उपदेश किये धर्म को ऐसा ही जानते हो जैसा कि यह अरिष्ट भिक्षु अपनी उल्टी धारणा के कारण बतला रहा है ?

भिक्षुओ, कोई-कोई मोघपुरुष गेय, व्याकरण, गाथा, उदान, इति-वृत्तक, जातक, अद्भुतधर्म तथा वेदल्य – इन नौ प्रकार के धर्मों को धारण करते है। वह उन्हे धारण करते हुए भी उनके अर्थ को प्रज्ञा से नही परखते और इससे धर्मो का आशय नही समझते। वे या तो उपारम्भ के लाभ के लिए अथवा बाद मे प्रमुख बनने के लिए ही धर्मो को धारण करते है। उनके लिए ये धर्म अहित और दुखप्रद होते है, क्योकि ये उन्हे उल्टे रूप मे ही धारण करते है।" इस सम्बन्ध मे बुद्ध ने 'अलगद्द' (साँप) की उपमा दी—"जैसे, भिक्षुओ, 'अलगद्द' को पकडनेवाला उसकी खोज मे घूमता हुआ कोई पुरुष आवे और एक महान् साँप उसे दिखायी दे; उसे वह देह से या पूँछ से पकड़े और वह उलट कर उसे काट ले, तब वह उस दंश के कारण मरण अथवा उसके समान दुःख को प्राप्त होवे, क्योकि साँप तो

दुर्गृहीत था। ऐसी ही गति धर्म के प्रति उल्टी दृष्टि रखनेवाले की होती है।

इसलिए, भिक्षुओ, मेरे जिस भाषण का अर्थ तुम समझे हो, उसे वैसे धारण करना और जिसका अर्थ तुम नही समझे हो, उसे मुझसे पूछना अथवा किसी अन्य जानकार भिक्षु से।

भिक्षुओ, मं तुम्हे धर्म का उपदेश बेड़े की भाँति पार जाने के लिए करता हूँ, उसे पकड़ रखने के लिए नहीं।

भिक्षुओ, जैसे कोई पुरुष अस्थान मार्ग पर जाते हुए एक महान् जलार्णव को प्राप्त हो। उस जलार्णव का दूसरा किनारा क्षेमयुक्त और भयरहित हो तथा उरला किनारा खतरा और भय से पूर्ण हो। वहाँ न पार लेजानेवाली नाव हो, न इधर से उधर आने-जाने के लिए पुल हो। तब उस पुरुष के मन मे यह हो—'क्यो न मै तृण-काष्ठ-पत्र जमा करके बेडा बाँधू और उस बेडे के सहारे हाथ और पैर से मेहनत करते स्वस्तिपूर्वक पार उतर जाऊँ'। तब, भिक्षुओ, वह पुरुष बेडा बनाकर पार उतर जाय। उत्तीर्ण हो जाने पर, पार चले जाने पर, उसके मन मे ऐसा हो—'यह बेडा मेरा बडा उपकारी हुआ है, इसके सहारे मै पार उतरा हूँ; क्यो न मै इस बेडे को सिर पर रखकर या कन्धे पर उठाकर जहाँ इच्छा हो वहाँ जाऊँ।' तो क्या मानते हो, भिक्षुओ, क्या वह ऐसा करनेवाला पुरुष उस बेडे मे कर्तव्य पालनेवाला होगा ?"

"नही, भन्ते।"

"ऐसे ही, भिक्षुओ, **मै बेड़े की भाँति निस्तरण के लिए तुम्हे धर्मों का उपदेश करता हूँ, पकड़ रखने के लिए नहीं। धर्म को बेड़े के समान उपदिष्ट जानकर तुम धर्म को भी छोड़ दो, अधर्म की तो बात ही क्या ?"**

बुद्ध की ऐसी उदारता बिरले ही किसी धर्म-संस्थापक में होगी।

५. अरियपरियेसनसुत्त (२६)—मज्झिमनिकाय के कई सूत्रो में बुद्ध की जीवनी के कुछ अश आये है। जेतवन मे भाषित यह सूत्र भी ऐसा ही है। बुद्ध कहते है —

"भिक्षुओ, मै सम्बोधि से पूर्व असम्बुद्ध रहते हुए स्वयं जातिधर्मा होते हुए जातिधर्मो (पदार्थों) की ही पर्येषणा करता था। तब मुझे ऐसा हुआ—'क्यो न मै योगक्षेम, अनुत्तर निर्वाण की पर्येषणा करूँ ?'

तब मै, भिक्षुओ, दूसरे समय तरुण, अत्यन्त काले केशोंवाला, भद्र यौवन से युक्त, पहले वयस् मे अनिच्छुक माता-पिता को अश्रुमुख रोते छोड़, केश-श्मश्रु मुंडा, काषाय वस्त्र पहन, घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ। और इस प्रकार 'क्या उत्तम है' इसकी गवेषणा करते, उत्तम शान्ति पद को खोजते मै 'आलार कालाम' के यहाँ गया और पूछने पर उन्होने 'आकिञ्च-ञ्ञायतन' (आकिञ्चन्यायतन) बतलाया और उसके पश्चात् उद्रक रामपुत्र ने 'नेवसञ्ञानासञ्ञायतन' (नैवसंज्ञानासंज्ञायतन) बतलाया। पर इनसे मेरी सन्तुष्टि नही हुई और उस धर्म को अपर्याप्त समझकर, उमसे विरक्त हो, मैं वहाँ से चल दिया।

क्रमश: मगध मे चलते हुए उरुवेला सेनानीनिगम मे मै पहुँचा। वहाँ एक रमणीय वनखड मे एक नदी को बहते देखा, जिसका घाट मनोहर तथा श्वेत था। चारों ओर भिक्षाचार के लिए गाँव थे। मुझे हुआ—'यह भूमि भाग रमणीय है, यही (यह वनखड) ध्यान योग्य स्थान है' यह सोच वहाँ बैठ गया।

सो, भिक्षुओ, स्वय जन्मने के स्वभाववाले जन्म लेने के दुष्परिणाम को जानकर, जन्मरहित, अनुपम, योगक्षेम निर्वाण को खोजते हुए मैंने उसे पा लिया। यह अजर, व्याधि-धर्म-रहित, अमर, शोकरहित, सक्लेश-रहित था। मुझे दर्शन (ज्ञान) का साक्षात्कार हो गया, मेरे चित्त की मुक्ति अचल बन गयी—'यह अन्तिम जन्म है, फिर अब दूसरा जन्म नही होगा।'

तब, भिक्षुओ, मुझे ऐसा हुआ—

मैंने गम्भीर, दुर्दर्शन, दुर्ज्ञेय, शान्त, उत्तम, तर्क से अप्राप्य, निपुण, पंडितों द्वारा जानने योग्य इस धर्म को पा लिया। यह जनता काम-तृष्णा में रमण करनेवाली, कामरत तथा काम में प्रसन्न है। इस जनता

के लिए प्रतीत्यसमुत्पाद (सापेक्षतावाद) को जानना दुर्दर्शनीय है और सभी सस्कारो का शमनस्वरूप, तृष्णा-क्षय, विराग, निरोध और निर्वाण भी दुर्दशनीय है। मै यदि धर्मोपदेश करूँ और दूसरा उसको समझ न पाये, तो मेरे लिए यह तरद्दुद और पीडा की वस्तु होगी। मेरे ऐसा समझने के कारण मेरा चित्त धर्म-प्रचार की ओर न झुककर अल्प-उत्सुकता की ओर झुक गया।

तब ब्रह्मा सहम्पति ने मेरे चित्त की बात को जानकर ख्याल किया--'लोक नाश को प्राप्त होगा, जब तथागत का चित्त धर्म-प्रचार को ओर न झुककर अल्प-उत्सुकता की ओर झुक रहा है।' और ऐसा सोचकर उन्होंने मुझसे निवेदन किया--'भन्ते, भगवान् धर्मोपदेश करे, सुगत धर्मोपदेश करे, क्योकि अल्प मलवाले प्राणी भी ससार मे विद्यमान है और धर्म के न सुनने से वे नष्ट हो जायेंगे'।

मैंने, भिक्षुओ, ब्रह्मा के अभिप्राय को जानकर बुद्ध-नेत्र से लोक का अवलोकन किया और उस समय लोक के जीवो मे कितने ही अल्पमल, तीक्ष्ण-बुद्धि, सुन्दर-स्वभाव तथा समझाने मे सुगम प्राणी मुझे दृष्टिगोचर हुए। उनमे कोई-कोई परलोक और दोष से भय करते हुए विहर रहे थे। जैसे उत्पलिनी, पद्मिनी या पुण्डरीकिनी मे से कितने ही उत्पल, पद्म या पुण्डरीक उदक मे पैदा हुए, उदक मे बँधे, उदक से बाहर न निकल, उदक के भीतर ही डूबकर पोषित होते है। इनमे से कोई नीलकमल, रक्तकमल अथवा श्वेतकमल होते है। इसी भाँति मैंने ससार के जीवो को विहार करते देखा और तब ब्रह्मा ने सहम्पति से यह गाथा कही--

'उनके लिए अमृत का द्वार बन्द हो गया है, जो कानवाले होने पर भी श्रद्धा को छोड देते है। हे ब्रह्मा, यह व्यर्थ न हो, ऐसा समझकर मै मनुष्यो को निपुण तथा उत्तम धर्म की देशना नही कर रहा था'।

ब्रह्मा सहम्पति यह जानकर वहाँ से चले गये कि भगवान् ने धर्मोपदेश करनेवाले मेरे प्रस्ताव को मान लिया है।

उस समय मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि किसे मैं सर्वप्रथम इस धर्मोपदेश को करूँ, जो शीघ्र ही इस धर्म को जान सके। और इस सम्बन्ध मे मैंने सर्वप्रथम 'आलार कालाम' तथा उद्रक रामपुत्र आदि के विषय मे सोचा। पर उसी समय एक गुप्त देवता ने आकर यह निवेदन किया कि इन दोनो का देहावसान हो गया है। सोचते-सोचते मेरी दृष्टि पञ्चवर्गीय भिक्षुओ पर गयी––'पञ्चवर्गीय भिक्षु मेरे बहुत काम करनेवाले थे। जब मैं साधना मे लगा था, तो उन लोगो ने मेरी बडी सेवा की थी। क्यो न मैं प्रथमत उन्हे ही उपदेश दूँ", और तब दिव्य चक्षुओ से यह जान पाया कि वे वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव (सारनाथ) मे विहार कर रहे है।"

पञ्चवर्गीय भिक्षुओ से मिलने के लिए बुद्ध सारनाथ आये। बुद्ध ने कहा––"भिक्षुओ, इधर सुनो, मैंने जिस अमृत को पाया है, उसका तुम्हे उपदेश करना हूँ। उपदेशानुसार आचरण करने पर जिस उद्देश्य के लिए कुलपुत्र घर छोडकर प्रव्रजित होते है, उस अनुत्तम ब्रह्मचर्य-फल को इसी जन्म मे शीघ्र ही स्वय जानकर विचरोगे।"

पञ्चवर्गीय भिक्षुओ ने उत्तर दिया––"आवुस गौतम, उस साधना मे, उस धारणा मे, उस दुष्कर तपस्या मे भी तुम आर्यों के ज्ञान-दर्शन की पराकाष्ठा की विशेषता तथा उत्तर-मनुष्य-धर्म को नही पा सके; फिर अब बाहुलिक, साधना-भ्रष्ट, बाहुल्य-परायण होते हुए तुम आर्य ज्ञान-दर्शन की पराकाष्ठा उत्तर-मनुष्य-धर्म को क्या पाओगे ?"

बुद्ध ने उन्हे विश्वास दिलाया और अपना उपदेश देते हुए पाँच काम-गुणो का व्याख्यान किया और उन्हे उनसे विरत रहते हुए सर्वप्रथम चार ध्यानो तथा क्रमश आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिञ्चन्यायतन, तथा संज्ञा-वेदयित-विरोध आदि को प्राप्त करते हुए प्रज्ञा द्वारा निर्वाण को प्राप्त करने के लिए कहा। इस प्रकार यहाँ पर बुद्ध का यह प्रथम उपदेश (धर्म-चक्र-प्रवर्तन) हुआ।

६. **महासच्चकसुत्त** (३६)—वैशाली के महावन की कूटागारशाला में भी बुद्ध ने अचेल 'सच्चक' को अपने जीवनी से सम्बन्धित बातो को बताया और कायभावना तथा चित्तभावना के अभ्यास के विषय मे उपदेश करते हुए अपनी बोधिसत्त्व-चर्या का वर्णन किया।

७. **उपालिसुत्त** (५६)—'निगण्ठनातपुत्त' (निर्ग्रन्थ-ज्ञातृपुत्र, जैन तीर्थङ्कर महावीर) और बुद्ध का साक्षात्कार नही हुआ था। पर ये समकालीन थे और कभी एक समय एक स्थान मे विहार करते थे। बुद्ध नालन्दा मे 'पावारिक' नामक आम्रवन मे ठहरे थे। सभवत: दीर्घ काल तक तपस्या करने से तीर्थङ्कर के प्रधान शिष्य गौतम इन्द्रभूति का ही दूसरा नाम दीर्घ-तपस्वी था। उस समय 'निगण्ठो' की बडी परिषद् के साथ 'निगण्ठनातपुत्त' नालन्दा मे विहार करते थे। एक बार दीर्घतपस्वी बुद्ध के पास आकर समोदन कर खडा हो गया। बुद्ध ने कहा—"तपस्वी, आसन मौजूद है। इच्छा हो तो बैठ जाओ।"

यह कहने पर दीर्घतपस्वी निर्ग्रन्थ निम्न आसन पर एक ओर बैठ गया। भगवान् ने ही बात आरम्भ की—

"दीर्घतपस्वी, पाप कर्म की प्रवृत्ति के लिए निर्ग्रन्थ-ज्ञातृपुत्र कितने कर्मों का विधान करते है?"

"आवुस गौतम, कर्म-कर्म विधान करना निर्ग्रन्थ-ज्ञातृपुत्र का नियम नही है; दण्ड-दण्ड विधान करना उनका नियम है।"

'तो, तपस्वी, पाप कर्म करने के लिए, पाप कर्म की प्रवृत्ति के लिए कितने दण्ड का वे विधान करते है?"

"आवुस गौतम, पाप कर्म के हटाने के लिए तीन दण्ड—कायदण्ड, वचनदण्ड तथा मनोदण्ड का विधान उनके द्वारा किया गया है।"

"क्या कायदण्ड दूसरा है, वचनदण्ड दूसरा और मनोदण्ड दूसरा है?" इसका दीर्घतपस्वी ने स्वीकारात्मक उत्तर दिया।

"इनमें कौन महादोष-युक्त है", पूछने पर कायदण्ड का उल्लेख किया।

बुद्ध ने कहा—"कायदण्ड कहते हो?"

"आवुस गौतम, कायदण्ड कहता हूँ।"

इस प्रकार तीन बार दीर्घतपस्वी से कहलाकर पूछने पर स्वय मनोकर्म को महादोषी बतलाया। और इसे भी दीर्घतपस्वी निर्ग्रन्थ से तीन बार कहलाया। वह आसन से उठकर निर्ग्रन्थ-ज्ञातृपुत्र के पास चला गया।

निर्ग्रन्थ-ज्ञातृपुत्र ने पूछा—

"क्या तेरा श्रमण गौतम के साथ कुछ कथा-सलाप भी हुआ?"

दीर्घतपस्वी ने सब कह दिया।

वहाँ नालन्दा का प्रसिद्ध सेठ जैन-श्रावक उपालि भी बैठा था। उसने ज्ञातृपुत्र से कहा—"भन्ते, मै जाऊँ और इसी विषय (कथावस्तु) मे श्रमण गौतम के साथ विवाद करूँ। यदि वह विचले नहीं, तो मै उसी तरह उसे लपेट लूँगा, जैसे बलवान् पुरुष लम्बे बालवाली भेड को बालो से पकड कर निकालता, घुमाता, डुलाता है; अथवा जैसे साठ वर्ष का पट्ठा हाथी पुष्करणी मे प्रवेश करके 'सन-धोवन' नामक खेल को खेलता है, उसी तरह मै श्रमण गौतम से भी इसी विषय पर वाद करूँगा।"

उपालि गृहपति बुद्ध के पास गया। बुद्ध ने सर्वप्रथम उससे यह कहा—"गृहपति, यदि तू सत्य मे स्थित होकर मन्त्रणा करे तभी हम दोनो का सलाप सम्भव है।" उपालि ने इसे स्वीकार किया। बुद्ध ने कहा—

"गृहपति, यहाँ एक चातुर्याम-संवर से संवृत, सब वारि से निवारित, सब वारि को निवारण करने मे तत्पर, सब वारि से धुला हुआ, सब वारि से छूटा हुआ निर्ग्रन्थ है। वह आते-जाते बहुत से छोटे-छोटे प्राणि-समुदाय को मारता है। गृहपति, निर्ग्रन्थ-ज्ञातृपुत्र इसका क्या विपाक बतलाते है?"

"भन्ते, अनजाने को निर्ग्रन्थ-ज्ञातृपुत्र महादोष नहीं मानते।"

"यदि जानता हो?"

"तब महादोष होगा।"

"जानने को किस दण्ड में गणना करते है?"

"भन्ते, मनोदण्ड मे ।"

उपालि ने बुद्ध के मन्तव्य (मन की प्रधानता) को मान लिया । वहाँ और भी बाते हुईं । अन्त मे उपालि गृहपति बुद्ध का श्रावक (शिष्य) बन गया ।

बुद्ध ने कहा—"उपालि, निर्ग्रन्थो के लिए तुम्हारा घर प्याऊ की तरह रहा है । उनके वहाँ जाने पर अब भोजन नही देना चाहिए, यह न समझना ।"

उपालि इसमे और प्रसन्न हुआ ।

८. **कुक्करवतिकसुत्त** (५७)—भगवान् कोलिय देश के 'हलिद्दवसन' नामक निगम मे विहार करते थे । गोव्रती कोलिय-पुत्र पूर्ण और कुक्कुरव्रती 'अचेल सेनिय' वहाँ गये । कुक्कुरव्रती बुद्ध का समोदन करके कुत्ते की भाँति गेंडरी मारकर एक ओर बैठ गया । भगवान् ने समझाया कि अखड कुक्कुरव्रत लेकर उसे मरकर कुक्कुर योनि मे ही जाना होगा । यह बात सुनते ही अचेल सेनिय रो पडा । उपदेश का परिणाम यह हुआ कि उन्होंने व्रत छोड दिया ।

९. **अम्बलट्ठिकराहुलोवादसुत्त** (६१)—इसमे बुद्ध ने राहुल को उपदेश दिया है, जिसे देखने से मालूम होता है कि अभी राहुल बहुत सयाने नही थे और उनकी अवस्था कम ही थी ।

भगवान् ने थोडे से बचे जल को दिखाकर पूछा—

"इस थोडे मे बचे पानी को देखता है ?"

"हाँ, भन्ते ।"

"राहुल ऐसा ही छोटा (थोडा) उनका श्रमणपन है, जिनको जान-बूझकर झूठ बोलने मे लज्जा नही आती ।"

तब भगवान् ने थोड़े जल को फेककर राहुल को सम्बोधित किया—

"राहुल, देखा मैंने उस थोडे से बचे जल को फेंक दिया ।"

"हाँ, भन्ते ।"

"ऐसा ही फेका हुआ उनका श्रमणपन है, जिनको जान-बूझकर झूठ बोलने मे लज्जा नही आती ।"

तब भगवान् ने उसे लोटे को औधाकर कहा—

"राहुल, तू इस लोटे को औंधा हुआ देखता है ?"

"हाँ, भन्ते ।"

"ऐसा ही औधा उनका श्रमणपन है, जिनको०।"

तब भगवान् ने उस लोटे को सीधाकर कहा—

"राहुल, तू इस लोटे को सीधा हुआ देख रहा है, खाली देख रहा है ?"

"हाँ भन्ते ।"

"ऐसा ही खाली-तुच्छ उनका श्रमणपन है, जिनको० ।

"राहुल, जैसे हरिस-समान लम्बे दाँतोवाला, महाकाय, सुन्दर जाति का संग्राम मे जानेवाला राजा का हाथी, संग्राम मे जाने पर अगले पैरो से भी लड़ाई का काम करता है पिछले पैरो से भी; शरीर के अगले भाग से भी०; शरीर के पिछले भाग से भी०; शिर से भी० कान से भी; दन्त से भी०; लेकिन सूँड को बेकाम रहता है । तो हाथीवान् को ऐसा विचार होता है— 'यह राजा का हाथी, सूँड को बेकाम रखता है । राजा के ऐसे नाग का जीवन अविश्वसनीय है ।'

लेकिन, यदि राहुल, हरिस-समान लम्बे दाँतोवाला राजा का हाथी सूँड से काम लेता हो, तो राजहाथी का जीवन विश्वसनीय है, अब राजा के हाथी को और कुछ काम करना नही शेष है । ऐसे ही राहुल, जिसे जान-बूझकर झूठ बोलने मे लज्जा नही है, उसके लिए कोई भी पाप कर्म अकरणीय नही है—ऐसा मै मानता हूँ । इसलिए, राहुल, 'हँसी मे भी झूठ नही बोलूँगा,' यह सीख लेनी चाहिए ।

"तो क्या मानते हो, राहुल, दर्पण किस काम के लिए है ?"

"भन्ते, देखने के लिए ।"

"ऐसे ही, राहुल, देख-देख कर काया से काम करना चाहिए, देख-देखकर वचन से काम करना चाहिए, देख-देखकर मन से काम करना चाहिए। जब राहुल, तू काया से काम करना चाहे, तो तुझे विचार करना चाहिए क्या यह मेरा कार्य अपने लिए पीड़ादायक तो नही हो सकता, दूसरो के लिए पीडादायक तो नही हो सकता, दोनो के लिए तो पीडादायक नही हो सकता। यदि प्रत्यवेक्षण करने के पश्चात्, राहुल, तू यह समझे कि यह बुरा कर्म है तो इस प्रकार के कार्य को छोड देना चाहिए।

"राहुल, जिन किन्ही श्रमण-ब्राह्मणों ने अतीतकाल मे काय-कर्म, वचन-कर्म,मन-कर्म आदि परिशोधित किये, उन सबने इसी प्रकार प्रत्यवेक्षण करके इन्हे परिशुद्ध किया। राहुल, इसी प्रकार का प्रत्यवेक्षण तुम्हे भी सीखना चाहिए।"

९. **कीटागिरिसुत्त** (७०)—बुद्ध बडे भारी भिक्षु-सघ के साथ काशी देश मे चारिका कर रहे थे। उन्होने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—"भिक्षुओ, मैं रात्रि-भोजन से विरत हो भोजन करता हूँ, उससे आरोग्य, उत्साह, बल, सुखपूर्वक, विहार अनुभव करता हूँ। आओ, भिक्षुओ, तुम भी रात्रि-भोजन से विरत हो भोजन करो।"

"अच्छा, भन्ते", भिक्षुओ ने कहा।

तब काशी देश मे क्रमश चारिका करते हुए बुद्ध जहाँ काशीवालो का निगम 'कीटागिरि'[1] था, वहाँ पहुँचे। भिक्षुओं ने रात के भोजन के त्याग के बारे मे 'कीटागिरि' मे भी कहा। वहाँ अश्वजित् और पुनर्वसु नामक दो भिक्षुओ ने कहा—"हम प्रात तथा मध्याह्न मे विकाल भोजन को करते हैं, और नीरोग रहते हैं; सो हम क्यो प्रत्यक्ष को छोडकर कालान्तर के लिए दौडें। हम सायं भी खायेंगे, प्रात भी, दिन मे भी, विकाल मे भी . . .।"

१०. **रट्ठपालसुत्त** (८२)—'रट्ठपाल' की कथा अश्वघोष को इतनी पसन्द आयी कि उन्होने 'राष्ट्रपाल-नाटक' लिखा, जो सस्कृत मे था, पर

१. केराकत, जिला जौनपुर।

नष्ट हो गया। उसका अनुवाद भी तिब्बती तथा चीनी में नही है। केवल धर्मकीर्ति के 'वादन्याय' नामक ग्रन्थ में इसका उल्लेख अश्वघोष की कृति के तौर पर है। राष्ट्रपाल कुरु देश के 'थुल्लकोट्ठित' निगम (कस्बे) के रहने वाले श्रेष्ठिपुत्र थे। भिक्षु बनने के लिए माता-पिता की आज्ञा होनी आवश्यक है। किसी तरह सत्याग्रह करके उन्होने आज्ञा ले भिक्षु-दीक्षा ली। कुछ वर्षो के बाद उन्होने फिर अपनी जन्मनगरी देखनी चाही। वे 'थुल्ल-कोट्ठित' गये। जब भिक्षा का समय हुआ, तो वे अपने घर की ओर गये। उनके पिता बिचली द्वारशाला मे हजामत बनवा रहे थे। दूर से उन्हे आते देखकर पीत-वस्त्रधारियो की निन्दा करते हुए बुदबुदाने लगे--इन मुडियो ने मेरे प्रियमनाप एकमात्र पुत्र को साधु बना लिया। इस प्रकार राष्ट्रपाल ने अपने घर से भिक्षा नही पायी, बल्कि फटकार ही पायी।

उस समय घर की दासी बासी दाल फेंक रही थी। राष्ट्रपाल ने कहा—"भगिनी, यदि इसे फेंकना चाहती हो, तो मेरे पात्र मे डाल दो।"

तब उसे उनके पात्र मे डालते समय उनकी आवाज और पैरों को दासी ने पहचान लिया और जाकर उनकी माँ से कहा—"आर्ये, जानती हो, आर्य-पुत्र राष्ट्रपाल आये है?" "यदि तू सच बोलती है, तो तू अदासी होगी।" दासता युग के दास मनुष्य-पशु थे, अदास होना बडी बात थी। माँ ने इस बात को अपने पति से जाकर कहा। सेठ बाहर गया और देखा कि दीवाल के पास बैठे राष्ट्रपाल बासी दाल खा रहे है।

पिता ने कहा—

"आओ, तात राष्ट्रपाल, घर चले।"

"बस, गृहपति, आज मै भोजन कर चुका।"

"तो, तात राष्ट्रपाल, कल का भोजन हमारे यहाँ स्वीकार करो।"

राष्ट्रपाल ने उसे स्वीकार कर लिया।

सेठ ने घर मे जा हिरण्य-सुवर्ण की बडी राशि करवा, चटाई से ढँकवा-कर राष्ट्रपाल की स्त्रियो से कहा--

"आओ, बहुओ, जिन अलकारो से अलकृत हो, तुम लोग राष्ट्रपाल को बहुत प्रिय लगती थी, उन अलकारो से अलकृत हो जाओ ।"

दूसरे दिन सूचना देने पर राष्ट्रपाल पिता के घर पहुँचे । जाकर बिछे आसन पर बैठे । पिता ने राशि को खोलकर कहा--"तात राष्ट्रपाल, यह तुम्हारी माता का धन है, पिता का तथा पितामह का अलग है । आओ, तात राष्ट्रपाल, भोग भी भोग सकते हो, पुण्य भी कर सकते हो । आओ, तात, भिक्षु-दीक्षा छोड, गृहस्थ बन, भोगो को भोगो और पुण्यो को करो ।"

राष्ट्रपाल ने कहा--"यदि, गृहपति, तू मेरी बात माने, तो इस सुवर्ण-पुज को गाडियो पर रखवाकर गङ्गा नदी की बीच धार मे डाल दे । सो किसलिए ? इसके कारण तुझे शोक, परिदेव तथा दु खादि नही होगे ।"

राष्ट्रपाल की अनेक भार्याएँ उनका पैर पकडकर कहने लगी--"आर्यपुत्र, कैसी है वे अप्सराएँ, जिनके लिए तुम ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हो ?"

राष्ट्रपाल ने कहा--"भगिनि, हम अप्सराओ के लिए ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन नही करते ।"

भगिनि शब्द को सुनकर वे मूर्च्छित होकर गिर पडी ।

राष्ट्रपाल ने खीझकर पिता से कहा--"गृहपति, यदि भोजन देना हो तो दो, हमे कष्ट मत दो ?"

इसके पश्चात् राष्ट्रपाल के पिता ने आयुष्मान् राष्ट्रपाल को उत्तम भोजन कराया, और भोजन करने के बाद राष्ट्रपाल ने तत्त्वयुक्त गाथाओ को कहा । •

राजा कोरव्य अपने उद्यान मे घूमने आनेवाले थे और इसके लिए उन्होने अपने माली को उद्यान भूमि साफ करने को कहा । माली अपने कार्य मे रत हो गया और उसी समय एक वृक्ष के नीचे दिवाविहार-निमित्त बैठे हुए राष्ट्रपाल को उसने देखा और जाकर राजा से निवेदन किया--"देव, 'थुल्ल-

कोट्ठित' के अग्रकुलिक का पुत्र राष्ट्रपाल, जिसकी प्रशसा आप सर्वदा करते हैं, आज उसी उद्यान मे बैठा है।"

राजा उनसे मिलने के लिए गया और वहाँ जाकर राष्ट्रपाल से बोला—"हे राष्ट्रपाल, चार हानियो के कारण ही लोग प्रव्रजित होते है—(१) बुढ़ापे मे अप्राप्त भोगो का प्राप्त करना या प्राप्त भोगो को भोगना सुकर नही है, इससे भी लोग प्रव्रजित हो जाते हैं और इसको जरा-हानि कहते हैं, पर आपके तो केश काले हैं, अतएव यह आप मे विद्यमान नही है; (२) व्याधि हानि के कारण भी लोग प्रव्रजित हो जाते हैं, पर आपमे तो यह विद्यमान नही है; (३) भोगो के क्षय हो जाने के कारण भी लोग प्रव्रजित हो जाते हैं, पर आपके साथ तो यह भी नही है, (४) ज्ञातृ-हानि के कारण भी लोग प्रव्रजित हो जाते हैं, पर आपके सम्बन्ध मे तो यह नही है और इस 'थुल्लकोट्ठित' मे बहुत से मित्र-अमात्य आपके है। अतएव आप क्या जानकर, देखकर या सुनकर प्रव्रजित हुए है ?"

राष्ट्रपाल ने उत्तर दिया—"महाराज, उन भगवान् बुद्ध ने चार धर्मोद्देश कहे है, जिनको जानकर मैं प्रव्रजित हुआ हूँ—(१) यह लोक अध्रुव है, उपनीत हो रहा है, (२) लोक त्राण-रहित तथा आश्वासन-रहित है, (३) लोक अपना नही है और सब छोडकर जाना है तथा (४) लोक निम्न तृष्णा का दास है।"

विभिन्न उपमाओ से इन सबका व्याख्यान राष्ट्रपाल ने राजा से किया और अन्त मे यह व्यक्त किया—"वृक्ष के फल की भाँति तरुण और वृद्ध मनुष्य शरीर छोडकर गिरते है, इसे भी देखकर मैं प्रव्रजित हुआ, क्योकि न गिरनेवाला भिक्षुपन (श्रामण्य) ही श्रेष्ठ है।"

११. माधुरियसुत्त (८४)—बुद्ध के प्रधान शिष्य थे—शारिपुत्र, मौद्गल्यायन, महाकाश्यप, महाकात्यायन। महाकात्यायन अवन्ती (मालवा) के राजा चण्डप्रद्योत के पुरोहित और बडे पडित थे। अवन्ति-राज की एक कन्या मथुरा के राजा को ब्याही थी और दूसरी वासवदत्ता वत्सराज उदयन

को। अवन्ति-राज की कन्या का मथुरावाला नाती पीछे 'माधुरिय' (माथुर) अवन्तीपुत्र कहा जाता था।

एक समय महाकात्यायन मथुरा के 'गुन्दवन' मे विहार करते थे। राजा अवन्तिपुत्र ने उनका वहाँ आना सुना। वह रथ पर चढ 'गुन्दवन' गया। उसने ब्राह्मणो के मत—"ब्राह्मण ही श्रेष्ठवर्ण है तथा और वर्ण नीच हैं"—के बारे में उनसे पूछा।

महाकात्यायन ने बताया कि धनवान् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी के नौकर ये चारो वर्ण हो सकते है, अतएव इस कारण से चारो वर्ण सम है। दुनियाँ मे यह केवल हल्ला भर है कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, और वर्ण नीच हैं तथा वे ब्रह्मा के दायाद है।

दुराचार और सदाचार की बातो की दृष्टि देकर महाकात्यायन ने समझाया—"ब्राह्मणो का दावा गलत है। सभी वर्ण समान हैं।"

अन्त मे सतुष्ट हो राजा ने कहा—"आज से मुझे आप अंजलिबद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करे।"

महाकात्यायन ने कहा—

"महाराज, तुम मेरी शरण मे मत आओ। उसी भगवान् की तुम भी शरण जाओ, जिसकी शरण मैं गया हूँ।"

"हे कात्यायन, इस समय वे भगवान् अर्हत् कहाँ वास कर रहे है ?"

"महाराज वे भगवान् निर्वाण प्राप्त हो चुके।"

इसके पश्चात् राजा निर्वाण-प्राप्त उन बुद्ध, धर्म और भिक्षु-सघ की शरण गया।

इससे यह ज्ञात होता है कि बुद्ध-निर्वाण के पश्चात् उनके शिष्यो द्वारा भाषित सूत्रो का सग्रह भी बुद्धवचनो मे हो गया और उन्हें भी बुद्धोपदेश की तरह ही मान्यता प्राप्त हुई। आचार्य बुद्धघोष ने तो इस प्रकार के सूत्रो को बुद्धभाषित सिद्ध करने के लिए अपनी 'अट्ठकथाओं' मे जमीन-आसमान एक कर दिया है।

१२. बोधिराजकुमारसुत्त (८५)—वासवदत्ता तथा वत्सराज उदयन का यह पुत्र था। इसे माता के गर्भ से ही बुद्ध भक्त माना गया है। बुद्ध एक बार 'सुसुमारगिरि' (चुनार) के मृगदाव मे विहार करते थे और यहाँ पर उन्होने बोधिराजकुमार से अपनी जीवनी से सम्बन्धित कुछ बाते बतलायी। बोधिराजकुमार ने तथागत के स्वागत के लिए अपने कोकनद प्रासाद मे पाँवडे बिछाये। बुद्ध ने आनन्द की ओर देखा। आनन्द ने कहा—"राजकुमार, भगवान् पाँवडे पर नही चलेगे, आनेवाली जनता का भी ख्याल कर रहे है।"

राजकुमार ने पाँवड़े हटा लिये। भगवान् ने उस दिन अपनी जीवनी के बारे मे कहा—

"राजकुमार, उस समय मै दहर (नववयस्क) बहुत काले केशवाला, सुन्दर यौवन से युक्त प्रथम वयस् मे था, माता-पिता को अश्रुमुख होते छोड, घर से बेघर हो, प्रव्रजित हो, जहाँ 'आलार कालाम' था, वहाँ गया। जाकर कहा—'आवुस कालाम, मै इस धर्म मे ब्रह्मचर्य पालन करना चाहता हूँ।'

'आलार कालाम' ने 'आकिञ्चन्यायतन' ध्यान तक बतलाया। मैने फिर स्वय इस सम्बन्ध मे प्रयत्न किया और शीघ्र ही उसे स्वय प्राप्त करके विहरने लगा। जब अपनी प्राप्ति को मैने 'आलार कालाम' से प्रकट किया तो उसने मुझे अपने सघ का उपनेता बनाना चाहा। पर इससे तो मेरे उद्देश्य की प्राप्ति नही हो सकती थी, अत उसके प्रस्ताव को ठुकरा कर मै आगे बढा और शान्ति-पद की गवेषणा करते हुए उद्रक रामपुत्र के पास गया।

उद्रक रामपुत्र ने मुझे 'नैवसज्ञानासज्ञायतन' को बतलाया। उसकी भी प्राप्ति मुझे हो गयी और उसने भी इसके बाद मुझे अपने सघ का उपनेता बनाना चाहा, पर उसके प्रस्ताव को भी मुझे ठुकराना पड़ा।

मैने फिर स्वय ही ध्यान भावनाओ का अभ्यास बड़ी दृढ़ता के साथ किया। इसके पश्चात् मै निराहार तपस्या करने लगा। मुझे हुआ—'अतीत काल

मे जिन श्रमणो तथा ब्राह्मणों ने दु ख तथा तीव्र भावनाएँ सही, इतनी ही सही होगी, इससे अधिक नही; भविष्य काल मे भी वे इतनी ही सहेंगे, इससे अधिक नही; लेकिन तो भी मैंने सफलता नही पायी। जान पड़ता है समाधि का दूसरा मार्ग है।' पिता के खेत पर जामुन की ठडी छाया के नीचे बैठकर अपने लगाये ध्यान का मुझे स्मरण हुआ। कमजोरी को बाधक जानकर मै आहार ग्रहण करने लगा। पाँचो साथी भिक्षुओ ने इसे व्रत-भ्रष्ट होना समझा। वे मुझे छोडकर चले गये। मै अपने ध्यान और भावनाओं मे लगा, अन्त मे मैंने फल को प्राप्त किया। बोधि की प्राप्ति हुई।"

राजकुमार बोल उठा--"अहो बुद्ध! अहो धर्म!"

फिर बोधिराजकुमार ने अपनी बात बतलायी--"भगवान्, एक बार कौशाम्बी के घोषिताराम मे विहार कर रहे थे। मेरी गर्भवती 'अय्या' (माता) भगवान् के प्रति अभिवादन कर बोली--'भन्ते, जो मेरी कोख मे यह कुमार या कुमारी है, वह भगवान्, उनके धर्म तथा भिक्षु-सघ की शरण जाता है। आज से भगवान् इसे अजलिबद्ध शरणागत उपासक माने।' एक बार फिर इसी गर्भ मे 'सुसुमारगिरि' के 'भेसकलावन' मे मेरी धाई मुझे गोद मे लेकर भगवान् के पास आयी और भगवान् से बोली--'भन्ते, यह बोधिराजकुमार भगवान्, उनके धर्म और सघ की शरण जाता है।' और अब मै यह तीसरी बार इस त्रिशरण को स्वीकार करता हूँ। भगवान् मुझे अपना उपासक स्वीकार करे।"

१३. **अङ्गुलिमालसुत्त** (८६)--बुद्ध श्रावस्ती मे अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन मे विहार कर रहे थे। उस समय राजा प्रसेनजित् के राज्य मे रुद्र, लोहितपाणि, मारकाट मे सलग्न अँगुलिमाल नामक एक डाकू था। उसके कारण रास्ते बन्द हो गये थे।

अपने द्वारा वध किये गये आदमियो की अँगुलियाँ काट कर वह माला बना लेता था; इसलिये उसका नाम अँगुलिमाल पडा था। भगवान् अँगुलिमाल को सही रास्ते पर लाना चाहते थे। अत. एक दिन वे उसी के रास्ते की

ओर चल पडे । ग्वालो, किसानो तथा बटोहियो ने बहुत रोका—"श्रमण, इस मार्ग मे अँगुलिमाल डाकू रहता है, उसने ग्रामों को अग्राम मे परिणत कर दिया । वह मनुष्यो को मार-मारकर उनकी अँगुलियो की माला पहिनता है । इस मार्ग पर बीस-बीस से लेकर चालीस-पचास पुरुष इकट्ठा होकर जाते है, तब भी वे अँगुलिमाल के हाथ मे पड जाते है, अतएव आप मत जाइए ।"

भगवान् उस रास्ते से जा रहे थे । अँगुलिमाल ढाल, तलवार तथा तीर धनुष के साथ भगवान् के पीछे चला । मामूली चाल से चलते हुए भगवान् को वह पकड नही पा रहा था । वह बोला—

"खडा रह, श्रमण ।"

'मै खडा हूँ, अँगुलिमाल, तू भी खडा हो ।"

पास जाकर भगवान् के शान्त मुखमडल को देखकर उस डाकू के भाव बदले । उसने तलवार आदि अपने हथियार पास के खोह, प्रपात तथा नाले मे फेक दिये । उसने सुगत के पैरो की वन्दना करके उनसे प्रवज्या माँगी ।

प्रवज्या मिल गयी ।

भगवान् आयुष्मान् अँगुलिमाल को अनुगामी श्रमण बना श्रावस्ती की ओर चले तथा जेतवन गये । उसी समय राजा प्रसेनजित घुडसवारो के साथ अँगुलिमाल को दबाने जा रहा था । भगवान् के दर्शनार्थ रास्ते मे जेतवन मे वह गया ।

"कहाँ चले, महाराज"—बुद्ध ने पूछा ।

"अँगुलिमाल को दबाने ।"

"महाराज, अँगुलिमाल यह है," और यह सुनकर राजा चकित तथा भयभीत हो गया ।

तब राजा ने अँगुलिमाल से पूछा—

"आर्य, अँगुलिमाल है ?"

"हाँ, महाराज ।"

"आर्य के माता-पिता का गोत्र क्या है ?"

"महाराज, पिता गार्ग्य तथा माता मैत्रायणी है ।"

"आर्य गार्ग्य मैत्रायणी-पुत्र अभिरमण करें । मैं चीवर, पिण्डपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय तथा भैषज्य परिष्कारो से आर्य की सेवा करूँगा ।"

जाकर आश्चर्य प्रकट करते हुए राजा ने भगवान् से कहा—"भन्ते, जिसका दमन हम दड तथा शस्त्र से न कर सके उसे भगवान् ने बिना दड तथा शस्त्र के दमन कर दिया ।" ऐसा कहकर राजा चले गये ।

इसके बाद बुद्ध ने अँगुलिमाल को अपने कृत पर पश्चाताप करते हुए उन पूर्व कर्मों के फल को नष्ट करने के लिए उपदेश दिया । अँगुलिमाल ने विमुक्ति सुख का अनुभव करते हुए अपने दिन व्यतीत किये ।

१४. पियजातिकसुत्त (८७)—इस सुत्त मे एक दूसरा ही दृश्य सामने आता है । श्रावस्ती मे एक गृहपति (वैश्य) का एकलौता पुत्र मर गया । उसे अपना कर्मान्त (पेशा) अच्छा न लगता था, न भोजन । वह लोगो के पास जा क्रन्दन करता था—"कहाँ हो मेरे एकलौते पुत्र !" भगवान् के पास भी जाकर उसने वही बात दुहरायी ।

भगवान् ने कहा—"यह ऐसा ही है, गृहपति, शोक, क्रन्दन, दु:ख, दौर्मनस्य, परेशानी आदि प्रिय-जातिक है, प्रियो से उत्पन्न है ।" उसे यह बात जँची नही । वह चला गया । जुआ घर मे भी इसकी चर्चा चली । उन्होने भी कहा—

"यह ऐसा ही है, गृहपति, आनन्द प्रियजातिक ही है ।"

चर्चा बढते-बढते राजा के अन्त:पुर मे चली गयी । रानी मल्लिका बुद्ध की बहुत भक्त थी । प्रसेनजित् ने उससे ताना देते कहा—"तेरे श्रमण ने यह कहा है—दु:ख प्रियजातिक है ।"

"महाराज, यदि भगवान् ने ऐसा कहा तो वह होता ही है ।"

"ऐसा नही, मल्लिका; जो-जो श्रमण गौतम कहता है, उसका ही तू अनुमोदन करती है, क्योंकि गुरु जो-जो कहे, चेला उसी को दुहराता है—— यह 'ऐसा ही है' । चल हट यहाँ से मल्लिका ।"

मल्लिका देवी ने 'नालीजङ्घ' ब्राह्मण को भगवान् के पास पूछने के लिए भेजा । जाकर उसने कहा——"गौतम, मल्लिका देवी आप के चरणो मे वन्दना करती है, और पूछती है, क्या भगवान् ने कहा——दु.ख प्रियजातिक है ?"

भगवान् ने 'हाँ' कहा ।

१५. ब्रह्मायुसुत्त (९१)——बुद्ध की चारिका विदेह मे हो रही थी । उस समय १२० वर्ष की आयुवाला एक वृद्ध, महल्लक ब्रह्मायु ब्राह्मण मिथिला मे रहता था । उसने भी बुद्ध के विषय मे यह मगल शब्द सुना कि वे अर्हत् है, सम्यक् सम्बुद्ध है आदि । उसने इसकी सत्यता की जाँच करने तथा बुद्ध को देखकर अपने विचार को उसके पास तक पहुँचाने के लिए उत्तर नामक अपने माणवक को भेजा । उस शिष्य से उन्होंने जाँचने के मापदण्ड-स्वरूप महापुरुषो के बत्तीस लक्षणो आदि को भी बतला दिया ।

जाकर उसने पहले उनके शरीर मे बत्तीस महापुरुष लक्षणो की विद्यमानता को परखा और तत्पश्चात् उनके ईर्यापथ का भी अवलोकन किया और मिथिला मे जाकर इस सम्पूर्ण वृत्तान्त से ब्रह्मायु को परिचित कराया——

"वे चलते समय पहले दाहिना ही पैर उठाते है, न बहुत दूर पैर उठाते है न बहुत समीप; न अति शीघ्र चलते है, न अति देर से । बिना अवलोकन करते गौतम सारी काया से अवलोकन जैसे करते है । गृहस्थो के घर के भीतर काया को न उठाते है, न झुकाते है, न हाथ का अवलम्ब लेकर आसन पर बैठते है । पात्र मे जल लेते समय पात्र को न ऊपर उठाते है, न पात्र को नवाते है । वे भोजन (भात) न बहुत अधिक न बहुत कम ग्रहण करते है । ... दो-तीन बार करके मुख मे ग्रास को चबाकर खाते है । जूठा उनके शरीर पर नही गिरता ।

हमने उन गौतम को गमन करते देखा, खड़े हुए देखा, भीतर प्रवेश करते देखा, घर मे चुपचाप बैठे देखा, भोजनोपरान्त भोजन का अनुमोदन करते देखा, आराम मे जाते देखा, आराम के भीतर चुपचाप बैठे देखा, आराम के भीतर परिषद् को धर्मोपदेश करते देखा।"

पीछे ब्रह्मायु ब्राह्मण स्वय मिथिला मे बुद्ध के दर्शन के लिए गया और उपदेश सुनकर उनका उपासक बना।

१६. घोटकमुखसुत्त (६४)––घोटकमुख (घोडे जैसे मुँहवाला) ब्राह्मण किसी काम से वाराणसी आया था। एक दिन घूमते हुए वह क्षेमिक नामक आम्रवन मे जा निकला। वहाँ आयुष्मान् उदयन टहल रहे थे। घोटकमुख से बात शुरू होते ही वे टहलने के चबूतरे (चङक्रमण) से उतरकर, विहार मे प्रविष्ट हो, आसन पर बैठ गये, और ब्राह्मण से बोले––

"ब्राह्मण, आसन मौजूद है, इच्छा हो, तो बैठो।"

"आप उदयन की इस आज्ञा की प्रतीक्षा मे ही मै था। मेरे जैसे पुरुष बिना निमत्रण के कैसे आसन पर बैठ जायेगा।"

एक नीचा आसन ले, बैठकर उस ब्राह्मण ने कहा––"जो धर्म यहाँ है, वही हमारे लिए प्रमाण है।"

"ब्राह्मण, यदि मेरी किसी बात को स्वीकरणीय समझना तो स्वीकार करना, खडनीय समझना तो खडन करना, और मेरे जिस कथन का अर्थ न समझना, उसे मुझसे ही पूछना।"

इसके पश्चात् बुद्ध ने उसे उपदेश दिया। उपदेश सुनने पर घोटकमुख ने उनसे अजलिबद्ध उपासकत्व का प्रस्ताव किया। इस पर उदयन ने कहा––

"ब्राह्मण, तू मेरी शरण मत जा; उसी भगवान् की तू भी शरण जा, जिसकी शरण मैं गया हूँ।"

घोटकमुख ने पूछा––"वे भगवान् कहाँ है ?"

इस पर उदयन ने बताया कि उनका तो निर्वाण हो गया।

घोटकमुख ने कहा---"निर्वाण-प्राप्त उन भगवान् की, उनके धर्म की तथा उनके सघ की हम शरण जाते है और अङ्गराज जो दैनिक मुझे भिक्षा देता है, उन पाँच सौ कार्षापणो की भिक्षा को मै आपको समर्पित करता हूँ ।"

उदयन ने कहा---"ब्राह्मण, हमारे लिए सोना-चाँदी ग्रहण करना कल्प्य नही है ।"

"यदि यह विहित नही है तो मै आपके लिए विहार बनवाऊँगा ।"

"यदि मेरे लिए विहार बनाना चाहते हो, तो पाटलिपुत्र मे सघ की उपस्थानशाला बनवा दे ।"

घोटकमुख ने उनके आदेशानुसार पाटलिपुत्र मे उपस्थानशाला बनवायी, जो आज भी 'घोटकमुखी' कही जाती है ।

१७. वासेट्ठसुत्त (६८)---इस सुत्त मे बुद्ध ने वर्ण-व्यवस्था का खडन प्रस्तुत किया है। एक समय भगवान् 'इच्छानङ्गल' मे विहार करते थे। उस समय बहुत से अभिज्ञात ब्राह्मण, यथा---चङ्कि, तारुक्ष, जानुश्रोणि, 'तोदेय्य' तथा दूसरे 'इच्छानङ्गल' मे ही निवास करते थे ।

बुद्ध के वहाँ आने पर वाशिष्ठ तथा भारद्वाज माणवो मे इस सम्बन्ध मे बहस छिड गयी। दोनो ने अन्त मे यह निश्चय किया कि इस सम्बन्ध मे बुद्ध से पूछकर वे अपना निर्णय करेगे । जाकर बुद्ध से उन्होने अपने-अपने पक्ष भी बतलाये कि एक जाति से तथा दूसरा कर्म से ब्राह्मण होने को मानता है । बुद्ध ने कहा---

"प्राणियो की जातियो मे एक दूसरे से जाति का भेद है, जैसे तृण और वृक्ष मे, कीट, पतंग और चीटी, छोटे बडे चौपाये, जलचर, आकाशचारी पक्षियो आदि मे जाति का लिङ्ग विद्यमान है, पर इस प्रकार का जाति-लिङ्ग मनुष्यो मे अलग-अलग नही है । मनुष्य के किसी अङ्ग को लेने पर भी यह जातिभेदक लिङ्ग नही प्राप्त होता । मनुष्यो मे भेद सिर्फ सज्ञा में है ।

अतः कर्म के अनुसार जो गोरक्षा से जीविका करता है वह कृषक है; जो शिल्प से जीविका करता है, वह शिल्पी है; जो व्यापार से जीविका अर्जित करता है, वह वैश्य है आदि ।

माता तथा योनि से उत्पन्न होने के कारण कोई ब्राह्मण नही होता, प्रत्युत ब्राह्मण वह है, जो अपरिग्रही हो ।

कमल के पत्ते पर जल तथा आरे की नोक पर स्थित सरसो की भाँति जो भोगो में लिप्त नही है, वही मेरे अनुसार ब्राह्मण है ।"

इस प्रकार विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करते हुए बुद्ध ने वर्ण-व्यवस्था का खडन किया । वे सब उनके उपासक हुए ।

१८. **सामगामसुत्त** (१०४)—इस सुत्त मे 'निगण्ठनातपुत्त' (जैन तीर्थङ्कर महावीर) के पावा मे मरने और उनके श्रावको मे झगडा होने की बात का उल्लेख है । यह कथा 'दीघनिकाय' में भी आयी है । खबर लानेवाले चुन्द श्रमणोद्देश थे । इस सुत्त मे बौद्ध सिद्धान्तो का विवरण तथा व्याख्यान प्रस्तुत किया गया है ।

१९. **गोपकमोग्गल्लानसुत्त** (१०८)—इस सुत्त मे बुद्ध-निर्वाण के थोडे समय बाद की घटनाओ का उल्लेख है । उस समय आयुष्मान् आनन्द राजगृह मे वेणुवन के 'कलन्दकनिवाप' मे विहार कर रहे थे । मगधराज अजातशत्रु अवन्तिराज प्रद्योत के भय से नगर मे रक्षा की तैयारियाँ करा रहा था । आयुष्मान् आनन्द अपने भिक्षाचार के लिए निकले । पर अभी बहुत सबेरा था, अतः समय व्यतीत करने के लिए वे 'गोपक-मोग्गल्लान' के यहाँ गये । वही पर मगध-महामात्य वर्षकार ब्राह्मण तथा उप-नन्द सेनापति भी आये । वहाँ पर 'गोपकमोग्गल्लान' ने आनन्द से कहा—

"भो आनन्द, क्या आप सबमे कोई एक भिक्षु भी ऐसा है, जो कि सारे के सारे उन धर्मो से युक्त हो, जिनसे युक्त भगवान् बुद्ध थे ?"

आनन्द ने उसकी बात को छोड़कर वर्षकार के प्रश्नो का उत्तर देते हुए कहा कि ब्राह्मण हम धर्म-प्रतिशरण है । और इसके पश्चात् ध्यान-

भावना आदि का व्याख्यान किया। अन्त मे गोपक के प्रश्नो का उत्तर देते हुए उन्होने कहा कि हममे एक भिक्षु भी ऐसा नही है, जैसा कि तुमने पूछा है; आजकल के श्रावक मार्ग-अनुगामी हो विहर रहे है।

मगध और अवन्ती दोनो अपनी-अपनी शक्ति बढा रहे थे। अन्त मे मगध अपना साम्राज्य स्थापित करने मे सफल हुआ।

२०. **भद्देकरत्तसुत्त (१३१)**—इस सुत्त मे यह शिक्षा दी गयी है है कि मनुष्य को भूत तथा भविष्य की चिन्ता छोडकर वर्तमान की ही चिन्ता करनी चाहिए। बुद्ध ने भिक्षुओ को उपदेश दिया—

"अतीत का अनुगमन न करे और न भविष्य की चिन्ता मे पडे। जो अतीत है, वह नष्ट हो गया और भविष्य तो अभी आया ही नही। रात-दिन निरालस्य तथा उद्योगी होकर विहरनेवाले को ही 'भद्देकरत्त' कहते है।"

२१. **पुण्णोवादसुत्त (१४५)**—आयुष्मान् पूर्ण ने भगवान् बुद्ध से अपने लिए सक्षिप्त धर्मोपदेश करने को कहा, जिससे वे (पूर्ण) एकाकी, एकान्तवासी, सयमी, अप्रमादी और उद्योगी होकर विहार कर सके।

बुद्ध ने उन्हे सक्षिप्त धर्मोपदेश दिया और पूछा—"पूर्ण, मेरे इस सक्षिप्त उपदेश से उपदिष्ट होकर तू कौन से जनपद मे विहरेगा ?"

पूर्ण ने उत्तर दिया—"भन्ते, 'सूनापरान्त' नामक जनपद है, मै वहाँ विहार करूँगा।"

उनकी दृढ़ता की परीक्षा लेने के लिए बुद्ध ने इस सम्बन्ध मे उनसे और प्रश्न किये और बिना अविचल हुए पूर्ण ने उन सबका उत्तर दिया—

"पूर्ण, सूनापरान्त के मनुष्य चड तथा कठोर है, यदि वे तुझे कुवाच्य आदि कहकर तेरा आक्रोशन करेगे, तो तुझे कैसा लगेगा ?"

"भन्ते, यदि ऐसा होगा तो मुझे तो यही अनुभूति प्राप्त होगी कि सूनापरान्त के मनुष्य भद्र है और वे मुझ पर हाथ से प्रहार नही करते।"

"यदि, पूर्ण, वहाँ के मनुष्य तुझ पर हाथ से प्रहार करें, तब तुम्हे कैसा लगेगा ?"

"भन्ते, मुझे ऐसा होगा कि वहाँ के मनुष्य भद्र हैं, जो मुझे डडे से नही मारते।"

"यदि, पूर्ण, सूनापरान्त के मनुष्य तुझे तीक्ष्ण शस्त्र से मार डाले, तब तुझे क्या होगा ?"

"भन्ते, मुझे ऐसा होगा—उन भगवान् के कोई-कोई शिष्य अपनी जिन्दगी से तग आकर और ऊबकर आत्महत्यार्थ शस्त्रहारक खोजते है, सो मुझे यह शस्त्रहारक बिना खोजे ही मिल गया।"

इन सबको सुनकर बुद्ध ने कहा—"साधु साधु, पूर्ण ! साधु, पूर्ण !! तू इस प्रकार के शम-दम से युक्त हो सूनापरान्त जनपद मे रह सकता है।"

भगवान् के वचनो का अनुमोदन कर पूर्ण सूनापरान्त के लिए वहाँ से चल दिये और वहा पहुँच कर उसी वर्ष के वर्षा-काल मे पाँच सौ उपासकों तथा पाँच सौ उपासिकाओ को ज्ञान की उपलब्धि उन्होंने करायी और स्वय भी तीनो विद्याओ की प्राप्ति की और दूसरे समय परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

'मज्झिमनिकाय' का वर्णन यहाँ सक्षेप मे प्रस्तुत किया गया है। इस निकाय मे 'थेरवाद' सम्प्रदाय के आधारशिलाभूत सभी दार्शनिक सिद्धान्तो का विवेचन है, अतएव इसे 'बुद्धवचनामृत' की सज्ञा से विभूषित किया जाता है।

इसमे अधिकतर सुत्त बुद्ध द्वारा ही उपदिष्ट है, लेकिन कुछ ऐसे सुत्तो का भी सग्रह इसमे है, जिन्हे 'सारिपुत्त' तथा 'महाकच्चायन' आदि बुद्ध के शिष्यो ने कहा था। ऊपर भी इनके सम्बन्ध मे कह दिया गया है। इन सुत्तो के अतिरिक्त 'माधुरिय' तथा 'घोटकमुख' आदि कुछ ऐसे भी सुत्त है, जो बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् उनके शिष्यो द्वारा कहे गये है। बुद्धवचनो का सग्रह किस प्रकार से कालान्तर मे सम्पन्न किया गया, इस पर इन सबसे वास्तविक प्रकाश प्राप्त होता है।

—:o:—

तीसरा अध्याय

३ संयुत्तनिकाय

सुत्तपिटक का तीसरा निकाय 'संयुत्तनिकाय' है। यह पाँच वर्गो तथा छप्पन संयुक्तो मे विभक्त है। 'नालन्दा देवनागरी पालि ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत प्रकाशित इस निकाय की पृष्ठ-संख्या निम्नप्रकार है—

प्रथम भाग (सगाथवग्ग)	२४१,
द्वितीय भाग (निदानवग्ग तथा खन्धवग्ग)	४८६,
तृतीय भाग (सळायतनवग्ग)	३४५,
चतुर्थ भाग (महावग्ग)	४०७
योग	१४८२

यदि पृष्ठो के आधार पर 'दीघनिकाय' के अनुसार इसके भाणवारो का हम विभाजन करे, तो यह संख्या लगभग १३४ होती है तथा ग्रन्थप्रमाण ४८० होता है। भिक्षु जगदीश काश्यप ने उपर्युक्त नागरी संस्करण मे 'संयुत्तनिकाय' मे सूत्रो की संख्या २९४१ मानी है, यद्यपि परम्परानुसार यह संख्या भिन्न ही है। इसी संस्करण के आधार पर 'संयुत्तनिकाय' का पूर्ण विभाजन नीचे प्रस्तुत किया जायेगा।

यह निकाय पाँच 'वग्गो' (वर्गो) मे विभक्त है, और प्रत्येक वर्ग मे विभिन्न 'संयुत्तो' (संयुक्तो) का संग्रह किया गया है। वर्ग है—(१) सगाथवग्ग, (२) निदानवग्ग, (३) खन्धवग्ग, (४) सळायतनवग्ग तथा (५) महावग्ग। इन वर्गों मे देवतासंयुत्तादि विभिन्न ५६ 'संयुत्त' संग्रहीत है। इसका पूर्ण विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है —

१. सगाथवग्ग (=२७१ सूत्र)

संयुत्त	सूत्र-संख्या
१. (१) देवतासयुत्त	८१
२. (२) देवपुत्त०	३०
३ (३) कोसल०	२५
४. (४) मार०	२५
५ (५) भिक्खुनी०	१०
६ (६) ब्रह्म०	१५
७. (७) ब्राह्मण०	२२
८ (८) वङ्गीस०	१२
९. (९) वन०	१४
१०. (१०) यक्ख०	१२
११. (११) सक्क०	२५

२. निदानवग्ग (=२९६)

१२ (१) निदान०	१०३
१३ (२) अभिसमय०	११
१४ (३) धातु०	३९
१५ (४) अनमतग्ग०	२०
१६ (५) कस्सप०	१३
१७ (६) लाभसक्कार०	४३
१८. (७) राहुल०	२२
१९ (८) लक्खण०	२१
२० (९) ओपम्म०	१२
२१ (१०) भिक्खु०	१२

३ खन्धवग्ग (=७१६)

२२ (१) खन्ध०	१५९

४. सळायतनवग्ग (=४३४)

५. महावग्ग (=१२२४)

४७. (३) सतिपट्ठान०	११०
४८. (४) इन्द्रिय०	१८०
४९. (५) समप्पधान०	५५
५०. (६) बल०	११०
५१. (७) इद्धिपाद०	८६
५२. (८) अनुरुद्ध०	२४
५३. (९) झान०	५५
५४. (१०) आनापान०	२०
५५. (११) सोतापत्ति०	७४
५६. (१२) सच्च०	१३७

वर्गों तथा संयुक्तों के नामों से ही उनमें वर्णित विषय के बारे में ज्ञान होता है। 'सगाथवग्ग' के नाम से ही प्रकट है कि इसमें आये हुए सुत्त गाथाओं से युक्त हैं। 'निदानवग्ग' में प्रतीत्यसमुत्पादवाद के नाम से समार-चक्र की व्याख्या की गयी है। 'खन्धवग्ग' में पञ्च-स्कन्ध का विवेचन है, पर इस सम्बन्ध में स्कन्धों की दार्शनिक व्याख्या न प्रस्तुत करके केवल यही बारबार कहा गया है कि रूप अनित्य है, अनात्म है, दुःख है आदि। 'सळायतनवग्ग' में पञ्च-स्कन्धवाद तथा सळायतनवाद दोनों के सिद्धान्त प्रतिपादित हैं तथा 'महावग्ग' में बौद्ध धर्म, दर्शन और साधना के महत्त्व-पूर्ण सिद्धान्तों पर व्याख्यान विद्यमान है।

यहाँ पर स्थालीपुलाक न्याय से 'संयुत्तनिकाय' के कुछ सुत्तों का भाव दिया जा रहा है। कुरु देश (मेरठ कमिश्नरी) की लोककथाओं में प्रश्नोत्तर करने की रीति है और वही 'सगाथवग्ग' में भी प्राप्य है—

१. कतिछिन्दसुत्त (१.१.५)—

"कितने को काटे, कितने को छोड़े,
कितने और अधिक का अभ्यास करे?
कितने संगों को पारकर कोई भिक्षु,
'बाढ पार कर गया' कहा जाता है?"

"पाँच को काटे, पाँच को छोड दे,
पाँच और अधिक का अभ्यास करे।
पाँच सगो को पारकर भिक्षु,
'बाढ़ पार कर गया' कहा जाता है।"

२. जागरसुत्त (१.१.६)—

"जागे हुओ मे कितने सोये है,
सोये हुओ मे कितने जागे है ?
कितने से मैल लग जाता है,
कितने से परिशुद्ध हो जाता है ?"

"जागे हुओ मे पाँच सोये है,
सोये हुओ मे पाँच जागे है।
पाँच से मैल लग जाता है,
पाँच से परिशुद्ध हो जाता है।"

३. नत्थिपुत्तसमसुत्त (१.१.१३)—

"पुत्र के समान कुछ प्यारा नही,
गौओ के समान कोई धन नही।
सूर्य के समान कोई प्रकाश नही,
समुद्र सबसे महान् जलराशि है"

"अपने के समान कोई प्यारा नही,
धान्य के समान कोई धन नही।
प्रज्ञा के समान कोई प्रकाश नही,
वृष्टि सबसे महान् जलराशि है।"

४. जटासुत्त (१.१.२३)—

इस सुत्त मे वे ही प्रसिद्ध गाथाएँ है, जिन्हे सिहल के स्थविरो ने आचार्य बुद्धघोष की परीक्षा लेने के लिए उन्हे दिया था। उनके व्याख्यान मे आचार्य

ने 'विसुद्धिमग्ग' जैसे गम्भीर ग्रन्थ को प्रस्तुत करके अपनी योग्यता प्रमाणित की थी—

"भीतर मे जटा (लगी है), बाहर भी जटा ही जटा है[1],
सभी जीव जटा मे बेतरह उलझे पडे है,
इसलिए, हे गौतम, आपसे पूछता हूँ,
कौन इस जटा को सुलझा सकता है?"

"शील पर प्रतिष्ठित हो प्रज्ञावान् मनुष्य,
चित्त और प्रज्ञा की भावना करते हुए[2],
तपस्वी और विवेकशील भिक्षु ही,
इस जटा को सुलझा सकता है।

जिनके राग-द्वेष और अविद्या,
बिल्कुल हट चुकी है,
जो क्षीणास्रव अर्हत् है,
उनकी जटा सुलझ चुकी है।
जहाँ नाम और रूप,
बिल्कुल निरुद्ध हो जाते है,
(जहाँ) प्रतिघ और रूप-सज्ञा भी (निरुद्ध हो जाते है),
वहाँ यह जटा कट जाती है।"

---

१. 'विसुद्धिमग्ग' मे इसका व्याख्यान इस प्रकार से है—"जाल फैलानेवाली तृष्णा ही जटा कही गयी है। वह रूपादि आलम्बनों मे ऊपर-नीचे बारबार उत्पन्न होने और गुथ जाने के कारण बाँस इत्यादि के झाड़ की भाँति मानों जटा जैसी हो। इसी से तृष्णा ही यहाँ जटा कही गयी है। वही स्वकीय-परिष्कार, पर-परिष्कार, स्वात्मभाव, परमात्मभाव, आध्यात्मायतन तथा बाह्यायतन इत्यादि मे उत्पन्न होने से 'भीतर की जटा' और 'बाहर की जटा' कही गयी है।

२. 'चित्त और प्रज्ञा की भावना करते हुए का तात्पर्य समाधि तथा 'विपस्सना' (विदर्शना) भावना से है।

५. पाथेय्यसुत्त (१.१.७९)—

"क्या राह-खर्च बाँधता है,
भोगो का वास किसमे है ?
मनुष्य को क्या घसीट ले जाता है,
ससार मे क्या छोडना बडा कठिन है ?
इतने जीव किसमे बँधे है,
जैसे जाल मे कोई पक्षी ?"

"श्रद्धा राह-खर्च बाँधती है,
ऐश्वर्य मे सभी भोग बसते है ।
इच्छा मनुष्य को घसीट ले जाती है,
ससार मे इच्छा को छोडना बडा कठिन है ।
इतने जीव इच्छा मे बँधे है,
जैसे जाल मे कोई पक्षी ।"

६. पज्जोतसुत्त (१.१.८०) —

"लोक मे प्रद्योत क्या है,
लोक मे कौन जाननेवाला है ।
प्राणियो मे कौन काम मे सहायक है,
और उसके चलने का रास्ता क्या है ?
कौन आलसी और उद्योगी दोनो की,
रक्षा करता है, जैसे माता पुत्र की ?
किसके होने से सभी जीवन धारण करते है,
जितने प्राणी पृथ्वी पर बसते है ?"

"प्रज्ञा लोक मे प्रद्योत है,
स्मृति लोक मे जागती रहती है ।
प्राणियो मे बैल काम मे साथ देता है,
और जोत उसके चलने का रास्ता है ।

वृष्टि आलसी और उद्योगी दोनो की,
रक्षा करती है, जैसे माता पुत्र की,
वृष्टि के होने से सभी जीवन धारण करते हैं,
जितने प्राणी पृथ्वी पर बसते हैं।"

इसके द्वितीय 'सयुत्त' 'देवपुत्तसयुत्त' मे देवपुत्रो ने बुद्ध से जो प्रश्न किये हैं और उनका जो उत्तर उनके द्वारा प्रस्तुत किया गया है, वह सभी सग्रहीत है—

७. अनाथपिण्डिकसुत्त (१.२.२०)—

इसमे अनाथपिण्डिक द्वारा बनवाये जेतवनाराम का वर्णन है। १९३३ मे मेरे गुरु श्री धर्मानन्द महास्थविर (लका) जेतवन मे गन्धकुटी के सामने खडे होकर जिस समय इन गाथाओं को पढ रहे थे, उस समय उनकी आँखो से अविरल अश्रुधारा बह रही थी। (वह खडहर बना जेतवन वैसा ही था) गाथाएँ—

"यही वह जेतवन है,
ऋषियो से सेवित,
धर्मराज (बुद्ध) जहाँ बसते हैं,
(यह) मुझमे बडी श्रद्धा उत्पन्न करता है ।"

इस निकाय का द्वितीय 'सयुत्त' 'कोसलसयुत्त' है, जिसके प्राय सारे सुत्त राजा प्रसेनजित् (कोसल के राजा) से सम्बन्ध रखते हैं।

८. दहरसुत्त (१.३.१)—

भगवान् जेतवन मे विहार कर रहे थे। उस समय कोसलराज प्रसेनजित् भगवान् के पास आया और शिष्टाचार आदि दिखलाकर एक ओर बैठ गया और भगवान् से बोला—"आप गौतम क्या अनुत्तर, पूर्ण बुद्धत्व पा लेने का दावा नही करते ?"

"महाराज, यदि कोई किसी को सचमुच सम्यक् सम्बुद्ध कहे, तो वह मुझ को ही कह सकता है, महाराज, मैंने ही उस अनुत्तर बुद्धत्व का साक्षात्कार किया है ।"

"हे गौतम, जो दूसरे श्रमण और ब्राह्मण है—सघवाले, गणी, गणाचार्य, विख्यात, यशस्वी, तीर्थङ्कर, बहुत लोगों से सम्मानित, जैसे—पूर्णकाश्यप, मस्करीगोशाल, निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र, 'सञ्जय बेलट्ठिपुत्त', प्रकुध कात्यायन, अजित केशकम्बली—वे भी मुझसे पूछे जाने पर अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्धत्व पाने का दावा नही करते है। आप गौतम तो आयु मे भी छोटे है और नये-नये प्रव्रजित भी हुए है।"

"महाराज, चार ऐसे है जिनको 'छोटे है' समझ अवज्ञा या अपमान करना उचित नही। कौन से चार ? (१) क्षत्रिय को, (२) साँप को, (३) आग को और (४) भिक्षु को ..।"

बुद्ध ने फिर कहा—

"ऊँचे कुल मे उत्पन्न बडे, यशस्वी क्षत्रिय को
'छोटा है' जान कम न समझे, उसका कोई अपमान न करे।

... .

गाँव मे या जगल मे कही भी जो साँप देखे,
'छोटा है' जान कम न समझे, उसका कोई अनादर न करे।

.. ..

लपटों मे सब कुछ जलादेनेवाली, काले मार्ग पर चलनेवाली आग को,
'छोटा है' जान कम न समझे, कोई उसका अनादर न करे।

... ...

किन्तु, जिसे शील-सम्पन्न भिक्षु अपने तेज से जला देता है,
वह पुत्र, पशु, दायाद या धन कुछ भी नही पाता,
नि सन्तान, निर्धन, सिर कटे ताल वृक्ष-सा हो जाता है।
इसलिए, पण्डित पुरुष अपनी भलाई का ख्याल कर,
साँप, आग, यशस्वी क्षत्रिय,
और शील-सम्पन्न भिक्षु के साथ ठीक से पेश आवे।"

इस उद्धरण से यह भी पता चलता है कि बुद्ध अपने समय के सभी तीर्थङ्करो से आयु मे छोटे थे।

९. मल्लिकासुत्त (१.३.८)—

मल्लिका साधारण कुल की कन्या थी, पर अपने गुणो से कोसलराज प्रसेनजित् की बडी प्रिय रानी हो गयी। एक बार राजा ऊपर महल पर था; उसने देवी से कहा—'मल्लिके, तुझे क्या कोई अपने से भी अधिक प्रिय है ?" "मुझे अपने से बढकर कोई प्रिय नही है।" राजा ने बुद्ध के पास जाकर यही बात कही। उन्होंने गाथा कही—

"सभी दिशाओ मे अपने मन को दौडा,
कही भी अपने से प्यारा कोई दूसरा नही मिला,
वैसे ही, दूसरो को भी अपना बडा प्यारा है,
इसलिए, अपनी भलाई चाहनेवाला दूसरे को मत सतावे।"

१०. पठमसङ्गामसुत्त (१.३.१४)—

मगधराज अजातशत्रु ने चतुरङ्गिनी सेना ले काशी (देश) मे प्रसेनजित् पर आक्रमण किया। राजा प्रसेनजित् ने सुना। प्रसेनजित् भी चतुरङ्गिनी सेना तैयार कर काशी गया। उस सग्राम मे अजातशत्रु ने प्रसेनजित् को जीत लिया। पराजित होकर वह अपनी राजधानी श्रावस्ती लौटा। यह खबर भिक्षुओ से बुद्ध को मिली।

बुद्ध ने कहा—"भिक्षुओ, मगधराज अजातशत्रु वैदहिपुत्र बुरे लोगो से मिलने-जुलनेवाला और बुराइयो को ग्रहण करनेवाला है. और कोसलराज प्रसेनजित् भले लोगो से मिलने-जुलनेवाला और भलाइयो को ग्रहण करनेवाला है। किन्तु हार खाये हुए कोसलराज की यह रात भारी गम मे बीतेगी—

"जय बैर को पैदा करती है,
हारा हुआ गम से सोता है,
शान्त जन हार-जीत की बातो को छोड,
सुख से सोता है।"

११. दुतियसङ्गामसुत्त (१.३.१५)—

राजा अजातशत्रु सेना ले काशी मे लडने आया। सुनकर प्रसेनजित् भी गया। दोनो लड़े। प्रसेनजित् ने अजातशत्रु को जीत लिया; उसे

जिन्दा ही गिरफ्तार कर लिया । प्रसेनजित् ने सोचा--"राजा अजातशत्रु शान्ति से रहनेवाले मेरे साथ द्रोह करता है, तो भी तो मेरा भाँजा ही है। क्यो न मै अजातशत्रु के सारे हस्तिसमूह, सारे अश्वसमूह, सारे रथकाय, सारे पदाति (पैदल) समूह को लेकर उसे जीता ही छोड दूँ ।" उसने वैसा ही किया ।

भिक्षुओ ने यह बात भगवान् से कही ।

भगवान् ने कहा—

"अपनी मर्जी भर कोई लूटता है,
किन्तु जब दूसरे लूटने लगते है,
तो वह लूटनेवाला लूटा जाता है ।

.

इस तरह अपने किये कर्म के फेर मे पड,
लूटनेवाला लूटा जाता है ।"

१२. **धीतुसुत्त** (१.३.१६)--

जेतवन मे राजा प्रसेनजित् भगवान् के पास था उसी समय एक आदमी ने आकर प्रसेनजित् के कान मे कहा--"देव, मल्लिका देवी को पुत्री हुई ।" राजा यह सुनकर उदास हो गया । इसे जानकर भगवान् ने कहा----

"राजन्, कोई-कोई स्त्रियाँ भी पुरुषो से बढी-चढी,
बुद्धिमती, शीलवती, सास की सेवा करनेवाली और पतिव्रता होती है,
अत पालन-पोषण कर ।
उससे दिशाओ को जीतनेवाला महाशूरवीर पुत्र उत्पन्न होता है,
वैसी अच्छी स्त्री का पुत्र राज्य का अनुशासन करता है ।"

आठवे 'सयुत्त' 'वङ्गीससयुत्त' मे अधिकतर 'वङ्गीस' द्वारा रचित गाथाएँ है। वे एक स्वाभाविक कवि थे । अपने पूर्व जीवन के बारे मे उन्होने स्वयं लिखा है——

१३. सुभासितसुत्त (१.८.५)—

भगवान् श्रावस्ती के जेतवनाराम मे थे। वहाँ पर उन्होंने सुभाषित की प्रशसा की। उसी समय आयुष्मान् 'वङ्गीस' ने बुद्ध से कुछ कहने का अवकाश चाहा। भगवान् ने उसकी आज्ञा दी। 'वङ्गीस' बोले—

"उसी वचन को बोले, जिससे अपने को अनुताप न हो,
और, दूसरो को भी कष्ट न हो, वही वचन सुभाषित है।
प्रिय वचन ही बोले, जो सभी को सुहाये,
जो दूसरों के दोष नही निकालता, वही प्रिय बोलता है।
सत्य ही सर्वोत्तम वचन है, यह सनातन धर्म है,
सत्य, अर्थ और धर्म मे प्रतिष्ठित सज्जनों ने कहा है।
बुद्ध जो वचन कहते है, क्षेम और निर्वाण की प्राप्ति के लिए,
दु खो को अन्त करने के लिए, वही उत्तम वचन है।"

१४. वङ्गीससुत्त (१.८.१२)—

भगवान् श्रावस्ती मे जेतवनाराम मे विहार करते थे। उसी समय तुरन्त ही अर्हत् पद पाये विमुक्ति सुख का अनुभव करते हुए आयुष्मान् 'वङ्गीस' के मुँह से ये गाथाएँ निकली—

"पहले केवल कविता करते विचरता रहा, गाँव से गाँव और शहर से शहर,
तब, सम्बुद्ध भगवान् का दर्शन हुआ, मन मे बडी श्रद्धा उत्पन्न हुई,
उन्होंने स्कन्ध, आयतन तथा धातुओं के विषय मे मुझे धर्मोपदेश दिया,
उनके उपदेश को सुन, मै घर से बेघर हो प्रव्रजित हो गया।
बहुतो की अर्थ-सिद्धि के लिए, मुनि मे बुद्धत्व का लाभ हुआ,
भिक्षु और भिक्षुणियो के लिए, जो नियाम को प्राप्तकर देख लिये है।
आपको मेरा स्वागत हो, बुद्ध के पास मुझे,
तीन विद्याएँ प्राप्त हुई है, बुद्ध का शासन सफल हुआ।
पूर्व जन्मो की बात जानता हूँ, दिव्य चक्षु विशुद्ध हो गया है,
त्रैविद्य और ऋद्धिमान् हूँ, दूसरो के चित्त को जानता हूँ।"

१५. तालपुटसुत्त (४.४२.२)—

राजगृह के वेणुवन की बात है। उस समय 'तालपुट' नामक नटों का ग्रामणी (नेता) भगवान् के पास आया और उसने भगवान् से पूछा—"भन्ते, मैंने पूर्व के आचार्यो-प्राचार्यों को कहते सुना है—'जो नर रग के मध्य में तथा 'समज्या' के मध्य में अपने अभिनय से लोगों को हँसाता तथा रमण कराता है, वह काया छोडने पर मरने के बाद 'प्रहास' नामक देवताओं के साथ पैदा होता है।'"

'तालपुट' के इस प्रश्न का बुद्ध ने उत्तर देना स्वीकार नही किया और कहा—"रहने दो, ग्रामणि, मुझसे मत पूछो। यह ठीक नही है।"

उसने दो बार पूछा, पर बुद्ध ने वही उत्तर दिया। जब उसने तीसरी बार पूछा, तो बुद्ध ने इसका व्याख्यान करते हुए कहा कि ऐसा कहना एक प्रकार की मिथ्यादृष्टि है। वे लोग मरने के बाद 'प्रहास' नामक नरक मे जाते है।

'तालपुट' ने जब यह सुना तो उसकी आँखों मे आंसू आ गये। बुद्ध ने समझाया कि इसी कारण से वे उसके प्रश्न का पहले व्याख्यान नही कर रहे थे।

'तालपुट' ने कहा—"मैं भगवान् का उत्तर सुनकर नहीं रो रहा हूँ, प्रत्युत रो इसलिए रहा हूँ कि अतीत के नटाचार्यों ने दीर्घकाल तक लोगों को ठगा, जो वे ऐसा कहा करते थे।"

तत्पश्चात् वह बुद्ध के पास प्रव्रजित एव उपसम्पन्न हुआ।

'सयुत्तनिकाय' का सक्षेप मे वर्णन यही है। इसमे आये हुए विवेचन पर यदि हम विचार करे, तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि सम्पूर्ण 'सुत्तपिटक' मे दार्शनिक दृष्टि से 'सयुत्तनिकाय' का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

— o —

चौथा अध्याय

४. अङ्गुत्तरनिकाय

'अङ्गुत्तरनिकाय' मे प्राय २३०८ सूत्र तथा ११३ पृष्ठो का एक भाणवार मानने पर प्राय १४५ भाणवार होते है। यह सख्या परम्परा द्वारा प्राप्त 'अट्ठकथा' की सख्या से मेल नही खाती। 'समन्तपासादिका' मे इसके ६५५७ सुत्तो का उल्लेख तथा अन्यत्र भाणवारों की सख्या १२० बतायी गयी है। इसमे सुत्तो मे वर्णित विषयो को एक, दो तथा तीन आदि के क्रम से रखा गया है, जिसे 'अङ्गुत्तर' (अङ्कोत्तर) कहते है। सुत्तो की सख्या अधिक होने के कारण उनका छोटा होना आवश्यक है। इसका मूल चार भागो मे भिक्षु जगदीश काश्यप के सम्पादकत्व मे 'नालन्दा देव-नागरी पालि ग्रन्थमाला' से प्रकाशित हुआ है तथा इसके प्रथम भाग का अनुवाद हिन्दी मे भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने किया है, जिसे महाबोधि सभा, सारनाथ, ने प्रकाशित किया है।

'अङ्गुत्तरनिकाय' मे ग्यारह 'निपात' है, जो अनेक 'वग्गो' (वर्गो मे विभक्त है तथा ये 'वग्ग' आगे यथास्थान सुत्तो मे विभक्त है। इन विभिन्न 'निपातो' मे 'वग्गो' का निम्नलिखित क्रम से विभाजन है—

निपात	वग्ग-सख्या
१ एककनिपात	२०
२ दुकनिपात	१७
३ तिकनिपात	१६
४ चतुक्कनिपात	२७
५ पञ्चकनिपात	२६
६. छक्कनिपात	१२
७ सत्तकनिपात	१०

८. अट्ठकनिपात	१०
९. नवकनिपात	६
१०. दसकनिपात	२२
११. एकादसकनिपात	३

लिखित होने के पहले 'निकाय' कण्ठस्थ कर लिये गये थे। अतएव प्रथमत इनकी रक्षा स्मृति द्वारा ही हुई। बाद मे (वट्टगामणि अभय ४४–१७ ई० पू०) ये लिपिबद्ध किये गये। श्रुतिपरम्परा के वेदपाठियो की भाँति दीघभाणक, मज्झिमभाणक, सयुत्तभाणक, अङ्गुत्तरभाणक तथा खुद्दकभाणक—ये 'पञ्चनेकायिक' कहे जाते थे। उस समय रक्षा का साधन कितना भगुर था। कल्पना कीजिए, यदि कालदोष से एक ही 'दीघभाणक' बचा और वह भी चल बसा, तो उसके साथ 'दीघनिकाय' भी लुप्त। जैनपिटक मे ऐसा ही हुआ है। अधिक समय तक कण्ठस्थ रखने पर जोर होने के कारण आज जैनपिटक का अर्द्धमात्र ही शेष रह पाया है।

क्रमश एक, दो अङ्को के क्रम से सुत्तो को स्मरण रखना स्मृति के अनुसार सरल होता है। इसलिए इस शैली को अपनाया गया और 'अङ्गुत्तरनिकाय' इसका स्पष्ट उदाहरण है। यही शैली 'दीघनिकाय' के 'सङ्गीतिपरियायसुत्त' मे भी विद्यमान है।

'अङ्गुत्तरनिकाय' का प्रारम्भ इस प्रकार से होता है—

एककनिपात

ऐसा मैने सुना। एक समय भगवान् श्रावस्ती मे अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम मे विहार करते थे। वहाँ पर भगवान् ने भिक्षुओ को आमन्त्रित किया—"भिक्षुओ।" "भदन्त" कह भिक्षुओ ने भगवान् को उत्तर दिया। भगवान् ने यह कहा—

"भिक्षुओ, मै ऐसा एक भी अन्य रूप नही देखता हूँ जो पुरुष के चित्त को पकड कर रखता हो, जैसा कि स्त्री-रूप। भिक्षुओ, स्त्री-रूप पुरुष के चित्त को पकड कर रखता है" आदि।

यह एक सख्या के अनुसार रूप की वात हुई । आगे क्रमश स्त्री-शब्द, स्त्री-गन्ध, स्त्री-रस तथा स्त्री-स्पर्श आदि का व्याख्यान है। फिर इसी प्रकार स्त्री को लेकर पुरुष के रूपादि के सम्बन्ध मे भी ऐसा ही कहा गया है।

दुकनिपात

'दुकनिपात' दो वर्ज्यों की गणना मे प्रारम्भ होता है । इसमे दो प्रकार की त्याज्य वस्तुएँ, दो प्रकार के ज्ञानी पुरुष, दो प्रकार के बल, दो प्रकार की परिषदे, दो प्रकार की इच्छाओ आदि का विवेचन है । उदाहरणार्थ--

"भिक्षुओ, ये दो प्रकार के वर्ज्य है--(१) प्रत्यक्ष वर्ज्य (२) सम्परायिक वर्ज्य ।

प्रत्यक्ष वर्ज्य क्या है ? जैसे, भिक्षुओ, चोर को, आग लगानेवाले को राजा लोग पकडकर नाना प्रकार की ताडना देते है--कोडे से भी मारते है, बेत से भी मारते है, हाथ, पैर, कान, नाक आदि भी उनका कटवा देते है आदि । उन्हे कोई पुरुष देखकर यह सोचता है कि उपर्युक्त अवस्थाओ मे यह व्यक्ति इन प्रकार के दण्डो को प्राप्त कर रहा है । यदि मै भी ऐसा ही करूँगा तो इनका भागी हूँगा । इससे डरकर वह इन कार्यो को नही करता । यही प्रत्यक्ष वर्ज्य है ।

सम्परायिक वर्ज्य क्या है ? कोई पुरुष यह सोचता है कि काय, वाणी तथा मन आदि मे होने वाले दुष्कर्मो का बुरा विपाक होता है । मै ऐसा करूँ कि इन विपाकों को मुझे न भोगना पडे । अत सम्परायिक वर्ज्य से डरते हुए, वह इन सबसे विरत होकर, इनके विपरीत स्वभावो का सेवन करता है । सम्परायिक वर्ज्य यही है ।

इस प्रकार से भिक्षुओ, ये दो वर्ज्य है । इसलिए, भिक्षुओ, इस प्रकार से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि हम प्रत्यक्ष वर्ज्य तथा सम्परायिक वर्ज्य इन दोनों से डरते हुए रहेगे । ऐसा रहते हुए हम सभी वर्ज्यो से मुक्त हो जावेगे ।"

दो की गणना की परिसमाप्ति के पश्चात् आगे के 'निपातों' मे क्रमश तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नव, दस तथा ग्यारह आदि की गणना

है। जब त्रिपिटक को कण्ठस्थ ही रखना था, तो स्मरणशक्ति को सुगमता प्रदान करने के लिए अनेक उपाय किये गये। उन्ही मे से एक यह शैली भी थी।

तिकनिपात

इसमे तीन प्रकार के दुष्कृत्य (कायिक, वाचिक तथा मानसिक) तथा तीन प्रकार की वेदनाओ आदि का विवेचन है। इसके सुत्त उदाहरणस्वरूप नीचे दिये जाते हैं —

१ **हत्थकसुत्त** (३.४.५)—एक समय भगवान् बुद्ध 'आळवी' मे गायो के मार्ग मे 'सिंसपावन' मे पत्ते के बिछौने पर विहार करते थे। तब हस्तक माणवक ने भगवान् को वहाँ बैठे देखा। देखकर, भगवान् के पास जा, अभिवादन करके एक ओर बैठ गया और उनसे बोला—

"भन्ते, भगवान् सुख से तो सोये ?"

"हाँ, कुमार, सुख से सोया, जो लोक मे सुख से सोते हैं, मैं उनमे से एक हूँ।"

"भन्ते, यह हेमन्त की शीतल रात, हिमपात का समय अन्तराष्टक (माघ के अन्त के चार दिन तथा फागुन के आदि के चार दिन) है, गायो के खुर से कड़ी हुई जमीन तीखी है, पत्तो का आसन पतला है, वृक्ष के पत्र विरल हैं, काषाय वस्त्र शीतल है, चौवाई वायु शीतल है, तब भी भगवान् ऐसा कहते है—हाँ कुमार सुख से सोया . ।"

"तो, कुमार, तुझे ही पूछता हूँ, जैसा तुझे ठीक लगे, वैसा मुझे उत्तर दे। तो क्या, कुमार, किसी गृहपति या गृहपति-पुत्र का लीपा-पोता, वायु-रहित, द्वारबन्द, खिडकी-बन्द कूटागार (कोठा) हो; वहाँ चार अगुल पोस्तीन का बिछा, पट्टी-बिछा, कालीन-बिछा, उत्तम कदली-मृगचर्म-बिछा, दोनो ओर लाल तकियोवाला, ऊपर वितानवाला पलग हो, तेल-प्रदीप भी जल रहा हो, चार सुन्दर भार्याएँ भी हाजिर हो, तो भी वह सुख से सोयेगा कि नही ?"

"भन्ते, वह सुख से सोयेगा, जो लोक मे सुख से सोते है, उनमे से वह एक होगा ।"

"तो क्या मानते हो, कुमार, यदि उस गृहपति या गृहपति-पुत्र को राग से उत्पन्न होनेवाले कायिक या मानसिक परिदाह (=जलन) उत्पन्न हो, तो उन रागज-परिदाहो से जलते हुए क्या वह दु ख से सोयेगा ?"

"हॉं भन्ते ।"

"कुमार, वे गृहपति या गृहपति-पुत्र जिस रागज-परिदाह से दु ख से सोते है, तथागत का वह नष्ट हो गया है । इसलिए मैं सुख से सोता हूँ ।

परिनिर्वृत (मुक्त) ब्राह्मण सर्वदा सुख से सोता है,
जो कि शीतल-स्वभाव, उपधि-रहित कामो मे लिप्त नही है,
सब आसक्तियो को छिन्नकर हृदय से भय को हटाकर,
मन मे शान्ति प्राप्तकर उपशान्त हो (वह) सुख से सोता है ।"

२ **केसपुत्तिसुत्त [कालामसुत्त] (३.७.५)**—एक बार बुद्ध कोसल मे चारिका करते हुए कालामो के निवास स्थान 'केसपुत्त' नामक निगम मे पहुँचे । कालामो ने इसे सुना । वे बुद्ध के दर्शन के लिए गये और उनका अभिवादन आदि करके उन्होने भगवान् से पूछा—

"भन्ते, कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण 'केसपुत्त' मे आते है । वे अपने मत की प्रशसा करते है, दूसरे के मत की निन्दा करते है, उसे छुडवाते है । भन्ते, दूसरे भी श्रमण-ब्राह्मण यहाँ आते है और वे भी ऐसा ही करते है । तब हमे इस बारे मे सशय अवश्य होता है—कौन आप इन श्रमण-ब्राह्मणो मे सच कहता है और कौन झूठ ?"

बुद्ध ने उत्तर दिया—"कालामो, तुम्हारा सशय ठीक है, संशय-योग्य स्थान मे ही तुम्हे सशय उत्पन्न हुआ है । आओ, कालामो, मत तुम अनु-श्रवण से विश्वास करो, मत परम्परा से विश्वास करो, 'यह ऐसा ही है', इससे भी तुम मत विश्वास करो, कालामो, मान्य शास्त्र की अनुकूलता से भी (पिटक सम्प्रदाय से) तुम मत विश्वास करो, मत तर्क से, मत न्याय-

हेतु से, मत वक्ता के आकार के विचार से, मत अपने चिर-धारित विचार के होने से, मत वक्ता के भव्य रूप होने से, मत 'श्रमण हमारा गुरु है' इस भावना से, कालामो, मत इन सब कारणो से तुम विश्वास करो।

. बल्कि, कालामो, जब तुम अपने आप ही जानो कि ये धर्म अकुशल है, ये धर्म सदोष है, ये धर्म विज्ञ-निन्दित है, ये ग्रहण करने पर अहितकर तथा दुःखोत्पादक होगे, तो उन्हे छोड देना .. ।"

इसके पश्चात् बुद्ध ने उन्हे लोभ, द्वेष तथा मोह के स्वरूप को बताते हुए उन्हे त्यागने की देशना दी।

कितना बुद्धिवादी दृष्टिकोण इस सुत्त द्वारा व्यक्त किया गया है कि किसी वस्तु को बिना उसकी परीक्षा के न माना जाय। बुद्ध इस प्रकार का दृष्टिकोण अपने धर्म के सम्बन्ध मे भी रखते थे। यह सुत्त स्पष्टरूप से विश्वजनीन महत्त्व को व्यक्त करता है। साथ ही इसे समझाकर 'सदाचार का जीवन किस प्रकार के किसी भी आश्वासन की अपेक्षा नही रखता,' इसे बहुत अच्छी प्रकार से व्यक्त किया गया है।

३ **पठमसिक्खापदसुत्त** (३.९.६)—"भिक्षुओ, ढाई सौ शिक्षापद (प्रातिमोक्ष नियम) प्रत्येक पन्द्रहवे दिन बाँचे जाते हैं और इन्ही की शिक्षा अपनी भलाई चाहनेवाले कुलपुत्र लेते है। पर ये सभी इन तीन शिक्षाओ मे समाहित हो जाते हैं। कौन से तीन मे ? अधिशील-शिक्षा मे, अधिचित्त-शिक्षा मे और अधिप्रज्ञा-शिक्षा मे।"

इसके पश्चात् बुद्ध ने इन शिक्षाओ के द्वारा 'सोतापत्ति' आदि फलो की प्राप्ति कैसे होती है', इसका विवेचन किया।

चतुक्कनिपात

इस निपात मे चार सख्या को लेकर चार आर्यसत्य, चार ज्ञान, चार श्रामण्य-फल, चार समाधि, चार योग तथा चार प्रकार के आहार आदि का उल्लेख है। उदाहरणस्वरूप इसके कुछ सुत्त नीचे दिये जा रहे है :—

१. पठमसंवाससुत्त (४.६ ३)—एक बार भगवान् मथुरा और 'वेरञ्जा' के बीच के रास्ते मे जा रहे थे। बहुत से गृहपति तथा गृहपत्नियाँ भी उसी रास्ते से जा रही थी।

भगवान् मार्ग छोडकर एक पेड के नीचे बैठे। उन गृहपतियो आदि ने उन्हे वहाँ बैठे देखा और जाकर अभिवादन करके उनके पास बैठ गये। भगवान् ने उनसे कहा—

"गृहपतियो, ये चार प्रकार के सवास है। कौन से चार ? शव शव के साथ सवास करता है, (२) शव देवी के साथ सवास करता है, (३) देव शव के साथ सवास करता है तथा (४) देव देवी के साथ सवास करता है।

कैसे, गृहपतियो, शव शव के साथ सवास करता है ? यहाँ गृहपतियो, पति हिसक, चोर, दुराचारी, झूठा, नशाबाज, दु शील, पापकर्मी, कजूसी की जिन्दगी से लिप्त चित्तवाला, श्रमण-ब्राह्मणो को दुर्वचन कहनेवाला हो; इस प्रकार से वह गृह मे वास करता हो और उसकी भार्या भी उसी के समान हिसक, चोर, दुराचारिणी... श्रमण-ब्राह्मणो को दुर्वचन कहनेवाली हो, तो ऐसी परिस्थिति मे शव शव के साथ सवास करता है।

गृहपतियो, पति हिंसक, चोर, दुराचारी. . श्रमण-ब्राह्मणो को को दुर्वचन कहनेवाला हो, किन्तु उसकी भार्या अहिसा-रत, चोरी-रहित, सदाचारिणी, सच्ची, नशा-विरत, सुशीला, कल्याण-धर्म-युक्त, मल-मात्सर्य-रहित, श्रमण-ब्राह्मणो को दुर्वचन न कहनेवाली हो, तो ऐसी परिस्थिति मे शव देवी के साथ सवास करता है।

गृहपतियो, यदि पति अहिसक . आदि हो और उसकी भार्या हिंसा-रत . आदि हो, तो ऐसी परिस्थिति मे देव शव के साथ संवास करता है।

गृहपतियो, पति अहिसा-रत, चोरी-रहित, सदाचारी ... आदि हो और उसकी भार्या भी ऐसी ही हो, तो ऐसी परिस्थिति मे देव देवी के साथ संवास करता है।"

२. **मल्लिकासुत्त** (४.२०.७)—राजा प्रसेनजित् की प्रिय रानी 'मल्लिका' देवी बुद्ध मे बड़ी श्रद्धा रखती थी, जिसका राजा भी मजाक उडाता था ।

भगवान् जेतवन मे विहार करते थे । उनके पास मल्लिका देवी आयी तथा अभिवादन आदि करके भगवान् से उन्होंने पूछा—"भन्ते, क्या बात है, जो कोई-कोई स्त्री दुर्वर्ण्य, दुरूप, दर्शन मे बडी दरिद्र, अल्प-सामर्थ्य, अल्प-भोग तथा अल्प-सम्पत्ति वाली होती है तथा क्या कारण है जो कोई-कोई इनके विपरीत गुणवाली होती है ?"

बुद्ध ने उत्तर दिया—"मल्लिका, कोई-कोई स्त्री उपायासबहुल तथा क्रोधी होती है, थोड़ा-सा भी कहने पर उस बात को मन मे बाँध लेती है, कोप करती है, द्वेष करती है, तथा अविश्वास प्रकट करती है; वह श्रमण तथा ब्राह्मणो को अन्न, वस्त्र, पान, माला, गन्ध आदि देनेवाली नही होती और दूसरे के लाभ-सत्कार मान तथा पूजा मे ईर्ष्या करती है और मन को दूषित करती है । यदि वह वहाँ से च्युत होकर पुन. स्त्रीत्व को प्राप्त करती है तो दुर्वर्ण्य, दुरूप, दर्शन मे बडी दरिद्र, अल्प-सामर्थ्य, अल्प-भोग तथा अल्प सम्पत्ति वाली होती है ।

मल्लिका, कोई-कोई स्त्री क्रोधी होती है, पर पर-लाभ-सत्कार आदि में ईर्ष्या नही करती तथा श्रमण एव ब्राह्मणो को अन्नपानादि का दान देने-वाली होती है । यदि वह वहाँ से च्युत होकर स्त्रीत्व को प्राप्त करती है, तो दुर्वर्ण्य तथा दुरूपादि होती हुई, पर महाधनवाली आदि होती है ।

मल्लिका, कोई-स्त्री क्रोध-रहित होती है तथा उपायासरहित होती है; बहुत कहने पर भी किसी बात को मन मे नही बाँधती; न कोप करती है, न द्वेष करती है, न अविश्वास प्रकट करती है; वह श्रमण तथा ब्राह्मणो को अन्नपानादि का दान देनेवाली नहीं होती और दूसरे के लाभ-सत्कार, मान तथा पूजा आदि मे ईर्ष्या करती है तथा मन को दूषित करती है, एव ईर्ष्या को मन मे बाँधती है । यदि वह वहाँ से च्युत होकर स्त्रीत्व को पुनः

प्राप्त करती है तो जहाँ जन्म लेती है दर्शनीय, प्रासादिक एव परम-वर्ण-पौष्कर्य से युक्त होती है, पर वह दरिद्र, अल्प ऐश्वर्य-युक्त, अल्प भोग तथा अल्प धन वाली होती है ।

मल्लिका, कोई स्त्री क्रोध-रहित होती है तथा उपायास-बहुल नही होती; बहुत कहने पर भी किसी बात को मन मे नही बाँधती, न कोप करती है, न द्वेष करती है, न अविश्वास करती है, वह श्रमण तथा ब्राह्मणो को अन्न-पानादि का दान देनेवाली होती है तथा दूसरे के लाभ-सत्कार आदि मे ईर्ष्या करने वाली नही होती, मन को दूषित नही करती है एव ईर्ष्या को मन मे नही बाँधती है । यदि वह वहाँ से च्युत होकर स्त्रीत्व को पुन. प्राप्त करती है, तो जहाँ जन्म लेती है दर्शनीय, प्रासादिक एव परम-वर्ण-पौष्कर्य से युक्त होती है, और वह धनी, ऐश्वर्य-युक्त, महाभोग-युक्त तथा सम्पत्तिशालिनी होती है ।

मल्लिका, इन्ही कारणो से स्त्रियाँ उपर्युक्त अवस्थाओ को प्राप्त होती है" ।

बुद्ध के ऐसा कहने पर मल्लिका ने अपने वर्तमान जीवन से उन्हे अवगत कराया—"इस जन्म मे मै दुर्वर्ण्य हूँ और इसका कारण भी उपर्युक्त ही रहा होगा, और जो मैने श्रमण तथा ब्राह्मणो को अन्नपानादि का दान दिया होगा, उन्ही कारणो से मै सम्पत्तिशालिनी, धनी तथा महा ऐश्वर्य वाली हूँ । जो राजा के यहाँ क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा वैश्य कन्याएँ है, सब पर मेरा आधिपत्य है । अब से, भन्ते, मै क्रोध नही करूँगी, न ईर्ष्या आदि करूँगी, बहुत कुछ कहने पर भी मन मे नही बाँधूँगी तथा श्रमण एव ब्राह्मणो को अन्न-पानादि का दान दूँगी, पर-लाभ-सत्कार तथा वन्दना आदि मे ईर्ष्या नही करूँगी । आज से भगवान् मुझे अञ्जलिबद्ध उपासिका समझे" ।

पञ्चकनिपात

इसमे पांच की सख्या लेकर विवेचन प्रस्तुत है तथा पाँच अङ्गोंवाली समाधि, पाँच उपादान स्कन्ध, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच 'निस्सरणीय' धातु, पाँच धर्मस्कन्ध, पाँच विमुक्ति और पाँच आयतनो आदि का व्याख्यान है ।

१. चुन्दीसुत्त (५२४)––बुद्ध राजगृह के वेणुवन के 'कलन्दक-निवाप' मे विहार करते थे। उस समय 'चुन्दी' राजकुमारी पाँच सौ रथो मे पाँच सौ कुमारियो के साथ भगवान् के पास गयी और उन्हे अभिवादनादि करके बोली––

"भन्ते, हमारे भ्राता 'चुन्द' राजकुमार यह कहते है कि जो स्त्री अथवा पुरुष बुद्ध, धर्म तथा सघ की शरण गया है, हिंसा, चोरी, काम मे मिथ्याचार, झूठ बोलना, सुरा-मेरय आदि के पान आदि से विरत है, वह इस शरीर को छोडने के बाद सुगति को ही प्राप्त होता है, दुर्गति को नही।"

बुद्ध ने कहा––"चुन्दी, जितने प्राणी बिना पैरवाले, दो पैरवाले, चार पैरवाले, बहुत-से पैरवाले, साकार, निराकार, सज्ञी, असज्ञी आदि है, उनमे तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध अग्र कहे जाते है, जितने 'सखत' अथवा 'असखत' धर्म है उनमे विराग अग्र है, जितने सघ अथवा गण है उनमे तथागत का श्रावक-सघ सब से अग्र है, जितने शील है उनमे आर्यो (श्रेष्ठो) द्वारा पालित शील ही श्रेष्ठ है। जो इन अग्रो (श्रेष्ठो) मे प्रसन्न रहता है, उसका अग्र विपाक होता है।"

छक्कनिपात

इस निपात मे बुद्ध ने भिक्षु के उन छह गुणो का उल्लेख किया है जिससे वह पूज्य तथा आदर प्राप्त करने योग्य हो जाता है। यहाँ पर छह अनुस्मृतियो, छह आध्यात्मिक आयतनो तथा छह अभिज्ञेयो आदि की चर्चा है। इसके उल्लेखनीय सुत्त 'पठमआहुनेय्यसुत्त', 'महानामसुत्त', 'महाकच्चानसुत्त', 'निब्बानसुत्त', 'भवसुत्त' तथा 'तण्हासुत्त' आदि हैं।

सत्तकनिपात

यहाँ पर सात बल, सात सम्बोध्यङ्ग, सात अनुशय, सात सद्धर्म, सात सज्ञाएँ तथा सात सत्पुरुष धर्म आदि विवेचित है। उदाहरणस्वरूप––

"भिक्षुओ, ये सात बल है। कौन-से सात ? श्रद्धा-बल, ह्री-बल, 'ओत्तप्प' बल, स्मृति-बल, समाधि-बल तथा प्रज्ञा-बल" आदि।

अट्ठकनिपात

इसमे आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग, आठ आरब्ध वस्तुओ, आठ अभिभायतनो तथा आठ विमोक्षो आदि का वर्णन है । इसमे 'पजापतिपब्बज्जासुत्त' मे महाप्रजापति गौतमी की प्रव्रज्या का बिलकुल उन्ही शब्दो मे वर्णन है, जैसा कि विनयपिटक के 'चुल्लवग्ग' मे ।

नवकनिपात

नव प्रकार के व्यक्तियो, नव सज्ञाओ, नव तृष्णा मूलक तथा नव सत्वावासो आदि का उल्लेख यहाँ पर है । एक स्थान पर यह भी कहा गया है कि 'राग', 'दोस', 'मोह', 'कोध', 'उपनाह', 'मक्ख' तथा 'पलास' का परित्याग करके व्यक्ति अर्हत्त्व को प्राप्त करता है ।

दसकनिपात

इस निपात मे तथागत के दस बलो, दस आर्यवासो, दस सयोजनो आदि का उल्लेख है । दस सज्ञाओ का भी व्याख्यान यही पर विद्यमान है और दस पारिशुद्धियो की भी गणना यही पर की गयी है । इन्ही के प्रसङ्ग मे साधु तथा असाधु दोनो का विवेचन भी हुआ है । इसके उल्लेखनीय सुत्तो मे 'पठममहापञ्हासुत्त' तथा 'सीहनादसुत्त' आदि मुख्य है ।

एकादसकनिपात

यहाँ पर निर्वाण प्राप्ति के साधनो आदि का उल्लेख है और इन सबमे ग्यारह की सख्या को लेकर यह सब कहा गया है । इसके उल्लेखनीय सुत्तो मे 'पठमउपनिसासुत्त', 'सञ्ञासुत्त', 'मनसिकारसुत्त', 'पठममहानामसुत्त' तथा 'सुभूतिसुत्त' आदि मुख्य है ।

इस प्रकार से हम देखते है कि सख्या से प्रश्नोत्तर की प्रणाली, जिसका दिग्दर्शन 'खुद्दकपाठ' के 'कुमारपञ्हा' मे विद्यमान है तथा जो 'दीघनिकाय' के 'दसुत्तर' तथा 'सङ्गीति' सुत्तो मे भी है, का आश्रय ग्रहण करके इस निकाय का सग्रह हुआ है और तथागत द्वारा व्यक्त धर्म के आन्तरिक रहस्यो के स्वरूप को समझाने मे अत्यन्त सहायक होने से यह महत्त्वपूर्ण है । बुद्धकालीन

सोलह महाजनपदो का भी इस निकाय मे विशेष वर्णन प्राप्त है, जिनका नाम उन-उन प्रदेशो के निवासियो के आधार पर था। भौगोलिक वर्णनो के साथ ग्राम-निगमो आदि का वर्णन होने से यह बुद्धकालीन वातावरण को हृदयङ्गम करने मे अत्यन्त सहायक है।

—०—

पाँचवाँ अध्याय

५. खुद्दकनिकाय

चार निकायो के अतिरिक्त बुद्धवचन का जिसमे सग्रह हुआ, वह खुद्दक-निकाय है। धम्मपद, सुत्तनिपात-जैसे सदर्भो का सग्रह होने से सारे खुद्दक-निकाय को बहुत पीछे की कृति नही माना जा सकता। पर इसमे शक नही कि कुछ पीछे की चीजे इसमे सगृहीत है। इस निकाय मे निम्न ग्रन्थ है—

(१) खुद्दकपाठ	(९) थेरीगाथा
(२) धम्मपद	(१०) जातक
(३) उदान	(११) निद्देस
(४) इतिवुत्तक	(१२) पटिसम्भिदामग्ग
(५) सुत्तनिपात	(१३) अपदान (थेरापदान तथा थेरीपदान)
(६) विमानवत्थु	(१४) बुद्धवस
(७) पेतवत्थु	(१५) चरियापिटक
(८) थेरगाथा	

सिहल परम्परा इन पन्द्रह ग्रन्थ को खुद्दकनिकाय का अंग मानती है। 'निद्देस' को 'चूलनिद्देस', और 'महानिद्देस' दो मानने पर यह सख्या सोलह हो जायगी। 'अभिधम्म' जब तीसरा पिटक नही माना जाता था, तो उसे भी इसी निकाय के अन्तर्गत मानते थे[१]। बर्मा मे उपर्युक्त पन्द्रह ग्रन्थ के अतिरिक्त चार और ग्रन्थ खुद्दकनिकाय मे माने जाते है, जो ये है—(१) मिलिन्दपञ्ह, (२) सुत्तसङ्गह, (३) पेटकोपदेस और (४) नेत्तिप्पकरण। इनमे 'मिलिन्दपञ्ह' बुद्धवचन कैसे हो सकता है, जो यवन राजा मिनान्दर के गुरु नागसेन की कृति है। स्यामी परम्परा (१) विमान-वत्थु, (२) पेतवत्थु, (३) थेरगाथा, (४) थेरीगाथा, (५) जातक,

१. द्र० — अट्ठसालिनी, निदानकथा।

(६) अपदान, (७) बुद्धवस और (८) चरियापिटक आदि ग्रन्थ को भी खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत नही स्वीकार करती। इन ग्रन्थो में वस्तुत. धम्मपद, मुत्तनिपात, उदान, इतिवुत्तक ही प्राचीन मालूम होते है। विस्तार मे खुद्दकनिकाय बाकी चारो निकायो से बड़ा है।

इस निकाय के ग्रन्थो का सामान्य परिचय नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है––

१. खुद्दकपाठ

यह छोटा-सा ग्रन्थ भिक्षुओ के लिए प्रथम पुस्तक है, जिसमे त्रिशरण दश शिक्षापद, कुमारप्रश्न, 'मङ्गलमुत्त, 'रतनसुत्त' आदि पाठ है।

कुमार-प्रश्न बच्चो के सवाल-जवाब का सग्रह है––

"एक वस्तु क्या है ? सारे प्राणी आहार पर स्थित है।

दो ? दो है काम और रूप।

तीन ? तीन वेदनाएँ, (दु ख, मुख, न-दु ख, न-सुख)।

पाँच ? पाँच स्कन्ध।

छह ? शरीर के भीतर के छह आयतन।

सात ? सात बोध्यङ्ग।

आठ ? आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग।"

इसके 'मङ्गलमुत्त', 'रतनसुत्त', 'मेत्तासुत्त'–जैसे सूत्रो मे उच्च आशयो की शिक्षा है। 'मेत्तासुत्त' सदा सिहल के विहारो मे स्वर के साथ पढा जाता है––

"छोटी भी कोई ऐसी चीज नही करनी चाहिए, जिसकी विज्ञ निन्दा करे।
सारे प्राणी मुखी, क्षेमवान् और सुखात्मा होवे।
माता जैसे अपने अकेले पुत्र की प्राणो के समान रक्षा करती है,
वैसे ही सारे प्राणी अतिविशाल मन रखे।
सारे लोक मे, ऊपर-नीचे, तिरछे, अपरिमाण, अतिविशाल मन की भावना करे।"

२. धम्मपद

४२३ गाथाओं के इस छोटे-से ग्रन्थ मे बुद्ध के उपदेशो का सार आ गया है। हिन्दी मे इसके अनेक अनुवाद है। मैने भी सस्कृत छाया के साथ एक अनुवाद किया था, जो पहले १६३३ मे प्रकाशित हुआ था। इसमे २६ वर्ग है, जिनके नाम से भी विषय का कुछ-कुछ पता लग सकता है।

१ यमकवग्ग	१४. बुद्धवग्ग
२. अप्पमादवग्ग	१५ सुखवग्ग
३. चित्तवग्ग	१६. पियवग्ग
४ पुप्फवग्ग	१७. कोधवग्ग
५. बालवग्ग	१८ मलवग्ग
६ पण्डितवग्ग	१६ धम्मट्ठवग्ग
७ अरहन्तवग्ग	२० मग्गवग्ग
८ सहस्सवग्ग	२१ पकिण्णकवग्ग
६ पापवग्ग	२२ निरयवग्ग
१० दण्डवग्ग	२३ नागवग्ग
११. जरावग्ग	२४ तण्हावग्ग
१२ अत्तवग्ग	२५ भिक्खुवग्ग
१३ लोकवग्ग	२६ ब्राह्मणवग्ग

वैसे तो सारा ही धम्मपद बुद्ध का सुभाषित-रत्न है। यहाँ उसकी कुछ गाथाएँ दी जाती है—

१ पहली ही गाथा है—"सभी धर्मो मे मन अग्रगामी है, मन उनका प्रधान है, वे मनोमय है। यदि कोई दुष्ट मन से बोलता है, या काम करता है, तो दु ख उसका वैसे ही पीछा करता है, जैसे वहन करनेवाले बैल के पैर का चक्का।

२ ० यदि प्रसन्न मन से बोलता या कार्य करता है, तो सुख उसका पीछा कभी भी साथ न छोडनेवाली छाया की भाँति करता है।

५. कभी भी वैर से वैर नही शान्त होता––अवैर से वैर शान्त होता है, यह सनातन धर्म है।

१३. जैसे अच्छे प्रकार से छाये घर मे वृष्टि नही प्रवेश कर सकती, वैसे ही सुभाषित चित्त को राग नही बेध सकता।

१५. यहाँ शोक करता है, मरने के बाद शोक करता है, पापकारी दोनो (लोको) मे शोक करता है। वह अपने मलिन कर्मो को देखकर शोक करता है, पीडित होता है।

१६ यहाँ मोद करता है, मर कर मोद करता है, पुण्य करनेवाला दोनो ही जगह प्रमुदित होता है, वह अपने कर्मो की शुद्धि को देखकर मुदित तथा प्रमुदित होता है।

१९. चाहे कितनी ही सहिताओ (वेद) को उचारे, किन्तु प्रमादी बन जो उसके अनुसार (आचरण) करनेवाला नही होता, वह दूसरे की गायो को गिननेवाले की भाँति श्रमणपन का भागी नही होता।

३२. जो भिक्षु प्रमाद से विरत या प्रमाद से भय खानेवाला होता है, उसका पतन होना सभव नही; वह निर्वाण के समीप है।

४१. अहो! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतना-रहित हो निरर्थक काठ की भाँति पृथ्वी पर पड रहेगा।

४९ जैसे भ्रमर फूल के वर्ण और गन्ध को बिना हानि पहुँचाये, रस को लेकर चल देता है, वैसे ही गाँव मे मुनि विचरण करे।

५४. फूल की सुगन्ध हवा से उलटी ओर नही जाती, न चन्दन, तगर या चमेली की ही, किन्तु सज्जनो की सुगन्ध हवा से उलटी ओर भी जाती है। सत्पुरुष सभी दिशाओ मे सुगन्ध बहाते हैं।

८१ जैसे ठोस पहाड़ हवा से कम्पायमान नही होता, ऐसे ही पडित निन्दा और प्रशसा से विचलित नही होते।

९६. उपशान्त और यथार्थ ज्ञान द्वारा मुक्त उस अर्हत् पुरुष का मन शान्त होता है, वाणी और कर्म शान्त होते हैं।

१२७. न आकाश मे, न समुद्र के मध्य मे, न पर्वतो के विवर मे प्रवेश कर—ससार मे कोई स्थान नही है, जहाँ रहकर पापकर्मो के फल से प्राणी बच सके।

१४९ शरत्काल की अपथ्य लौकी की भाँति (बाहर फेक दी गयी), या कबूतरो की सी (सफेद) हो गयी हड्डियो को देखकर क्या (इस शरीर मे) प्रेम होगा।

१५० हड्डियो का (एक) नगर बनाया गया है, जो मास और रक्त से लेपा गया है, जिसमे जरा और मृत्यु, अभिमान और डाह छिपे हुए है।

१६५. अपना किया पाप अपने को ही मलिन किया करता है, अपने पाप न करे तो अपने ही शुद्ध रहता है। शुद्धि-अशुद्धि प्रत्यात्म है। दूसरा (आदमी) दूसरे को शुद्ध नही कर सकता।

१७२. जो पहले भूल करके पीछे भूल नही करता, वह मेघ से उन्मुक्त चन्द्रमा की भाँति इस लोक को प्रकाशित करता है।

२०४. आरोग्य परम लाभ है, सन्तोष परम धन है, विश्वास सबसे बडा बन्धु है और निर्वाण परम सुख है।

२१३ प्रेम से शोक होता है, प्रेम से भय उत्पन्न होता है, प्रेम से जो मुक्त है उसको शोक नही, फिर भय कहाँ से होगा?

२१९ चिर-प्रवासी स्वजन पुरुष का स्वस्ति के साथ दूर से आया देखकर कुटुम्ब के लोग, मित्र, और सुहृद् अभिनन्दन करते है।

२९४ माता (=तृष्णा), पिता (=अहकार), दो क्षत्रिय राजाओ [=(१) आत्मा आदि की नित्यता का सिद्धान्त, (२) मरणान्त जीवन मानने का सिद्धान्त] अनुचर (=राग) सहित राष्ट्र (=रूप, विज्ञान आदि ससार के उपादान) को मारकर ब्राह्मण (=ज्ञानी) निष्पाप होता है।

३८४ जब ब्राह्मण (=ज्ञानी) दो धर्मो (चित्तसयम और भावना) मे पारङ्गत हो जाता है, तब उस जानकार के सभी सयोजन (बन्धन) समाप्त हो जाते है।

३९३. न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से कोई ब्राह्मण होता है; जिसमे सत्य और धर्म है, वही शुचि है और वही ब्राह्मण है।

४०७. आरे के ऊपर (रखे हुए) सरसो की भाँति जिसके राग, द्वेष, मान, डाह फेंक दिये गये है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४२२. जो (श्रेष्ठ) प्रवर, वीर, महर्षि, विजेता, अकोप्य, स्नातक, बुद्ध है, उसे मै ब्राह्मण कहता हूँ।

धम्मपद का ससार की सारी सभ्य भाषाओ मे भाषान्तर है।

३. उदान

आठ वर्गो और ८० सूत्रो का यह लघु ग्रन्थ भी बडा सारगर्भित है। इसके पहले चार सूत्रो मे उरवेला मे बोधि के समय बोधिवृक्ष के पास ध्यान-भावना मे भगवान् के दिन कैसे व्यतीत हुए इसका उल्लेख है। पहले बोधिसुत्त मे है—

१ **पठमबोधिसुत्त** (११)—भगवान् उस वेला मे 'नेरञ्जरा' (निरजना) नदी के तीर बोधिवृक्ष के नीचे बोधि प्राप्त करने के बाद ही विहरते थे। उस समय भगवान् मुक्तिसुख का अनुभव करते, एक आसन से सप्ताह भर बैठे रहे। सप्ताह के बाद समाधि से उठकर रात्रि के प्रथम पाद मे प्रतीत्य-समुत्पाद को अनुलोम-प्रतिलोम विधि से इन्होंने अच्छी तरह मनन किया—"ऐसा होने पर यह होता है, जैसा कि अविद्या के प्रत्यय से सस्कार, सस्कार से विज्ञान, विज्ञान से नामरूप, नामरूप से श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन, आदि षडायतन, षडायतन से स्पर्श (विषय-सयोग), स्पर्श से वेदना (अनुभव), वेदना से तृष्णा, तृष्णा से उपादान, (विषय-ग्रहण) उपादान से भव (ससार), भव से जाति (जन्म), जाति से जरामरण-शोक-परिदेवन (क्रन्दन) दुःख-दौर्मनस्य-उपायास (हैरानी) आदि होते है। इस प्रकार इस सम्पूर्ण दुःख-राशि की उत्पत्ति होती है।

२. **सुन्दरीसुत्त** (४.८)—गौतम बुद्ध का जो सत्कार, सम्मान उस समय हो रहा था, उससे दूसरे मत के साधुओ को ईर्ष्या होने लगी। भगवान्

उस समय सत्कृत, गुरुकृत तथा मानित-पूजित थे। वे चीवर, पिण्डपात (भोजन) शयनासन, रोगिपथ्य, भैषज्य आदि परिष्कारों के पानेवाले थे। दूसरे मत के साधु उसे पाने में अशक्त थे। उसे सहन न कर परिव्राजक अत्यन्त सुन्दरी 'सुन्दरी' नामक परिव्राजिका से बोले--"भगिनी, हम बन्धुओं की सहायता करने का काम कर सकती हो ?"

"क्या काम ? मैं क्या कर सकती हूँ ? बन्धुओ की भलाई के लिए मैं अपना प्राण भी दे सकती हूँ।"

"तो बहन, शीघ्र ही जेतवन चलो।"

"अच्छा, आर्यो" कहकर सुन्दरी ने जेतवन के लिए प्रस्थान किया।

. . . . .

उन साधुओं ने रास्ते में योजना बनाकर उसे जान से मारकर जेतवन की परिखा के कुएँ में गाडकर राजा प्रसेनजित् के पास जाकर 'सुन्दरी' के गायब होने की बात कही। और जेतवन के लोगों पर सन्देह प्रकट किया। राजा की आज्ञा से उसे ढूँढकर, लाकर, श्रावस्ती के चौराहे पर कहने लगे--"देखो आर्यो, शाक्यपुत्रीय श्रमणों का काम ! कैसे आदमी पुरुष-कृत्य करने के बाद स्त्री को मार देगा ?"

उस समय लोग भिक्षुओं को देखकर धिक्कारते थे। उन्होंने इसे भगवान् से कहा। भगवान् ने कहा--"भिक्षुओ, इस प्रकार का शब्द देर तक नही रहेगा, केवल सप्ताह भर रहकर उसके बाद बन्द हो जायेगा। जब लोग धिक्कारे, तो तुम उन्हे इस गाथा से उत्तर दो--

'मिथ्यावादी नरक में जाता है, और (वह भी) जो कि करके कहते है कि हमने नही किया। मृत्यु के बाद परलोक में जाकर दोनो नीच कर्म करनेवालो की गति समान होती है।'"

वह शब्द देर तक नही रहा। केवल सप्ताह भर ही रहा, फिर बन्द हो गया।

३. सोणसुत्त (५.६)--बुद्ध के चतुर्थ प्रधान शिष्य महाकात्यायन 'अवन्ती' (मालव) देश के 'कुररघर' नामक पर्वत पर विहरते थे। 'सोण

कुटिकण्ण' नामक एक धनी सेठ का पुत्र उनकी सेवा करता था। उसके मन मे आया –"इस धर्म को घर मे रहते पूरा नही किया जा सकता"। तीन बार प्रार्थना करने पर महाकात्यायन ने उसे प्रवज्या-उपसम्पदा दी। कुछ समय बाद 'सोण' ने सोचा—"मैने भगवान् को सुना भर है, देखा नही है" और उन्हे देखने की इच्छा अपने उपाध्याय से प्रकट की। महाकात्यायन ने कहा—"जाओ दर्शन कर भगवान् के चरणो की वन्दना करना और कुशल-क्षेम पूछकर कहना—'भन्ते, मेरे उपाध्याय महाकात्यायन भगवान् के चरणो को शिर से प्रणाम करते है।'"

'सोण' श्रावस्ती पहुँचा और भगवान् के दर्शन कर उपाध्याय की ओर से उनका अभिवादन किया और स्वास्थ्य के विषय में पूछा। भगवान् ने भी 'सोण' से रास्ते के कष्ट आदि के बारे मे पूछा। उसने कहा—"मै ठीक से आया, रास्ते मै भोजन आदि का कष्ट नही हुआ"।

भगवान् ने आनन्द से कहा—"इस भिक्षु के आसनादि का प्रबन्ध करो।" आनन्द ने सोचा—"जिसके लिए भगवान् ऐसा कहते है कि इसके ठहरने का प्रबन्ध करो, उसके बारे मे वे ये चाहते है कि उसे उन्ही के विहार मे ठहराया जाय।" अत उन्होने वैसा ही प्रबन्ध किया।

अत्यन्त प्रात काल उठकर भगवान् ने पूछा—"भिक्षु, तूने धर्म को कैसे समझा है?" तब 'सोण' ने सारे 'अट्ठकवग्ग' (सुत्तनिपात) को स्वर के साथ सुना दिया। भगवान् ने शाबाशी देते हुए कहा—"साधु, साधु भिक्षु, तुम्हारी आयु क्या है।

"एक वर्ष (भिक्षु) हुए हुआ।"

"भिक्षु, तुमने इतनी देर क्यो की?"

"भन्ते, बहुत देर के बाद मै सांसारिक कामगुणो के दोष को समझ सका। गृहस्थ-जीवन झंझटो से भरा है, कामकाज से छुट्टी नही मिलती; यह तरह-तरह की रुकावटो से भरा पड़ा है।"

इसे जानकर उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

"संसार के दोषो को देख और परम निर्वाणपद को जान,
आर्य जन पाप मे नही रमते, शुद्ध जन पाप मे नही रमते ।"

विनयपिटक द्वारा ज्ञात होता है, कि 'सोण' को भिक्षु बनाने के लिए दस भिक्षुओ का गण देर से मिला । इसलिए महाकात्यायन ने मध्यदेश के बाहर चार भिक्षुओं के सघ को भिक्षु बनाने का अधिकार माँगा था और भगवान् ने उसे स्वीकार किया था ।

४. इतिवुत्तक

इस ग्रन्थ के हरेक सुत्त मे 'इतिवुत्त भगवता' (ऐसा भगवान् ने कहा) यह पद बारबार आता है । अतएव इसका नाम ही 'इतिवुत्तक' पड गया । इसमे चार निपात तथा एक सौ बारह सुत्त है । नीचे इसके कुछ मुख्य सुत्तो का परिचय दिया जा रहा है--

१. **लोभसुत्त (१.१)** – यह पहला सुत्त है । इसका वर्णन इस प्रकार से है--भगवान् ने यह कहा, अर्हत् ने यह कहा, यह मैंने सुना – "भिक्षुओ, एक बात को छोड दो और तब मैं तुम्हारे 'अनागामी' होने की जिम्मेदारी लेता हूँ । कौन है एक बात ? भिक्षुओ, वह लोभ है ।"

भगवान् ने ऐसा कहा । इसलिए यह कहा जाता है--
"जिस लोभ से लुब्ध होकर प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते है,
उस लोभ को विपश्यना करनेवाले सम्यक् रूप से जानकर छोड देते है;
और उसे छोड कर फिर इस लोक मे कभी नही आते ।"
इस अर्थ को भी भगवान् ने कहा, ऐसा मैंने सुना है ।

२. **पुत्तसुत्त (३ २५)**--भगवान् ने यह कहा, अर्हत् ने यह कहा, ऐसा मैंने सुना--

"भिक्षुओ, इस लोक मे तीन प्रकार के पुत्र होते है--अतिजात, अनु-जात और अवजात ।

अतिजात पुत्र कौन है ? जिस पुत्र के माता-पिता बुद्ध, धर्म तथा संघ के शरणागत नहीं होते, हिंसा, चोरी, व्यभिचार तथा मद्यपानादि

से विरत नही होते, दुःशील तथा पाप धर्मवाले होते है, पर उनका पुत्र उनके विपरीत स्वभाववाला होता है, वह पुत्र अतिजात होता है ।

अनुजात पुत्र कौन है ? माता-पिता बुद्ध, धर्म तथा सघ के शरणागत होते है, हिंसा, चोरी, व्यभिचार तथा मद्यपानादि से विरत होते है, सुशील तथा कल्याण धर्म वाले होते है और उनका पुत्र भी वैसा ही होता है । इस पुत्र की अनुजात सज्ञा होती है ।

अवजात कौन है ? माता-पिता मे तो उपर्युक्त गुण हो, पर उनका पुत्र दु:शील तथा पापकर्मवाला हो तो वह अवजात कहा जाता है ।"

५ सुत्तनिपात

बुद्धवचनो मे काल की दृष्टि से सुत्तनिपात का अत्यधिक महत्त्व है । बुद्ध के समय मे ही इसके 'अट्ठकवग्ग' तथा 'पारायणवग्ग' प्रसिद्ध हो चुके थे और ऊपर 'उदान' के वर्णन मे कहा जा चुका है कि 'सोण कुटिकण्ण' ने सम्पूर्ण 'अट्ठकवग्ग' का पाठ भगवान् बुद्ध के समक्ष किया था। इन सबसे इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है, साथ ही अशोक ने भाब्रू के शिलालेख मे जिन बुद्ध सुत्तो का हवाला दिया है, उसमे से तीन–'मुनिगाथा', उपतिष्यप्रश्न तथा 'मुनिसुत्त' इसी ग्रन्थ मे पाये जाते हैं । यह भी इसके विशेष महत्त्व का प्रतिपादित करता है ।

इस ग्रन्थ की भाषा पर छान्दस (वैदिक) भाषा का प्रभाव है और और भाषा की दृष्टि से भी यह अति प्राचीन सिद्ध होता है ।

सुत्तनिपात पाँच 'वग्गो' और अनेक 'सुत्तो' मे विभक्त है––

(१) उरगवग्ग

१ उरगसुत्त	७. वसल०
२. धनिय०	८ मेत्त०
३. खग्गविसाण०	९ हेमवत०
४. कसिभारद्वाज०	१०. आळवक०

५ वुन्द०	११. विजय०
६ पराभव	१२. मुनि०

(२) चूलवग्ग

१ रतन०	८ नावा०
२ आमगन्ध०	९ किसील०
३. हिरि०	१० उट्ठान०
४ मङ्गल०	११. राहुल०
५ सूचिलोम०	१२ वङ्गीस०
६ धम्मचरिय०	१३ सम्मापरिब्बाजनिय०
७. ब्राह्मणधम्मिक०	१४ धम्मिक०

(३) महावग्ग

१ पब्बज्जा०	७ सेल०
२ पधान०	८ सल्ल०
३ सुभासित०	९ वासेट्ठ०
४ सुन्दरिकभारद्वाज०	१० कोकालिक०
५ माघ०	११ नालक०
६ सभिय०	१२ द्वयतानुपस्सना०

(४) अट्ठकवग्ग

१ काम०	९ मागन्दिय०
२ गुहट्ठक०	१०. पुराभेद०
३ दुट्ठट्ठक०	११ कलहविवाद०
४. सुद्धट्ठक०	१२. चूलवियूह०
७ परमट्ठक०	१३ महावियूह०
६ जरा०	१४ तुवटक०
९. तिस्समेत्तेय्य०	१५. अत्तदण्ड०
८. पसूर०	१६. सारिपुत्त०

(५) पारायणवग्ग

१. वत्थुगाथा	१० तोदेय्यमाणव०
२. अजितमाणवपुच्छा०	११ कप्पमाणव०
३ तिस्समेत्तेय्यमाणव०	१२. जतुकण्णिमाणव०
४ पुण्णकमाणव०	१३ भद्रावुधमाणव०
५ मेत्तगूमाणव०	१४ उदयमाणव०
६. धोतकमाणव०	१५. पोसालमाणव०
७ उपसीवमाणव०	१६ मोघराजमाणव०
८ नन्दमाणव०	१७ पिङ्गियमाणव०
९ हेमकमाणव०	१८ पारायनत्थुतिगाथा
	१९. परायनानुगीतिगाथा

इसका सक्षिप्त परिचय नीचे प्रस्तुत किया जाता है––

(१) **धनियसुत्त**––इस सुत्त मे सुन्दर काव्य की झलक मिलती है। यहाँ गडक के किनारे बिहार के छपरा या मुजफ्फरपुर जिले मे अपनी गौओं को चराते धनिय गोप तथा बुद्ध का सवाद वर्णित है। अपने उपकरणो से तथा सासारिक सुखो से सन्तुष्ट होकर धनिय गोप प्रीति के शब्दों को कह रहा है और वही पर खुले आकाश में निवास करते बुद्ध भी निर्वाण की प्रीति से युक्त हो उदान वाक्य कह रहे हैं––

धनिय––भात मेरा पक चुका, दूध दुह लिया, 'मही' (गडक) नदी के तीर पर स्वजनो के साथ वास करता हूँ, कुटी छा ली है, आग सुलगा ली है। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो।

बुद्ध––मैं क्रोध और राग से रहित हूँ, एक रात के लिए 'मही' नदी के तीर पर ठहरा हूँ, मेरी कुटी खुली है (आकाश के नीचे रहता हूँ) और (अन्दर की) आग बुझ चुकी है। अब०।

धनिय––मक्खी और मच्छर यहाँ पर नहीं हैं, कछार मे उगी घास को गौवे चरती है, पानी भी पड़े तो उसे वे सह ले। अब०।

बुद्ध--मैंने एक अच्छी तरणी बना ली है। भवसागर को तैर कर पार चला आया। अब तरणी की आवश्यकता नहीं। अब०।

धनिय--मेरी ग्वालिन आज्ञाकारिणी और अलोला है, वह चिरकाल की प्रियमगिनी है। उसके विषय मे कोई पाप भी नही सुनता। अब०।

बुद्ध--मेरा मन वशीभूत और विमुक्त है, चिरकाल से परिभावित और दान्त है। मुझ मे कोई पाप नही। अब०।

धनिय--मैं अपनी मजदूरी आप ही करता हूँ। मेरी सन्तान अनुकूल और नीरोग है। उनके विषय मे कोई पाप नही सुनता। अब०।

बुद्ध--मै किसी का चाकर नहीं, स्वच्छन्द सारे संसार मे विचरण करता हूं। मुझे चाकरी से मतलब नहीं। अब०।

धनिय--मेरे तरुण बैल है और बछडे है, गाभिन गाये है और कलोर भी है ओर सबके बीच वृषभराज भी है। अब०।

बुद्ध--मेरे न तरुण बैल है, न बछडे, न गाभिन गाये है न कलोर गाये, और सबके बीच वृषभराज भी नही। अब०।

धनिय--खूँटे मजबूत गडे है, मूँज के पगहे नये और अच्छी तरह बटे है, बैल भी उन्हे नही तोड सकते। अब०।

बुद्ध--वृषभ-जैसे बन्धनो को तोड, हाथी-जैसे पूतिलता को छिन्न-छिन्न-भिन्न कर मै फिर जन्म ग्रहण नही करूँगा। अब०।

उसी समय ऊँची-नीची भूमि को भरती हुई जोरो की बारिस हुई। बादलो के गर्जन को सुनकर धनिय ने कहा--"हमारा बडा लाभ हुआ कि हम भगवान् के दर्शन को पाये। हे चक्षुमान्, हम आपकी शरण जाते है, महामुनि, आप हमारे गुरु है।"

(२) **पारायणवग्ग**--पजाब मे आर्यों का प्रसार ई० पू० बारहवी सदी मे हुआ और इसके छह सौ वर्षों के पश्चात् अर्थात् ६०० ई० पू० में आर्य द्रविड देश मे बहनेवाली गोदावरी नदी के किनारे तक फैल गये थे। अशोक के समय ई० पू० तीसरी सदी के पहले ही वे चोल देश

मे पहुँचे थे। कोसल देश के निवासी 'बावरी' ब्राह्मण गोदावरी के किनारे बस ही नहो गये थे, बल्कि वह वहाँ के प्रतिष्ठित आचार्य थे। उनके पास अनेक माणवक (छात्र) पढते थे। उन्होने सुना कि उत्तर मे शाक्यमुनि गौतम पैदा हुए है, जो बुद्ध माने जाते है। वृद्धपन के कारण स्वय न जा, उसने अपने सोलह शिष्यो को कोसल देश भेजा, पर बुद्ध वहाँ नही थे। वे मगध मे 'नालन्दा' के पास बुद्ध का दर्शन और सभाषण करने मे सफल हुए। प्रत्येक माणवक ने प्रश्न पूछे, जिसका उत्तर बुद्ध ने दिया। इस 'वग्ग' मे इसी का व्याख्यान है, जो सक्षिप्त रूप मे नीचे उपस्थित किया जा रहा है––

(क) अजित माणवक ने पूछा––"ससार किससे आच्छादित है? किससे वह अप्रकाशित है? इसका मल मुझे बतावे कि किससे यह मलयुक्त होता है) तथा इसका महाभय क्या है?"

बुद्ध ने कहा––"ससार अविद्या से आच्छादित है, लोभ तथा प्रमाद के कारण वह अप्रकाशित है। तृष्णा को मै मल बताता हूँ तथा दु ख इसका महाभय है।"

अजित––"सर्वत्र तृष्णा की धाराएँ बहती है, इन धाराओ का क्या निवारण है? इन धाराओ के आवरण को बतावे, तथा इनको कैसे बन्द किया जा सकता है?"

बुद्ध––"ससार मे जितनी धाराए है, स्मृति उनका निवारण है, (इसे मै) धाराओ का आवरण बताता हूँ। प्रज्ञा से ये बन्द की जाती है।"

(ख) पुण्णक माणवक ने पूछा––"तृष्णारहित, (पाप के) मूल को देखने वाले आपके पास प्रश्न करने आया हूँ। किस कारण ऋषियो, मनुष्यो, क्षत्रियो और ब्राह्मणो ने देवताओ के नाम इस ससार मे बहुत यज्ञ किये थे? भगवान्, आप से यह पूछता हूँ, आप इसे बतावे।"

बुद्ध ने कहा––"पुण्णक, जरा को प्राप्त होने पर जीवन की कामना करते हुए इस ससार मे ऋषियो, मनुष्यो, क्षत्रियो ब्राह्मणो ने देवताओ के नाम बहुत-से यज्ञ किये थे।"

(ग) धोतक माणवक तथा कप्प माणवक ने बुद्ध से निर्वाण के बारे में प्रश्न किया और इसी प्रकार से और माणवकों ने भी बुद्ध से प्रश्न किये और उन्होंने उनका उत्तर दिया।

६. विमानवत्थु

प्राय: १२८६ गाथाओं के इस ग्रन्थ में देवताओं के विमान (चलते घरों) के वैभव का वर्णन प्रस्तुत है। इतना निश्चित-सा ही प्रतीत होता होता है कि यह बुद्ध-भाषित नहीं है और सम्भवत भारत में यह अशोक के समय के आसपास लिखा गया होगा। 'विमानवत्थु' में दो भाग है–'इत्थिविमान' तथा 'पुरिसविमान'। स्त्री की देवभूमियों का वर्णन इत्थि-विमान में और पुरुष की देवभूमियों का वर्णन पुरिसविमान में है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में शैली एक ही प्रकार की है। एक ऋद्धिशाली भिक्षु अमुक देव या देवी से प्रश्न करता है कि तुम्हें यह सुख और गौरव कैसे प्राप्त हुआ। उत्तर में वह उल्लेख करता है कि उसने अमुक पुण्य कर्म किये थे, जिनके फल-स्वरूप उसे वह प्राप्त हुआ। उदाहरणस्वरूप कुछ का उल्लेख इस प्रकार से है––

१ **पठमपीठविमानवत्थु** (११)––"तेरा विशाल पीठ सुवर्णमय है और मन की गति की तरह यह मनोवांछित स्थान पर चला जाता है। तू अलंकृता, मालाधारिणी एवं सुवस्त्रा है और मेघशिखर पर विद्युत की भाँति चमकती है।

किस कारण से तुम्हें ऐसा रूप प्राप्त हुआ है तथा ऐसे भोग तुम्हारे लिए उत्पन्न होते है, जो मन को सुन्दर लगने वाले है ?

हे महानुभावे, तुमसे मैं यह पूछता हूँ कि तुमने मनुष्य होकर क्या पुण्य किया था ? किसके कारण इतने देदीप्यमान प्रतापवाला तेरा यह रूप है, जो सभी दिशाओं में प्रकाशमान हो रहा है ?"

ऐसा 'मोग्गल्लान' द्वारा प्रश्न किये जाने पर वह देवी बोली––"मैंने मनुष्य योनि में जन्म लेकर मनुष्यों में अभ्यागतों को आसन दिया, अभि-वादन किया, दान किया और उसी से मेरा ऐसा वर्ण है।"

२. **केसकारीविमानवत्थु** (१.१७)—"यह विमान रुचिर, और प्रभास्वर तथा हीरो के खम्भो के समान सुनिर्मित है, चारों ओर सुवर्ण के वृक्ष उगे हुए है। मेरा स्थान कर्मविपाक-सम्भव है।

वहाँ उत्पन्न सौ या सहस्र अप्सराओ मे अग्रगण्य यह तुम सबको प्रकाशित करती हुई यशस्विनी होकर स्थित हो।

हे अनुपमदर्शने, कहाँ से तू मेरे इस भवन मे उत्पन्न हुई ?"

"हे शक्र, जो तुम मुझसे यह पूछते हो कि कहाँ से च्युत हो कर मैं यहाँ आयी हूँ तो पूर्व मे काशी (जनपद) का वाराणसी नामक नगर है। वही मै केशकारिका थी।

मै बुद्ध, धर्म तथा सघ मे प्रसन्न मनवाली, अखडित शिक्षापद तथा सदाचारवाली, फल प्राप्त तथा सम्बोधि-धर्म मे नियत तथा अनामया थी।"

शक्र ने यह सुनकर अभिनन्दन करते हुए उसका स्वागत किया।

७. पेतवत्थु

प्राय ८१४ गाथाओ की यह पुस्तिका नरक के दुखो का वर्णन प्रस्तुत करती है। इसमे ५१ वस्तु (कथा) है तथा यह चार वर्गो मे विभक्त है। इसे गरुडपुराण का प्रारम्भिक सस्करण समझिए। उदाहरणस्वरूप कुछ 'वस्तुएँ' नीचे दी जाती है।

१ **सूकरमुखपेतवत्थु** (२)—"तुम्हारा सम्पूर्ण शरीर स्वर्ण वर्ण का है और सभी दिशाएँ उसमे प्रभासित हो रही हैं, पर तुम्हारा मुख शूकर के समान है। तुमने क्या कर्म पहले किया था ?"

"मै शरीर से तो सयत थी, पर वाणी से नही, इसीलिए ऐसा हुआ है।"

२ **सत्तपुत्तखादपेतिवत्थु** (७)—

"नगी दुर्वर्ण रूप की हो तथा अपवित्र दुर्गन्ध फैला रही हो।
"मक्खियाँ भिनभिना रही हैं, तू कौन यहाँ खड़ी हो ?"
मैं, भदन्ते, यमलोकवासी दुर्गति प्राप्त प्रेती हूँ,
पाप कर्म करके प्रेतलोक मे यहाँ आयी हूँ;

कालक्रम से पाँच पुत्र तथा और दूसरे पुत्रों को उत्पन्न करके
उन्हे मैंने खाया तो भी वे पर्याप्त नहीं हुए ।
मेरा हृदय क्षुधा से जलता और धूमित होता है,
मुझे कही भी शान्ति नहीं मिलती ।"
"काया, वाणी या मन से क्या दुष्कर्म किया,
किस कर्म-विपाक के कारण तुम पुत्र-मास खाती हो ?"
"मेरी सौत गर्भिणी थी, उसका मैंने बुरा सोचा ।
सो दुष्ट मन से मैंने उसका दो-तीन मास का गर्भपात कर दिया ।
उससे लोहू बहा, उसकी मा ने कुपित हो मेरी जातिवालो का बुलाया ।
मुझे शपथ कराया, मुझसे कहला दिया ।
सो मै घोर शपथ कर झूठ बोली,
मैंने शपथ किया था, अब पुत्र-मास खाती हूँ ।
उस कर्म-विपाक का, झूठ, बोलने का यह फल है,
पुत्र-मास खाती हूँ, पीठ और खून पर मक्खियाँ भिनभिना रही है ।"
पाप कर्मो के दुष्परिणाम की बाते 'पेतवत्थु' मे इसी प्रकार दी गई है ।

८. थेरगाथा

इस ग्रन्थ मे डेढ सौ के करीब बुद्धकालीन स्थविरो की गाथाए सुरक्षित है । प्राचीनता ही नहीं, प्रत्युत उनमे से कितनी ही कविता की दृष्टि से भी सुन्दर है । ई० पू० छठी सदी के आसपास इतने सुन्दर रूप मे कविता करने का प्रयास हुआ था, यह उन गाथाओं से ज्ञात होता है ।

इस ग्रन्थ मे गाथाओ की सख्या के अनुसार निपातो का विभाजन है । इसमे २१ निपात है-- १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, २०, ३०, ४०, ५० तथा ६० के क्रम से । बीस गाथा वाली रचनाए 'वीसतिक' निपात मे सकलित है । इसमे २५५ भिक्षुओ के उद्‌गारो का सग्रह है । सक्षिप्त रूप से, नमूने के तौर पर, कुछ नीचे प्रस्तुत किये जाते है---

'थेरगाथा' के प्रारम्भ मे ही कहा गया है——

"गिरगह्वर मे दहाडनेवाले सिहो की भावनावाले स्थविरो की गाथाओ को सुनो" आदि ।

१. वनवच्छत्थेरगाथा (१.१३)——नीले बादल के रगवाले शीतल, शुचि जल धारण करनेवाले वीरबहूटियो से ढॅके पर्वत मुझे रमाते है ।

२ सप्पकत्थेरगाथा (४.११)——"जब शुचिश्वेत पखवाली बलाकाए, काले मेघ के भय से डरी शरणस्थान ढूंढती भागती है, तब मुझे 'अजकरणी' नदी रमण कराती है । जब बलाकाए आलय देखती तथा ढूंढती है तब अजकरणी० मेरी, गुहा के पीछे नदी के तट पर दोनो ओर लगे जामुन वृक्ष शोभायमान होते किसको नही पसद आते ।

मन्द-मन्द बहती नदी नाद कर रही । आज ऐसी गिरि-नदी छोड प्रवास करने का समय नही, अजकरणी क्षेमयुक्त शिव सुरम्य है ।"

३. महाकच्चानत्थेरगाथा (८ १)——बहुत कर्म न कराये, उद्यम मे किसी को न रोके, जो सुख लानेवाले परमार्थ को छोड देता है, वह उत्सुक तथा रस लोभी है ।

न कोई दूसरे के कहने से चोर और न दूसरे के कहने से मुनि होता है । आदमी भाप अपने को जैसा जानता है, वैसा देवता भी नही जान सकते ।

दूसरे अज्ञ नही समझते कि हम यहाँ से जानेवाले है । जो इसे जानते है, उनके विकार शान्त हो जाते है ।

प्रज्ञावान् वित्त के नष्ट हो जाने पर भी जीता ही है । प्रज्ञा न मिलने से वित्तवान् भी (ठीक से) नही जी सकता ।

कान से सब सुनता है, आँख से सब देखता है । पर धीर सभी देखे-सुने को छोड़ सकता है ।"

४. कालुदायित्थेरगाथा (१० १)——बसत के आने पर बुद्ध को जन्मभूमि (कपिलवस्तु) ले जाने की प्रेरणा देते पुरोहित-पुत्र कालुदायी ने कहा——

"बसत में इस समय द्रुम फूलो से लाल हैं। फल के इच्छुक, पत्ते छोड कर लौवाले से प्रभासित है। हे महावीर, आङ्गीरसो के प्रस्थान का यही समय है।

द्रुम फूलो से मनोरम है। चारो ओर सारी दिशाएं प्रवाहित हो रही है। पत्र को छोड वृक्ष फल चाहते है। यह यहाँ से प्रस्थान करने का समय है।

(समय) न अति शीतल है, न अति उष्ण, ऋतु सुखमय है, (समय) यात्रा योग्य है। आपका भला हो। आपको पच्छिम मुख रोहिणी पार करते हुए, शाक्यगण और कोलियगण देखे।

५. **तालपुटत्थेरगाथा (१९१)**--राजगृह के भूतपूर्व नटाचार्य कहते है--

"कब मै पर्वत-कन्दराओ मे अकेला अद्वितीय सारे ससार को अनित्य देखते विहरूँगा। वह समय मेरे लिए कब होगा।

कब मै फटे वस्त्रवाला काषायधारी ममता-तृष्णारहित, इच्छारहित मुनि हो जाऊँगा? राग-द्वेष, मोह को मारकर वन मे जा सुखी होऊँगा। वह०।

कब अनित्य, बधुरोग के नीड, मृत्यु-जरा-पीडित इस काया को देखने निर्भय हो अकेला वन मे विरूँगा,। वह०।

कब मैं भयजननी दुखावहा, बहुत प्रकार से पीछा करनेवाली तृष्णा-लता को प्रज्ञामय तीक्ष्ण खड्ग से काट कर बसूँगा। वह०।

कब वर्षा के मेघ, ऋषि द्वारा प्रयात मार्ग पर वन मे जाते नवीन जल चीवर पहने मुझ पर बरसायेंगे। वह कब०।

कब गिरिगह्वर मे शिखाधारी मोर पक्षी के स्वर को सुनकर अमृत की प्राप्ति के लिए चिन्तन करूँगा। वह कब०।"

६ थेरीगाथा

इसमे ५२२ गाथाएं है, जो १६ निपातो मे विभक्त है। निपात 'थेरगाथा' के समान आधारो पर ही है। इसमे भिक्षुणियो के उद्गार, जो उनके अन्तस्तल की पुकार-स्वरूप है, सगृहीत है। उदाहरणस्वरूप--

१. **दन्तिका (३४)**—"दिन के विहार के लिए, गृध्रकूट पर्वत पर मैंने नाग (हाथी) को जलाशय मे उतरते देखा।

एक आदमी अकुश लेकर 'पैर दो' कह प्रार्थना करता था। नाग ने पैर पसार दिया, पुरुष नाग पर चढ गया।

दमन करने मे कठिन दमित (गज) मनुष्यों के वश में हो गया, तबसे मैं चित्त को समाहित करती हूँ। उसी के लिए वन मैं गयी।"

२. **विमला पुराणगणिका (५२)**—"वर्ण, रूप, सौभाग्य और यश से मैं मतवाली थी और यौवन से गर्विली दूसरी स्त्रियो से अपने को मैं असमान मानती थी।

मूर्खों को लोभनेवाली इस विचित्र काया को भूषितकर वेश्या-द्वार पर पक्षियो के लिए शिकार के पाश की भाति खडी होती थी।

वही आज मैं मुडिता, सघाटी पहिने, पिडचार करते वृक्ष के नीचे बैठी अवितर्क अवस्थावाली समाधि को पानेवाली हूँ।

दिव्य या मानुषिक सारे बधन उच्छिन्न हो गये। सारे चित्तमलो का लोपकर मैं शीतल निर्वाण प्राप्त हूँ।"

३. **पुण्णा (१२१)**—"मैं कहारिन थी, ठड मे सदा पानी मे उतरती थी, स्वामियो (आर्यो) के दड के भय से भर्यादित थी। तू, ब्राह्मण, किसके भय से कापते, भारी शीत झेलते, पानी मे उतरता है।"

"तुम पूर्णिका जानती हो, तो पुण्यकाम करते पाप को रोकते मुझसे क्यो पूछती हो?"

"जो बडा या छोटा पापकर्म करता है, वह भी जल-स्नान से उस पाप कर्म से छूट जाता है।"

"न जाने किस अज्ञानी ने तुमसे यह कहा—'उदक स्नान से पापकर्म छूटता है'। तब तो जरूर सारे मेढक, कछुए, स्वर्ग को चले जायेगे। नाग और सोस भी और जो दूसरे जलचर भी।

भेड मारनेवाले, शूकर मारनेवाले, मछुवे और मृगवधिक, चोर और दूसरे पाप कर्मी भी जल-स्नान से पाप कर्म से छूट जायेंगे।

यदि ये नदियाँ पहले के तेरे किये पाप को धोयेंगी, तो पुण्य को भी बहा ले जायेंगी। इसलिए बाहर आओ।

ब्राह्मण जिससे डरकर सदा पानी मे उतरता है, उसे ही बहुत मत कर, शीत तेरे चमडे का हनन न कर दे।"

"उदक-सेवन कुमार्ग मे लगे, मुझे आर्य-मार्ग पर लायी, अत भवती, मैं तुझे यह शाटक (धोती) देता हूँ।"

"तेरा शाटक रहे, मैं शाटक नही चाहती, यदि दु ख मे डरता है, यदि दु ख तुझे अप्रिय है, तो प्रकट या गुप्त पापकर्म मत कर।

यदि पाप कर्म करता है या करेगा तो भागकर भी दु ख से नही छूटेगा।"

४ **अम्बपाली** (१३ १)--वैशाली की प्रसिद्ध वेश्या ने बुढापे मे ये गाथाए कही थी--

"काले भ्रमरवर्ण समान मेरे ये केश छोर पर कुचित थे, तब मैं जवान थी, ये (केश) अब जरा से सन के छिलके-से हैं। सत्यवादी बुद्ध का वचन अन्यथा नही हो सकता।

सुगन्धि के द्रव्य से तथा पुष्पराशि से वासित मेरे केश थे, वे जरा के कारण खरगोश के बाल के समान दुर्गन्धित हैं। सत्यवादी०।

घने सुरोपित कानन की भाँति केश सूइयो से विचित्र तथा अग्रशोभित थे, वे जरा से जहाँ-तहाँ विरल हैं। सत्यवादी०।

स्निग्ध, सुगन्धित, नन्दित, सुवर्ण से अलकृत मेरा सर था; अब वह जरा से गजा हो गया है। सत्यवादी०।

चित्रकार द्वारा सुगढित और अकित-सी तब मेरी भौहे सोहती थी, वे अब जरा से झुरियो से लटकी है। सत्यवादी०।

मेरे नेत्र भास्वर, सुरुचिर मणि-जैसे नीले और आयत थे; वे अब जरा से आहत हो, नही शोभते।"

१०. जातक

बुद्धकाल मे प्रचलित सारे पाँच सौ सैंतालीस (५४७) लोककथाओं का यह सग्रह है। अपने उपदेशो मे बुद्ध जैसी उपमाए देकर उन्हे रुचिकर तथा सुगम बनाते थे, वैसे ही लोककथाओ को भी देते थे। 'महागोविन्द' आदि छोटे-छोटे जातक सुत्तों मे भी आये है। जातको की गाथाए पुरानी है, जिनमे से कुछ लोक-काव्य भी हो सकती हैं। कुछ जातक तो अतिसुन्दर लोक-काव्य हैं। 'वेस्सन्तर जातक' को पढते समय उसी तरह आँसुओ का वेग और कठावरोध होता है, जैसे मुझे पाबोजी का पवाडा (राजस्थानी) सुनने-पढने समय हुआ था। विश्व-लोक-साहित्य की जातक अद्भुत निधि है। ये बौद्ध देशों मे तो बहुत प्रचलित है ही, अब तो शायद विश्व की कोई ही साहित्यिक भाषा हो, जिसमे कुछ या सारे जातक अनूदित न हुए हो। हिन्दी मे उनका अनुवाद भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने छह जिल्दो मे कर 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कराया है।

जातक मे जहाँ प्राचीन भारत के व्यापार-पथ की विशाल सामग्री है, वहाँ उस समय वे शिल्प, व्यवसाय और मनुष्य-जीवन के अगो पर भी बहुत प्रकाश पडता है। चित्रकारो और मूर्तिकारो के लिए ये उत्तम सामग्री प्रदान करते हैं। कितने ही काव्य ग्रन्थ भारत से बाहर जातकों को लेकर बने हैं। मूलरूप से गाथा भाग ही जातक माना जाता है, पर कथाओ के बिना जातक का कोई महत्त्व नही है; अत. गाथाओं को उनके साथ ही लेना चाहिए।

जातक मे सर्वप्रथम 'निदानकथा' है, जो इसकी भूमिकास्वरूप है। इसके बाद 'पच्चुप्पन्नवत्थु', 'अतीतवत्थु', 'अत्थवण्णना' और 'समोधान' ये चार बाते प्रत्येक जातक मे आती है। पच्चुप्पन्नवत्थु मे वर्तमान सदर्भ दिया रहता है, जिसमें उस जातक-विशेष का उपदेश हुआ रहता है; अतीत-वत्थु प्राचीन कथा है; अत्थवण्णना उसमें आये हुए गाथा-भाग की टीका है तथा बुद्ध स्वयं अपने से तथा अन्य शिष्यो से जातक का जो मेल बैठाते हैं,

वही समोधान है। यहाँ पर केवल 'वेस्सन्तर जातक' उदाहरण के रूप में सक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है।

१. वेस्सन्तरजातक (५४७)——इसमे शिवि देश के राजा 'वेस्सन्तर' के त्यागमय जीवन का वर्णन है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी 'शिवि दधीचि हरिश्चन्द्र नरेसू' चौपाई मे शिविराज का उल्लेख किया है। वे यही वेस्सन्तर है। यद्यपि उनके समय यह कथा बौद्ध धर्म के लुप्त होने के साथ लुप्त हो चुकी थी, पर जनता के अवचेतन मे पडी हुई थी।

वेस्सन्तर की दान की उदारता से सारी जनता बिगड जाती है और पिता को अपने प्रिय पुत्र को निर्वासित करना पडता है।

यह सुन (देवी) वेस्सन्तर-पत्नी माद्री काँपती हुई बोली——"पहले जिसकी सेना ध्वजाग्र के साथ अनुगमन करती थी, सो आज अकेला ही वन मे जायेगा।

वीरबहूटियो के रगवाले लाल गान्धार के दुशाले, जिसके कि पीछे जाते०।

जो पहले हाथी मे, शिविका से या रथ से जाता था, वह वेस्सन्तर राजा आज कैसे पैदल जायेगा।

क्यों काषाय वस्त्र और मृगछाला——नही लाये जाते; बडे अरण्य मे प्रवेश करते वीर को क्यो नही बाधते ?

कैसे माद्री कुश का चीर पहनेगी ?

काशिक वस्त्र, मलमल और कोटुम्बर धारण करनेवाली माद्री कुशचीर को कैसे धारण करेगी ?

वेस्सन्तर राजा शिवियो की बात के लिए स्वय राज से बेराज हुआ है।"

वेस्सन्तर की माता ने करुण स्वर से कहा——

"पुत्र, तुझे अनुमति देती हूँ, तेरी प्रव्रज्या सफल हो, पर कल्याणी माद्री पुत्रो (बेटे-बेटी) के साथ यही रहे, वन मे जाकर क्या करेगी ?"

वेस्सन्तर ने कहा——"न चाहने वाली दासी को भी, मै वन मे नही ले जाता; यदि माद्री चाहती है, तो आये, नही चाहती तो (यही) रहे।"

"हतपुत्रा, सूने नीड की चिड़िया-सी मैं दुबली पीली होऊँगी... ऐसे मेरे विलाप करते निर्लेप राजपुत्र को, देश से वन भेज दिया, जानो मैं जीवन छोड़ दूँगी ।"

राज-माता को क्रन्दन करते सुन कर अन्तःपुर की बहूएँ, शिविकन्याएं बाँह पकड़कर रोने लगी ।

तब महाराज ने बहू को मनाना चाहा—

"चॅवर धरनेवाली (मेरी बहू) धूल मत धारे, मत कुशचीर धारे...। अरण्यवास दुःख है, सुन्दरी, तू मत जा ।"

सर्वांगशोभना राजपुत्री माद्री ने तब कहा—

"मैं उस सुख को नही चाहती, जो वेस्सन्तर के बिना मुझे मिले । जो वन के भय आपने बतलाये है, रथर्षभ, मैं जाकर उन सब को सह लूँगी । बहुत मेहनत से कुमारी पति को पाती है ।

ससार मे वैधव्य कड़ा है, रथर्षभ, मुझे जाना ही होगा । बिना जल की नदी नगी है, बिना राजा के राष्ट्र नगा है, विधवा स्त्री नगी है, चाहे उसके दस भी भाई हो । सागर तक बहुवित्तधारिणी नाना रत्नो से भरी धरती को भी वेस्सन्तर के बिना नही लूँगी ।

कैसे उन स्त्रियों का हृदय सुख मानता है, जो पति को दुख मे देख अपना सुख चाहती है, शिवियों के राष्ट्रवर्धन महाराज के निकलने पर मैं उनके पीछे-पीछे जाऊँगी । वह मेरी सब कामनाओ के दाता है ।"

उससे महाराज ने कहा—"सर्वांगशोभने माद्री, ये तेरे दोनो बच्चे जाली और कृष्णाजिना छोटे है ।"

माद्री ने कहा—"देव, जाली और कृष्णाजिना दोनो बच्चे मुझे प्रिय है । ये अरण्य मे हम दुखी जीवनवालो को सुख देगे ।"

शिवियो के राष्ट्रवर्धन महाराज ने उससे कहा—"शालि के भात और शुचि मांस के तेमन को खाने के आदी जंगली पौधो के फलों को खाते हुए बच्चे कितना दुख पायेंगे ।"

तब वेस्सन्तर राजा ने माता-पिता दोनो की वन्दना करके प्रदक्षिणा की।

जगल मे रहते कुछ समय बाद एक ब्राह्मण आया। माद्री अन्यत्र गयी थी। ब्राह्मण ने दोनो बच्चे मागे। वेस्सन्तर ने दे दिया।

जाली पीपल के पत्ते की भाँति काँपता पिता के चरणो मे वन्दना करते हुए बोला—

"माता अन्यत्र गयी है, और तात तुम हमको दे रहे हो! अम्मा को भी हम देख ले, तब हमे दे देना।

हमे तब तक मत दो तात! जब तक हमारी अम्मा नही आ जाती, तब चाहे ब्राह्मण हमे बेच दे, या मार दे।

तात को हम नही देख पायेगे, इसी का बहुत दुख है। हमे न पा, बेचारी अम्मा चिरकाल तक रोती रहेगी।"

चारुदर्शन कृष्णकुमारी को न देखकर बेचारे (तात) भी जरूर बहुत समय तक रोते रहेगे बेचारी अम्मा!"

जाते समय जाली छोटी बहन से कहता है—

"ये जामुन तथा सेदुवार आदि के पेड है, नाना प्रकार के वृक्ष, इन्हे आज हम छोड रहे है।

अश्वगन्ध, कटहल, बरगद तथा कैथ, इन विचित्र प्रकार के वृक्षो को आज हम छोड रहे है।

जिनसे पहले हम खेला करते थे, उन्हे आज छोड रहे है,

यहाँ ऊपर पर्वत पर विविध प्रकार के फूल है जिन्हे हम धारते थे। उन्हे०।

ये हमारे खिलौने हाथी और अश्व है, ये हमारे घर है, जिन के साथ पहले हम खेला करते थे। उन्हे०।"

ले जाये जाते बच्चो ने पिता को कहा—"अम्मा को आरोग्य कहना; तुम भी तात सुखी रहो।"

ये हमारे हाथी-घोड़े हैं, ये हमारे बैल है, इन्हे अम्मा को देना। वह इनसे अपना शोक दूर करेगी।"

तब क्षत्रिय वेस्सन्तर राजा दान देकर शाला मे घुस करुण रुदन करने लगा--

"भूखे प्यासे बच्चे आज किसके पास हठ करेंगे। शाम को ब्यालू के के समय कौन उन्हे भोजन देगा? बिना जूते के पैदल कैसे जायेंगे? नगे पैर जाते उन्हे कौन हाथ पकडायेगा।

माद्री ने सध्या को लौटते समय दूर से सोचना शुरू किया--"उनके लिए यह भोजन ले जा रही हूं। वह इस भोजन को खायेंगे। वह क्षत्रिय निवासस्थान मे जरूर अकेला होगा। मुझे न आयी देख, बच्चो के ढाढस बॉधना होगा। मुझ अभागिनी बेचारी के बच्चे जरूर पानी पीके पडे होगे। मेरे थन भरे हुए है, छाती फट रही है"।

पास आकर उसने कहा--"पर मैं तथा जाली कृष्णाजिना दोनो बच्चो को नही देख रही हूँ। शाम के समय धूल मे लिपटे मेरे बच्चे मेरी गोद मे लेटते थे, उन बच्चो को मै नही देख रही हूँ। क्यो यह आश्रम नि शब्द-सा दीख रहा है? पक्षी भी नही चहचहा रहे है, जरूर बच्चे मर गये"।

वह वेस्सन्तर से बोली--

"क्यो मेरा मन घबरा रहा है, आर्यपुत्र, मेरे बच्चो को भेड़िये तो नही खा गये? न तो उनके केश दीखते हैं, न हाथ-पैर ही। मैं जाली और कृष्णाजिना को नही देख रही हूँ, और आर्यपुत्र, तुम नही बोल रहे हो"।

अन्त मे वेस्सन्तर ने उसे दान की सारी कथा बतला दी।

११. निद्देस

चूलनिद्देस और महानिद्देस इसके ही भाग है। यह कठस्थ रखने के समय की व्याख्या है। महानिद्देस मे, सुत्तनिपात के अट्ठकवग्ग (जिसे सोण ने बुद्ध को जेतवन मे स्वर-सहित सुनाया था) की व्याख्या है। महानिद्देस मे वहुत-से देशो तथा बदरगाहो का उल्लेख है, जिनके साथ भारत का वाणिज्य सम्बन्ध था।

१२. पटिसम्भिदामग्ग

इसमे अर्हत् के प्रतिसविद् की व्याख्या है। इसमें दस परिच्छेद है। इसकी शैली अभिधर्म की है।

१३. अपादान

अपादान (अवदान) चरित को कहते है। अपदान के दो भागो मे से एक का नाम थेरापदान है, दूसरे का थेरी-अपदान। इसे थेरगाथा, थेरीगाथा का पूरक ग्रन्थ कह सकते है, क्योकि इसमे उन्ही थेर-थेरियो के चरित है। इनमे ६२८६ गाथाए स्थविरो से सम्बन्ध रखती है, और १२६७ थेरियो से। पहला अपदान बुद्धापदान है। फिर उसके बाद बुद्धशिष्य मोग्गल्लान, महाकाश्यप, अनुरुद्ध, पूर्णमैत्रायणीपुत्र, उपालि, अज्ञात कौडिन्य, पिडोलभारद्वाज, खदिरवनीय रेवत आदि से सम्बन्धित है। इसी तरह थेरी-अपदान मे महाप्रजापति गौतमी आदि मे सम्बन्धित चरित कहे गये है। वर्ग-विभाजन की दृष्टि से थेरापदान मे ५५ वर्ग है और प्रत्येग वर्ग मे १० अपदान है; थेरी-अपदान मे ४ वर्ग है और इनमे भी प्रत्येक मे १० अपदान है।

थेर-थेरियो की जीवनी इसी जन्म से सम्बन्धित नही है, बल्कि वे लोग अतीत मे क्या थे, इसका भी स्थान-स्थान पर उल्लेख है।

गाथा कहने वाले स्वय ये स्थविर है; वे अपने मुँह से इन अपादानो को बोलते है। इतना ही नही, वाणी मर्म-स्पर्शी भी है, और ऐसा अधिक स्थलो मे है।

१४ बुद्धवंस

यह पद्यात्मक ग्रन्थ २८ परिच्छेदो का है और इसमे दीपङ्कर से लेकर शाक्यमुनि गौतम बुद्ध तक के २४ बुद्धो का वर्णन है। गौतम बुद्ध की जीवनी के अतिरिक्त शेष वर्णन पौराणिक पद्धति पर आधारित है। एक बौद्ध परम्परा इसे स्पष्ट रूप से बुद्धवचन नही मानती।

१५. चरियापिटक

यह भी ग्रन्थ 'बुद्धवस' की ही भाँति का है और सर्व-प्रमाणित नही है। यह छह परिच्छेदो में है, जिनमे २५ जीवनचर्याओ का उल्लेख है। इसमे भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्म का वर्णन करते हुए यह प्रदर्शित किया गया है कि उन्होने दान, शील, नैष्क्रम्य, अधिष्ठान, सत्य, मैत्री और उपेक्षा आदि सात पारमिताओ की उन-उन जन्मो मे पूर्ति कैसे की। इन पारमिताओ का वर्णन व्यक्ति के चरित के रूप मे किया गया है। लगता है पारमिताओ को आदर्श बनाकर लोगो ने उच्च जीवन को समझाने के लिए ही इस ग्रन्थ को रच डाला।

इसके प्रत्येक चर्या का वर्णन जातक की ही भाँति है और यह पद्य रूप मे प्रस्तुत है।

--:०:--

छठा अध्याय

विनयपिटक

यह दूसरा पिटक है, जिसे भिक्षु-भिक्षुणियों का आचार-शास्त्र कह सकते हैं। इसमें पाँच ग्रन्थ हैं--

१ पाराजिक	६८६०	ग्रन्थ-संख्या
२. पाचित्तिय	६६८०	,,
३ महावग्ग	७७००	,,
४ चुल्लवग्ग	८५८०	,,
५ परिवार	७६२०	,,

विनयपिटक के उपर्युक्त विभाजन में इसका सुत्त-विभङ्ग और खन्धक विभाजन अधिक युक्तियुक्त है। वस्तुत पाराजिक पाचित्तिय प्रातिमोक्ष की ही व्याख्या है। प्रातिमोक्ष को प्रातिमोक्षसूत्र भी कहते हैं। विभङ्ग व्याख्या का भी नाम है। प्रातिमोक्षसूत्र का इस तरह विभङ्ग होने से पाराजिक, पाचित्तिय का नाम विभङ्ग पड़ा। सर्वास्तिवाद के सूत्र और विनयपिटक से पालिपिटक की बहुत समानता है। आखिर सर्वास्तिवाद स्थविरवाद की ही शाखा थी। तृतीय संगीति (अशोक) के समय तक बौद्ध धर्म के १८ निकाय (शाखाएं) हो गये थे। 'कथावत्थु' की अट्ठकथा में इन निकायों का भी उल्लेख है।

अठारहनिकाय---अशोक के समय तक बौद्ध धर्म में अठारह निकाय हो गये थे—

बुद्ध-धर्म

१ स्थविरवादी — २. महासाङ्घिक

२. वज्जिपुत्तक ७ महिशासक १४. एकव्यावहारिक १५ गोकुलिक

८ धर्मगुप्तिक ६ सर्वास्तिवादी १६. प्रज्ञप्तिवादी १७ बाहुलिक (बाहुश्रुतिक)

१० काश्यपीय

११ माक्रान्तिक

१२ सूत्रवादी (सौत्रान्तिक) १८ चैत्यवादी
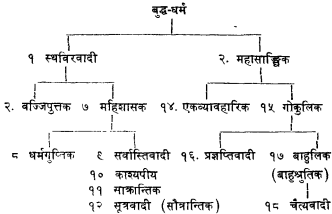
बुद्ध ने अङ्गुत्तरनिकाय के एक सूत्र मे ढाई सौ शिक्षापदो (प्रातिमोक्षो) की बात कही है। शिक्षापदो की सख्या चीनी और तिब्बती ग्रन्थ मे २५० और २५८ है।

तुलना करे—

विनयपिटक	(पालि)	शिबुनरित्सु (जापानी)	मूलसर्वा० (तिब्बती)
पाराजिक	४	४	४
सघादिसेम	१३	१३	१३
अनियतधम्म	२	२	२
निस्सगिय पाचित्तिय	३०	३०	३०
पाचित्तिय	६२	६०	६२
पाटिदेसनीय	४	४	४
सेखिय	७५	१००	१०६
अधिकरणसमथ	७	७	७
	२२७	२५०	२५८

नीचे इन नियमो का उल्लेख करते हुए उनके सम्बन्ध मे कहा जा रहा है, जो पाराजिक तथा पाचित्तिय ग्रन्थो मे संगृहीत है—

(१) पाराजिक, (२) पाचित्तिय

(१) पाराजिक—ऐसे दोष को कहते हैं, जिसके करने पर भिक्षु सदा के लिए संघ से निकाल दिया जाता है, उसका कोई प्रायश्चित नही।

पाराजिकाएं चार हैं—(१) मैथुन, (२) चोरी, (३) मनुष्य-हत्या, (४) लाभ, सत्कार के लिए सिद्धि का दावा करना तथा प्रदर्शन करना।

(२) संघादिसेस—इनके दड-स्वरूप अपराधो के लिए कुछ समय तक सघ से अलग अकेला रहना पड़ता है। ये तेरह प्रकार के हैं—(१) जान बूझकर वीर्यपतन करना, (२) कामवासना से स्त्री-स्पर्श करना, (३) कामवासना से स्त्री से वार्तालाप करना, (४) अपनी प्रशसा द्वारा उसे बुरे उद्देश्य से आकर्षित करना (४) विवाह करवाना, या प्रेमियो को मिलाना, (६) सघ की अनुमति बिना अपने लिए विहार बनवाना, (७) बिना अनुमति बड़े नाप के विहार बनाना, जिनके चारो ओर खुली जगह भी न हो, (८) क्रोध से अकारण भिक्षु पर पाराजिक-दोष लगाना, (९) पाराजिक समान-अपराध लगाना, (१०) चेतावनी देने पर भी सघ मे फूट डालने का प्रयत्न करना, (११) फूट डालनेवाले की हिमायत करना, (१२) गृहस्थ की अनुमति के बिना उसके घर मे घुसना, (१३) चेतावनी देने पर भी सघ या साथी भिक्षुओ के आदेश को न सुनना।

(३) अनियतधम्म—ऐसे अपराध हैं, जिनका स्वरूप निश्चित नही है और साक्ष्य मिलने पर भी जिन्हे किसी विशेष श्रेणी के अपराधो मे गिना जा सकता है। ये दो प्रकार के हैं—

(१) यदि कोई भिक्षु किसी एकान्त स्थान मे बैठा हुआ स्त्री से बाते कर रहा है और कोई श्रद्धावती उपासिका आकर उसे पाराजिक, सघादिसेस, या पाचित्तिय अपराध का दोषी ठहराती है और वह उसे स्वीकार कर लेता है तो वह उसी अपराध के अनुसार दण्ड का भागी है। (२) यदि वह एकान्त स्थान मे न बैठकर किसी खुली हुई जगह मे ही स्त्री से सम्भाषण

कर रहा है, किन्तु उसके शब्दो मे कुछ अनौचित्य है और कोई श्रद्धावती उपासिका उसी प्रकार आकर उसे उपर्युक्त अपराधो का दोषी ठहराती है और उसे वह स्वीकार कर लेता है तो वह उसी अपराध के अनुसार दड का भागी है।

(४) **निस्सग्गियपाचित्तिय**––इनके अन्दर उन अपराधो की गणना की गयी है, जिनमे स्वीकरण के साथ-साथ प्रायश्चित्त भी करना पडता है, साथ ही जिस वस्तु के सम्बन्ध मे अपराध किया जाता है, वह वस्तु भी भिक्षु से छीन ली जाती है। इस प्रकार के अपराधो मे प्राय. सभी वस्त्र सम्बन्धी और केवल दो भिक्षा-पात्र सम्बन्धी है। उदाहरणार्थ––कोई भिक्षु अतिरिक्त चीवर लेना चाहता है, गृहस्थ से ऐसे समय पर वस्त्र माँगता है या अच्छे वस्त्र (रेशम या मुलायम वस्त्र) मागता है आदि। इसी प्रकार के उद्देश्य से भिक्षापात्र बदलने से भी यही दोष लगता है। सघ को दी गयी वस्तु पर जब भिक्षु व्यक्तिगत अधिकार करता है, तब भी वह इसका भागी होता है।

(५) **पाचित्तिय**––ये ऐसे अपराध है, जिन्हे करने पर प्रायश्चित्त करने के बाद अपराध-मुक्त कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ–झूठ बोलना, गाली देना, चुगली करना, नशीली चीजो का प्रयोग करना आदि अपराध यदि हो जायँ तो उनका प्रायश्चित करने के पश्चात् आगे के लिए वैसा न करने के लिए कृतसकल्प होना पड़ता था।

(६) **पाटिदेसनीय**––उन वस्तुओ से यह सम्बन्धित है, जिनके लिए क्षमा-याचना आवश्यक हो।

(७) **सेखिय**––ये वे शैक्ष्य धर्म है, जिनका सम्बन्ध बाहरी शिष्टाचार, वस्त्र पहनने के ढग तथा भोजन आदि करने के नियमो से है। इनमे से अधिकाश तत्कालीन शिष्टाचार को ही व्यक्त करनेवाले है।

(८) **अधिकरणसमथ**––इन नियमो पर सघ मे विवाद होने पर उसकी शान्ति के उपाय के रूप मे सात प्रकार के नियमों का विधान किया गया है।

ग्रन्थों के रूप मे 'पाराजिक' मे चार पाराजिक, तेरह सघादिसेस दो अनियत तथा तीस निस्सग्गियपाचित्तिय विभङ्ग के साथ सगृहीत है और बानबे पाचित्तिय, चार पाटिदेसनीय, पचहत्तर सेखिय और सात अधि-करणसमथ 'पाचित्तिय' मे। इसके अतिरिक्त पाचित्तिय मे ही सम्पूर्ण भिक्षुणी-विभङ्ग भी है। अतएव इन्हे पाराजिक, पाचित्तिय विभङ्ग न कहकर उसे भिक्षु-विभङ्ग, भिक्षुणी-विभङ्ग कहना चाहिए। भिक्षुणी-विभङ्ग छोटा है। जैसे भिक्षु-विभङ्ग मे भिक्षुओ के प्रातिमोक्ष नियमो की व्याख्या है, वैसे ही भिक्षुणी-विभङ्ग मे भिक्षुणियो के नियमो की व्याख्या है।

अपने ग्रन्थ हिन्दी विनयपिटक में (महाबोधि सभा, सारनाथ) मैंने विभङ्ग को व्याख्या और नियमो का इतिहास समझ, इसे छोडकर प्रातिमोक्ष का अनुवाद किया है। सारे 'खन्धक' का अनुवाद किया, पर परिवार को पीछे का प्रकरण ग्रन्थ समझ छोड दिया। प्रातिमोक्ष, प्रति भिक्षु को दोष से मोक्ष (मुक्ति) पाने का व्याख्यान करता है, इसलिए इसका यह नाम पडा।

खन्धक के दो भाग है--महावग्ग, चुल्लवग्ग। महावग्ग के वग्ग (वर्ग) बडे-बडे है, इसलिए उसका यह नामकरण हुआ।

(३) महावग्ग

महावग्ग के नागरी सस्करण मे ३६१ पृष्ठ है, अर्थात् इसमे श्लोक सख्या ७७७० होगी। चुल्लवग्ग मे भी प्राय उसी क्रम से गिनने पर ८५८० श्लोक होगे। इनके अध्यायो को खन्धक (स्कन्धक) कहा गया। उनके नामो से उनके विषय भी मालूम होते है। महावग्ग को मूल सर्वास्तिवादी 'महावस्तु' कहते है। वस्तु का अर्थ कथा या बात है। यह अर्थ मूल थेरवाद मे नही था। पालि विनयपिटक के खन्धक की तुलना सर्वास्तिवाद से निम्न प्रकार है--

महावग्ग—

थेरवाद	सर्वास्तिवाद
१ महाखन्धक	१ प्रव्रज्यावस्तु

२ उपोसथ०	२ उपोसथ०
३ वस्सूपनायिका०	३ वर्षा०
४. पवारणा०	४ प्रवारणा०
५ चम्म०	५. चर्म०
६ भेसज्ज०	६ भैषज्य०
७ कठिन०	७. चीवर०
८ चीवर०	८. कठिन०
९ चम्पेयवत्थु०	९. कौशाम्बक०
१० कोशबक	१० कर्म०
चुल्लवग्ग—	
१ कम्म०	११ पारिवासिक०
२ पारिवासिक०	१२ पुद्गल०
३ समुच्चय०	१३ शमथ०
४ समथ०	१४. प्रातिमोक्षस्थापन०
५ खुद्दकवत्थु०	१५. शयनासन०
६ सयनासन०	१६. अधिकरण०
७ सघभेद०	१७. सघभेद०
८. वत०	
९. पातिमोक्खठपन०	

प्रातिमोक्ष भिक्षु और भिक्षुणी प्रातिमोक्ष के दो भागो में विभक्त है। थेरवाद और सर्वास्तिवाद मे उनके नियमो की संख्या भिन्न प्रकार देखी जाती है—

भिक्षु-नियम	स्थविरवाद	सर्वास्तिवाद
पाराजिक	४	४
संघादिसेस	१३	१३
अनियत	२	२
निस्सग्गियपाचित्तिय	३०	३०

पाचित्तिय	६२	९०
पाटिदेसनिय	४	४
सेखिय	७५	११२
अधिकरणसमथ	७	७
	२२७	२६२
भिक्षुणी-नियम	स्थविरवाद	सर्वास्तिवाद
पाराजिक	८	८
सघादिसेस	१७	२०
निस्सग्गियपाचित्तिय	३०	३३
पाचित्तिय	१६६	१८०
पाटिदेसनिय	८	११
सेखिय	७५	११२
अधिकरणसमथ	७	७
	३११	३७१

चुल्लवग्ग के अतिम तीन स्कन्धक को छोड बाकी सारे सर्वास्तिवाद मे आ गये है। चुल्लवग्ग के अवशिष्ट स्कन्धक क्षुद्रक वस्तु मे आ जाते है। इनके अतिरिक्त वहाँ और भी कितनी ही बाते है, जो पालि-पिटक मे नही है।

महावग्ग के भिन्न-भिन्न स्कन्ध मे निम्न बाते है--

(१) **महास्कन्धक**--आकार मे बडा होने से इसका यह नाम पडा। सर्वास्तिवादी इसे प्रव्रज्यावस्तु कहते है, जो कि अधिक उपयुक्त नाम है। इसमे बुद्ध के बोधि प्राप्त करने के साथ बोधगया मे रहने और बुद्ध की प्रथम यात्रा का वर्णन है। वे वाराणसी ऋषिपतन मृगदाव (सारनाथ) मे जाकर पञ्चवर्गीय भिक्षुओ को दीक्षा देते है। इसी क्रम मे प्रव्रज्या-उपसम्पदा, धर्मचक्र-प्रवर्त्तन भी आये है। प्रव्रज्या-उपसम्पदा की विधि तथा शिष्य और उपाध्याय के कर्त्तव्य आदि का उसके पश्चात् व्याख्यान है, फिर बुद्ध गया और 'गयासीस' (ब्रह्मयोनि) पर्वत पर पहुँचते है और

'आदीप्त-पर्याय' का उपदेश देते है । इस सूत्र मे क्षणिकता के सिद्धात की व्याख्या की गयी है और सबको जलाने वाली आग का दृष्टान्त देकर विषय निरूपित किया गया है ।

बुद्ध गया से चलकर राजगृह पहुँचकर, वहाँ राजा बिबिसार को उपासक बनाते है । वही बुद्ध के अग्रश्रावक 'सारिपुत्त' और 'मोग्गल्लान' आकर भिक्षु बनते हैं । पचवर्गीयो मे से एक अश्वजित् को देख, प्रसन्न हो, सारिपुत्त ने पूछा—"तुम किस धर्म को मानते हो" ? अश्वजित् का उत्तर था—"ये धम्मा हेतुप्पभवा०" वाली गाथा, जो बुद्ध के सिद्धान्तो की निचोड है, और जो बौद्ध देशो मे पत्थर या मिट्टी पर उत्कीर्ण असख्य प्राप्त हुई हैं । उसका अर्थ है—"हेतु से उत्पन्न होने वाली जितनी वस्तुए है, उनको तथागत जानते है, उन का जो निरोध (विनाश) है, उसे भी । यही महाश्रमण का वाद है" । सारिपुत्त और मोग्गलान पहले 'सञ्जय' के प्रधान शिष्य थे, अब बुद्ध के हो गये ।

उस वक्त जिस तरह घर छोडकर लोग बुद्ध के पास प्रव्रजित हो रहे थे, उसे देखकर लोगो ने गाथा व्यक्त की थी—"सञ्जय के सभी चेलो को तो ले लिया । अब (देखे) किसको लेनेवाला है" ?

प्रव्रज्या साधारण रूप से गृहत्याग कर पीले चीवर पहिनने को कहते है, जिसे एक भिक्षु (गुरु) भी दे सकता है । प्रव्रजित को श्रामणेर कहते हैं । उपसम्पदा एक भिक्षु नही दे सकता, वह सघ द्वारा सम्पन्न होती है । दोनों मे माता-पिता की आज्ञा लेनी होती है । दोनो के लिए व्यक्ति किस प्रकार का होना चाहिए आदि बातें भी इसी अध्याय मे आती हैं ।

(२) **उपोसथस्कन्धक**—विशेष दिनो मे उस समय के सभी साधु अपने धर्म के अनुसार धर्मानुष्ठान करते थे । बौद्ध-भिक्षुओं के लिए भी यह आवश्यक हो गया—उपोसथ का विधान, उपोसथागार का निर्माण, चतुर्दशी, अमावस्या, पञ्चदशी, पूर्णिमा—दो दिन उपोसथ का निश्चय करना । उपोसथ मे सारे उपसम्पन्न (भिक्षुओ) को एकत्रित हो प्राति-

मोक्षसूत्र (शिक्षापदो) को बाचना (पारायण) पडता तथा दोषो का प्रतीकार करना होता। अमावस्या एव पूर्णिमा की जानकारी के लिए काल और अक की विद्या (ज्योतिष और गणित) जानना आवश्यक है और इसका भी विधान है।

(३) **वर्षोपनायिकास्कन्धक**--इसमे निम्न बाते बतलायी गयी है--"वर्षा मे यात्रा करने पर दूसरे तैर्थिक कहते है--शाक्यपुत्रीय श्रमण तो तृणो को मर्दते वर्षा मे भी विचरण करते है।" इसलिए भगवान् ने कहा--"अनुमति देता हूँ, वर्षा मे वर्षावास करने की।" ऋतुओ के जानने के लिए राजकीय अधिकमास को मान लिया। डेरा लेकर घूमने वाले घुमतुओ के साथ वर्षावास करने पर उनके साथ घूमा करते थे।

(४) **प्रवारणास्कन्धक**--वर्षा जिस तिथि से शुरू होती है, उसे वर्षोपनायिका कहते है और जिस दिन वर्षावास खतम होता, उस आश्विन पूर्णिमा को प्रवारणा। प्रवारणा के दिन गृहस्थ लोग चौमासा काटकर अपने यहाँ से जानेवाले भिक्षुओ को जो नाना वस्तुए भेट करते थे--इसी को प्रवारणा कहते थे। सघ भी उस दिन प्रवारणाकर्म करता।

(५) **चर्मस्कधन्क**--इसमे चर्म की वस्तुओ, विशेष कर जूतो के उपयोग के नियम कहे गये है। इसी मे एक बहुत धनी सेठ के पुत्र--बीस करोड़ का स्वामी होने से जिसका नाम ही 'सोणकोटिवीस' पड गया था--को भगवान् ने बहुत कडा अभ्यास करने पर वीणा के तार का दृष्टान्त देते दोष बतलाया। न अत्यन्त ढीले, न अत्यन्त कडे वीणा के तार उसको स्वरवाली तथा कामलायक नही बनाते। यही अर्हत् का वर्णन है कि निष्कामता से युक्त, विवेकयुक्त चित्तवाले, उपादानक्षयवाले, तृष्णा के क्षय से मुक्त आदि पुरुष का चित्त आयतनो की उत्पत्ति को देखकर मुक्त होता है, यह पदार्थ अनित्य है और वे अर्हत् को कपित नही करते। भिक्षुओ को एकतल्ले का जूता (चप्पल) पहनना चाहिए। पुराना हो तो कई तल्ले का भी पहना जा सकता है। गुरु के नंगा पैर होने पर जूता

नही पहनना चाहिए । चारपाई, चौकी के भी नियम इसी स्कन्धक मे है, साथ ही सवारी आदि का भी निषेध किया गया है । मध्य-देश के बाहर कुछ सुविधाए, कुररघर (मालवा) मे निवास करनेवाले सोणकुटिकण्ण की प्रार्थना पर दी गयी है । यही मध्यम जनपद की सीमा बतायी गयी है-- पूर्व मे कजगल (ककजोल, सथाल परगना) से पश्चिम मे थूण (थानेश्वर) नामक ब्राह्मण ग्राम तक, उत्तर मे उशीरध्वज (हिमालय का कोई पर्वत) से लेकर दक्षिण मे श्वेतकर्णिक निगम तक । मध्यमडल से बाहर पाँच भिक्षुओ का गण (कोरम) उपसम्पदा कर सकता है ।

(६) **भैषज्यस्कन्धक**--प्रधान भैपज्य को बतलाने से बुद्ध को भैपज्य-गुरु कहा गया । दवाइयो मे थी--चर्बी की, मूल की, कषाय की, पत्ते की, फल की, गोद की, लवण के चूर्ण की, मास और कच्चे खून की । अजन, सीग से खून निकालना, मलहम-पट्टी, सर्प-चिकित्सा, विष-चिकित्सा, पाण्डुरोग-चिकित्सा का भी विधान यहाँ विद्यमान है । इसी स्कन्धक मे आराम मे चीजो को ठीक से रखने तथा सेवक रखने आदि का भी विधान किया गया है । इसी मे उन मासो को निषिद्ध कर दिया गया है, जो उस समय भारत के शिष्ट समाज मे नही खाये जाते थे या जिसको खाते देख लोग नुकताचीनी अथवा सामाजिक बायकाट करते थे । अभक्ष्य मास इन जन्तुओ के थे--साँप, सिह, व्याघ्र, लकडबग्घा, चीता, भालू आदि का । यही पर भगवान् का उस समय पाटलिग्राम (पटना) मे आना लिखा है, जब मगधमहामात्य सुनीथ और वर्षकार गगा के किनारे नगर बसा रहे थे । पाटलिग्राम से वैशाली जाने पर सिह-सेनापति से भेट और उसका त्रिशरण-परायण होना भी यही पर वर्णित है ।

(७) **कठिनस्कन्धक**--प्रवारणा (आश्विनपूर्णिमा) के दिन एक विशेष चीवर देकर किसी एक भिक्षु को उपासक सम्मानित करते थे । उसी चीवर को 'कठिन' कहते थे, उसी के नियम यहाँ है । इसी से इस स्कधक का यह नाम पड़ा ।

(८) **चीवरस्कन्धक**—यहाँ चीवर की बाते हैं। पहले वैद्य जीवक का संक्षिप्त चरित दिया हुआ है। जीवक के पास एक क्षौम (अलसी की छाल का) सुन्दर थान काशिराज ने भेजा था। उसी को जीवक ने भगवान् को देना चाहा। आगे चीवर के बाँटने, सुखाने, उनकी सख्या आदि तथा बिछौने की चादर आदि का उल्लेख है। इसी अध्याय में पाखाने-पेशाब मे सने रोगी भिक्षु को बुद्ध ने अपने हाथ से नहला कर भिक्षुओं से कहा—"भिक्षुओ, न तुम्हारे माता है, न पिता है, जो कि तुम्हारी सेवा करेगे। यदि तुम एक दूसरे की सेवा नही करोगे, तो कौन करेगा? भिक्षुओ, जो मेरी सेवा करना चाहे, वह रोगी की सेवा करे।" यहाँ पर यह भी विधान है कि मृत भिक्षु की चीजों का मालिक श्रमणो का सघ है।

(९) **चम्पेय्यस्कन्धक**—चम्पा मे कहे गये इस स्कन्ध मे दो दोष और उनके प्रतिकारो की बाते हैं। निर्दोष को हटाना ठीक नही। अकर्म (विधि विरुद्ध बात) न करके सघ में एक साथ मिलकर फैसला करना चाहिए। वर्ग (कोरम) पूरा करने का उपाय तथा तर्जनीय एव प्रव्राजनीय आदि नियमो का भी यहाँ पर उल्लेख है।

(१०) **कौशम्बकस्कन्धक**—यहाँ पर कौशाम्बी के घोषिताराम की बाते है। एक भिक्षु शौच के लिए बचे जल को पात्र मे ही छोड आया, जबकि उसको उसे फेंक देना चाहिए था। इसी को लेकर विवाद बढा। दोनो पक्षो के समर्थक पैदा हो गये और सारे घोषिताराम मे वैमनस्य फैल गया। वे बुद्ध के समझाने पर भी नही माने और बुद्ध सबको छोडकर अकेले चले गये। इसी प्रसग मे यही राजा दीघिति (कोसलराज) और ब्रह्मदत्त (काशिराज) की कथा आयी है।

ब्रह्मदत्त ने कोसलराज को जीत लिया था। कालातर मे कोसलराज के पुत्र दीर्घायु कुमार ने ब्रह्मदत्त को जीता। दीर्घायु कुमार ने कहा—"तुमने हमारी सेना, देश, कोष, और कोष्ठागार को छीन लिया था; तुमने

मेरे माता-पिता को मार डाला; यही समय है, कि मैं अपने पुराने वैर का बदला लूँ।"

इस पर काशिराज ब्रह्मदत्त दीर्घायु के पैरों मे पड़कर बोला—"तात दीर्घायु, तुम मुझे जीवन-दान दो" !

"देव को जीवन-दान दे सकता हूँ, देव भी मुझे जीवन दान दें"।

दोनों ने एक दूसरे को जीवन दान दिया। एक ने दूसरे का हाथ पकड कर द्रोह न करने की शपथ ली।

कथा सुनने पर भी झगडनेवाले भिक्षुओं ने कहा—"भन्ते, भगवान् धर्मस्वामी रहने दें, परवाह न करें, आप सुख से विहार करें, हम झगडे को देख लेगे।"

महावग्ग का यह सक्षेप है।

(४) चुल्लवग्ग

इसमें ४३१ पृष्ठ अर्थात् प्राय ८५८० श्लोक ग्रन्थ है। यह भी बारह स्कन्धों मे विभाजित है, जिसका सक्षेप इस प्रकार है—

(१) **कर्मस्कन्धक**—इसमे प्रतिसारणीय, तर्जनीय, उत्क्षेपणीय, प्रव्राजनीय (हटाने) आदि कर्मों की बाते हैं।

(२) **पारिवासिकस्कन्धक**—परिवास, मूल से प्रतिकर्षण, मानत्व, आह्वान आदि दडो की बात इस स्कन्धक मे है। इसी के प्रसग मे कहा गया है कि पारिवासिक भिक्षुओं को दूसरे भिक्षु का अभिवादन नही स्वीकार करना चाहिए।

(३) **समुच्चयस्कन्धक**—इसमे कुछ दडों (कर्मों) के सम्बन्ध में उल्लेख है। कर्मों का समुच्चय होने से इस स्कन्धक का यह नाम पडा।

(४) **शमथस्कन्धक**—अधिकरण (मुकदमे) में फैसलों को शमथ कहते हैं। जो इस प्रकार के होते हैं—(१) स्मृतिविनय (याद करने के शेष को मानना), (२) अमूल विनय (बिना होश मे दोष मानना), (३) प्रतिज्ञातकरण (स्वीकार करना), (४) तृणविस्तारक (झगड़े पर तिनका-सा ढाक देना)।

(५) **क्षुद्रकवस्तुस्कन्धक**—वस्तु शब्द का प्रयोग यह बतलाता है कि सर्वास्तिवादियों का विनय-वस्तु नाम सार्थक है। इस स्कन्धक में स्नान, आभूषण, लेप, नाच-तमाशा, पात्र, तथा विहार-निर्माण सम्बन्धी बातों का उल्लेख है। यही पर बुद्धवचन को छान्दस (वैदिक भाषा) मे आरोपित करने की मनाही की गयी है। वह इस प्रकार है—

उस समय यमेळ, यमेळतेकुल नामक ब्राह्मण जाति के सुन्दर (कल्याण) वचन बोलने वाले दो भाई थे। वे भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये और जाकर अभिवादनादि करके उनसे बोले—"भन्ते, इस समय नाना नाम, गोत्र, जाति, कुल के पुरुष प्रव्रजित होते है। वे अपनी भाषा मे बुद्धवचन को कहकर उसे दूषित करते है। अच्छा हो, भन्ते, हम बुद्धवचन को छन्द मे बना दे।"

भगवान् ने उन्हे फटकारा और धार्मिक कथा कह भिक्षुओं को संबोधित किया—"भिक्षुओ, बुद्धवचन को छन्द मे नही करना चाहिए, जो करे उसे 'दुक्कट' का दोष होगा। भिक्षुओ, मै अनुमति देता हूँ, अपनी भाषा मे बुद्ध-वचन को बाँचने-सीखने की।"

आराम के पेशावखाना, पाखाना, बर्तन, चारपाई, तथा वृक्षारोपण आदि के नियम भी यहाँ दिये गये है।

(६) **शयनासनस्कन्धक**—इसमे विहार के भीतर के सामान-सम्बन्धी नियम है। यहाँ पर कई तरह की चारपाइयो, चौकियाँ, विहार की रगाई, नाना प्रकार के (घर) आलिंद, ओसारा, उपस्थानशाला, पानी घर, परिवेण (आगन) आदि का विधान है। नवकर्म (नया मकान बनवाना) आदि का भी उल्लेख यही पर है।

सम्मानार्थ अग्रपिंड देने की बात करते हुए भगवान् ने तित्तिर जातक की कथा सुनायी—हिमालय के पास एक बड़ा बरगद था, जिसके आश्रय तित्तिर, बानर तथा हाथी ये तीन मित्र रहते थे। तीनो मे जिज्ञासा हुई-हममे कौन जेठा है, जिससे हम उसका तदनुरूप सत्कार करे। उनमे से

और तो बरगद से पीछे पैदा हुए थे। इस सम्बन्ध में तित्तिर ने यह कहा कि उसने किसी का फल खाकर विष्टा कर दिया था, जिसके बीज से वह बरगद पैदा हुआ था। इस प्रकार से मालूम हुआ कि वही सबसे जेठा है। यह कह कर बुद्ध ने कहा—"भिक्षुओ, वृद्धपन के अनुसार अभिवादन, प्रत्युत्थान हाथ-जोडना, कुशल-प्रश्न, प्रथम आसन, प्रथम जल तथा प्रथम भोजन ठीक है।"

इसी स्कन्धक मे जेतवन के स्वीकार करने की बात तथा विहार की चीजों की बाते है। पाँच चीजे अविभाज्य बतायी गयी है। बाँटने पर भी वे अविभक्त ही रहती है—

(१) आराम या आराम-वस्तु, (२) विहार या विहार-वस्तु, (३) मंच, पीढा, गद्दा, तकिया, (४) लौहकुंभ, लौहभाण्डक, लौह कडाही, बसूला, फावडा, कुदाल, (५) रस्सी, बल्ली, बाँस, मूँज, तृण, मिट्टी, लकडी का बर्तन, मिट्टी का बर्तन। इसमे सघ के कर्मचारियो—भोजन-अधिकारी, शयनासन-प्रज्ञापक, भडारी, चीवर-प्रतिग्राहक, चीवर-भाजक, यवागु-भाजक, फल-भाजक, खाद्य-भाजक आदि के चुनने की बात है।

(७) संघभेदकस्कन्धक—इसमे एक साथ प्रव्रजित हुए अनुरुद्ध आदि शाक्यपुत्रो, देवदत्त और उपालि हजाम की कथा है। पीछे लाभ-सत्कार के लिए देवदत्त को महत्त्वाकाक्षाएं बढ़ी। बुद्ध ने साथ नहीं दिया तो देवदत्त विरोधी हो गया, और पत्थर मार कर उसने बुद्ध के पैर में चोट पहुँचायी; नालागिरि नामक मस्त हाथी छुडवाया; संघ में फूट डालने की कोशिश की। देवदत्त सघ से अलग हो गया और उसका पतन हुआ। इसमे आगे चल कर देवदत्त के पतन का कारण तथा सघ-भेद की व्याख्या आदि प्रस्तुत है।

(८) व्रतस्कन्धक—इसमे ये व्रत (कर्तव्य) बतलाये गये है—आगन्तुक (अतिथि), आवासिक (निवासी), गमिक (जानेवाले) भिक्षु-व्रत, फिर, भोजन-सम्बन्धी नियम, भिक्षाचारी और आरण्यक के व्रत,

आसन, स्नान-गृह तथा पाखाने के नियम, शिष्य, उपाध्याय, अन्तेवासी आचार्य के कर्तव्य ।

(९) **प्रातिमोक्षस्थापनस्कन्धक**—इसमे यह उल्लेख है कि किसका प्रातिमोक्ष स्थगित करना चाहिए और इसी विषय मे नियम-विरुद्ध और नियमानुसार प्रातिमोक्ष के स्थगन पर विचार किया गया है ।

(१०) **भिक्षुणीस्कन्धक**—भिक्षुणी की प्रव्रज्या-उपसम्पदा तथा उन्हे भिक्षुओं का अभिवादन आदि करना चाहिए, इन सबका उल्लेख यहाँ पर है । भिक्षुणी उपसम्पदा कैसे शुरू हुई तथा इसके लिए महा-प्रजापती गौतमी ने क्या किया, यह भी यही पर वर्णित है । आठ गुरु धर्मों को प्रजापती ने स्वीकार किया, तब उनकी उपसम्पदा हुई । भिक्षु-णियो के सघकर्म तथा अधिकरण-शमथ और दूसरी कुछ विशेष बाते भी यहाँ बतलायी गयी है, उदाहरणार्थ, मुख-लेप, चूर्ण, आदि । भिक्षुणियो को उपसम्पदा, पहले भिक्षुणी-सघ मे फिर भिक्षु-सघ मे लेनी पडती है । आज थेरवादी देशो मे भिक्षुणी-सघ नही है, इसलिए कोई स्त्री भिक्षुणी नही बन सकती । चीन मे सिंहल की भिक्षुणी 'देवसारा' ने पाँचवी सदी मे जाकर भिक्षुणी-सघ को स्थापित किया था, जो अब भी है । थोडी-सी उदार व्याख्या करके वहाँ से भिक्षुणी-सघ अब भी सिंहल मे लाया जा सकता है । अरण्यवास भिक्षुणियो के लिए निषिद्ध है । उनके निवास-निर्माण, गर्भिणी प्रव्रजिता की सन्तान का पालन आदि के सम्बन्ध मे भी यहाँ पर व्याख्यान विद्यमान है ।

(११) **पञ्चशतिकास्कन्धक**—बुद्ध-निर्वाण ४८७ ई० पू० की वैशाख पूर्णिमा को हुआ । उसी के आषाढ़ मे पाँच सौ भिक्षुओं ने महाकाश्यप की अध्यक्षता मे राजगृह मे जमा हो बुद्धवचनो का सगायन किया । इसी को प्रथम सगीति कहते है और उसी का यहाँ वर्णन है । बुद्ध के निर्वाण पर भिक्षुओ ने शोक प्रकट करना शुरू किया । संगायन के लिए पहले आनन्द को नही चुना गया, क्योकि वे अर्हत् नही थे, पर फिर वह भी अर्हत् पद प्राप्त करने पर सम्मिलित किये गये, क्योकि आनन्द ने भगवान् के

पास से बहुत धर्म (सूत्र) और विनय सुने थे। अभिधम्म का यहाँ कोई उल्लेख नही है।

आनन्द से महाकाश्यप ने धर्म (सूत्र) की प्रामाणिकता के बारे में पूछा और उपालि से विनय के बारे मे। उनके समर्थित वचनों को सम्पूर्ण पाँच सौ के सघ ने सगायन किया। इसमे जो पाठ सगीत हुआ, वह मौखिक ही रहा।

आयुष्मान् पुराण सगीति के वक्त दक्षिणागिरि (राजगृह के दक्षिण के पहाड़ो) मे थे। वे नहीं आये। और उन्होने सगीति के पाठ से अपने पाठ को नही बदला। भिक्षुओ के कहने पर उन्होने कहा—"आवुस, स्थविरो ने धर्म और विनय का सुन्दर रूप से सगायन किया है तो भी मैंने जैसा भगवान् के मुँह से सुना है, मुख से ग्रहण किया है, वैसा ही धारण करूँगा।"

यही पर कौशाम्बी के राजा उदयन के रनिवास की रानियो का आनन्द को बहुत-से वस्त्र-दान देने की बात को तथा अचिकित्स्य छन्न को ब्रह्मदण्ड देने का उल्लेख है।

(१२) **सप्तशतिकास्कन्धक**—बुद्ध निर्वाण के सौ वर्ष बाद ३८७ ई० पूर्व में यह सगीति वैशाली मे हुई थी, जिसमें सात सौ स्थविर शामिल हुए थे। इसलिए इसका नाम सप्तशतिका पड़ा। आयुष्मान् यश ने वैशाली के भिक्षुओ को पैसा लेने का काम करते देखा, जो विनय-विरुद्ध था। लेकिन वहाँ पर बहुमत से यश दण्डित किया गया। इस पर यश बौद्ध-भिक्षु-जगत् की सहायता के लिए निकले। वैशाली के भिक्षुओ ने भी इस सम्बन्ध मे प्रयत्न किया। आनन्द के शिष्य सर्वकामी सबसे बूढ़े थे। वे यश के पक्ष मे हुए। वैशाली में ही यह संगीति हुई। बृहत् संघ में हल्ला-गुल्ला होने से उद्वाहिका (प्रवर समिति) चुनी गयी, जिसके सामने पहले वे दसो सवाल पूछे गये, जिनके बारे मे झगड़ा था। जब उसने कह दिया—"निषिद्ध है", तब वही बातें बड़े सघ के सामने रखी गयीं।

ये बातें थीं—

१. सींग में नमक इस अभिप्राय से रखना कि जब नमक कम होगा तो भोजन में डाला जायेगा।

२. मध्याह्न की छाया के दो अंगुल बढ़ जाने पर भी भोजन करना।

३. ग्रामातर में असमय प्रवेश।

४. आवासकल्प०

५. अनुमतिकल्प०

६. आचीर्णकल्प०

७. अमथितकल्प०

८. जलोगीपानकल्प०

९. बिना पाड का बिछौना

१० सोना-चाँदी लेना।

संघ के बीच में ये बाते आयुष्मान् रेवत ने आयुष्मान् सर्वकामी से पूछा, तो सर्वकामी ने नही मे जवाब दिया। इस विनय-सगीति मे न कम, न बेशी सात सौ भिक्षु थे, इसलिए यह विनय-सगीति सप्तशतिका कही जाती है।

इस तरह विनय की सारी बाते पाराजिक, पाचित्तिय महावग्ग और चुल्लवग्ग मे आ गयी है। इन्ही की बाते विनयपिटक के पाँचवे ग्रन्थ 'परिवार' मे भी है, जो कि सिंहल की कृति है।

(५) परिवार

३९६ पृष्ठ तथा ७९२० श्लोको के प्रमाण का यह ग्रन्थ सिहल मे रचा गया था। इस सम्बन्ध मे स्पष्ट उल्लेख है—

"पुब्बाचरियमग्गञ्च पुच्छित्वा वा तहि तहि।
दीप नाम महापञ्ञो सुतधरो विचक्खणो।।
इदं वित्थारसखेप सज्झायमग्गेन मज्झिमे।
चिन्तयित्वा लिखापेसि सिस्सकानं सुखावहं।।

इससे तो साफ ही जाहिर है कि 'दीप' नामक श्रुतधर ने इसे सिहल में लिखवाया।

भिक्षु जगदीश काश्यप ने नागरी संस्करण की अपनी भूमिका में लिखा है—

इसमें छोटे-बड़े कुल इक्कीस परिच्छेद हैं। विषय-विभाजन की दृष्टि से न तो इसमे कोई क्रम है, और न कोई एकरूपता। किसी विशेष तारतम्य की दृष्टि से इसका संकल्प हुआ हो, सो भी बात नहीं दीखती। प्रत्येक परिच्छेद अपने में पूरा है, जो विषय के किसी एक पहलू पर विचार करता है।"

इसमे परिच्छेद ये है—(१) भिक्खुविभङ्ग, (२) भिक्खुनी-विभङ्ग, (३) समुट्ठानसीससङ्खेप, (४) अन्तरपेय्याल, (५) समथभेद (६) खन्धकपुच्छावार, (७) एकुत्तरिकनय, (८) उपोसथादिपुच्छा-विस्सज्जना, (९) अत्थवसपकरण, (१०) गाथासङ्गणिक, (११) अधिकरणभेद, (१२) अपरगाथासङ्गणिक, (१३) चोदनाकण्ड, (१४) चूळसङ्गाम, (१५) महासङ्गाम, (१६) कठिनभेद, (१७) उपालिपञ्चक, (१८) अत्थापत्तिसमुट्ठान, (१९) दुतियगाथासङ्गणिक, (२०) सेद-मोचनगाथा, (२१) पञ्चवग्ग।

इसकी शैली प्रश्नोत्तर की है, जैसे—भगवान् ने इस शिक्षापद का उपदेश कहाँ, किसको और किस प्रकरण मे दिया ? क्या इसमे 'प्रज्ञप्ति', 'अनु-प्रज्ञप्ति' और 'अनुत्पन्नप्रज्ञप्ति' है आदि ?

इसी प्रकरण मे विनय की गुरु-परम्परा बतलायी गयी है (१) उपालि, (२) दासक, (३) सोणक, (४) सिग्गव, (५) मोग्गलिपुत्त, ये पाँच जम्बुद्वीप के श्रेष्ठ और तब (६) महिन्द (७) इट्ठिय, (८) उत्तिय, (९) सम्बल, तथा भद्रनामक पंडित —ये महाप्राज्ञ जम्बुद्वीप से यहाँ (लंका) आये। उन्होंने ताम्रपर्णी (लंका) में विनय और पिटक का पाठ करवाया तथा पांचों निकायों का पाठ कराया और सात अभिधम्म के प्रकरणों का भी। उसके बाद (१०) अरिट्ठ, (११) काळसुमन, (१२) दीर्घनामक थेर, (१२) बुद्धरक्खित, (१३) तिस्सथेर, (१५) देवथेर

आदि—इस प्रकार से इन महाप्राज्ञ तथा विनय के मार्गकोविदो ने विनय-पिटक को ताम्रपर्णी द्वीप में प्रकाशित किया ।

पूर्व क्रम से प्रश्न-उत्तर के रूप मे विनयवाले बहुत-से प्रश्नो को उठाकर परिवार मे उत्तर दिया गया है ।

—:o:—

सातवाँ अध्याय

अभिधम्मपिटक

प्रथम तथा द्वितीय दोनो संगीतियों के वर्णन मे 'धम्म' तथा 'विनय' के ही सगायन की चर्चा है । इससे यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि पहले दो ही पिटक थे और अभिधम्मपिटक पीछे का है । इसके मूल को पहले 'मातिका' कहा जाता था । सर्वास्तिवाद स्थविरवाद का ही एक सम्प्रदाय था और स्थविरवाद के पालिपिटक को ही बहुत थोड़े-से भेद के साथ उन्हीं नामो से सस्कृत मे करके उसे सर्वास्तिवादपिटक नाम दे दिया गया है । सुत्तपिटक के सम्पूर्ण निकायो (आगमो) के दीर्घागम आदि नाम ही नही, बल्कि उनके सूत्रो के भी वही नाम सर्वास्तिवादपिटक मे मिलते हैं । विनयपिटक के सम्बन्ध मे भी वही स्थिति है । पर अभिधम्मपिटक के ग्रन्थ दोनो मे भिन्न-भिन्न हैं और यह भी यही सिद्ध करता है कि तृतीय सगीति के समय तक दो ही पिटक थे, तृतीय पिटक (अभिधम्मपिटक) उसके बाद अस्तित्व मे आया । डाक्टर लाहा ने अभिधम्मपिटक के ग्रन्थो को निम्न क्रम मे रखा है—

१ पुग्गलपञ्ञत्ति
२. विभङ्ग
३. धम्मसगणि
४. धातुकथा
५. यमक
६. पट्ठान
७. कथावत्थु

सर्वास्तिवादी अभिधम्म के अन्तर्गत निम्नलिखित सात ग्रन्थों की गणना करते हैं, जिनमे 'ज्ञानप्रस्थान' मुख्य है—

ग्रन्थ	कर्ता
१. ज्ञानप्रस्थानशास्त्र	आर्य कात्यायन
२. प्रकरणपाद	स्थविर वसुमित्र
३. विज्ञानकायपाद	स्थविर देवशर्मा
४. धर्मस्कन्धपाद	आर्य शारिपुत्र
५. प्रज्ञप्तिशास्त्रपाद	आर्य मौद्गल्यायन
६. धातुकायपाद	पूर्ण या (वसुमित्र)
७. संगीतिपर्यायपाद	महाकौष्ठिल (या शारिपुत्र)

अभिधम्म धर्मों (सूत्रों) का दार्शनिक रूप है। सर्वत्र ही दर्शन-निर्माण का प्रारम्भिक प्रयत्न शब्द और भाषा के अल्पविकसित होने के कारण रूखा ही होता है। इसके सम्बन्ध में हम उपनिषदो को ले सकते है। यहाँ पर तो कथोपकथन के क्रम ने उन्हे कुछ सरस बनाने का प्रयास किया है, पर इनकी तुलना मे 'अभिधम्म' तो भारी रेगिस्तान-सा ज्ञात होता है। इसे सुगम बनाने का प्रयत्न चौथी सदी मे आचार्य वसुबन्धु ने सर्वास्तिवाद के लिए किया। 'थेरवाद' (स्थविरवाद) के लिए वही कार्य 'अभिधम्मावतार' तथा 'अभिधम्मत्थसगह' आदि ग्रन्थो ने उसी समय के आसपास किया। अभिधम्मपिटक स्वय मे अतिविशाल है और उसे अत्यन्त सक्षिप्त करके देना कठिन है। अतएव अब तक लिखे गये पालि साहित्य के इतिहास-ग्रन्थो के आधार पर सक्षिप्त करके उसे नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है——

१. धम्मसंगणि

इस ग्रन्थ को 'अभिधम्म' का मूल माना जा सकता है। पुरानी परम्परा मे सुत्तधर, विनयधर तथा मातिकाधर आदि का जो उल्लेख आता है, वह मातिका इस ग्रन्थ मे सगृहीत मातिका ही थी। इसमे नाम (मन या मानसिक) तथा रूप जगत् की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है और यह व्याख्या कर्मों के कुशल, अकुशल तथा अव्याकृत रूपो तथा उनके विपाको आदि को ध्यान मे रखकर की गयी है। यह व्याख्या नैतिक है और दूसरे शब्दो मे इसे हम बौद्ध नीतिवाद की मनोवैज्ञानिक व्याख्या कह सकते हैं, क्योंकि

इसमें चित्त तथा चैतसिक धर्मों का कुशल, अकुशल तथा अव्याकृत रूप मे विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है ।

मातिकाओं का १२२ वर्गीकरण यहाँ पर है, जिसमे से २२ तो तीन-तीन के शीर्षको मे विभक्त करके दी गयी है और शेष १०० दो-दो के शीर्षको में । ये ही क्रमश 'तिक' तथा 'दुक' कहलाते है । इन्हीं तिकों तथा दुकों के द्वारा धर्मों का सम्पूर्ण विश्लेषण धम्मसंगणि मे किया गया है । यह प्रणाली अभिधम्मपिटक के अन्य ग्रन्थो मे भी अपनायी गयी है । नीचे २२ तिको का विवरण दिया जाता है––

(१) तिक

१. (अ) जो धम्म कुशल है ।
(आ) जो धम्म अकुशल है ।
(इ) जो धम्म अव्याकृत है ।

२. (अ) जो धम्म सुख की वेदना से युक्त है ।
(आ) जो धम्म दुख की वेदना से युक्त है ।
(इ) जो धम्म न सुख, न दुख की वेदना से युक्त है ।

३. (अ) जो धम्म चित्त की कुशल या अकुशल अवस्थाओ के स्वयं परिणाम है ।
(आ) जो धम्म स्वय चित्त की कुशल या अकुशल अवस्थाओ को पैदा करनेवाले है ।
(इ) जो धम्म न किसी के स्वय परिणाम है और न परिणाम पैदा करनेवाले है ।

४. (अ) जो धम्म पूर्व कर्म के परिणाम-स्वरूप प्राप्त किये गये हैं और जो स्वय भविष्य मे ऐसे ही धर्मो को पैदा करनेवाले है ।
(आ) जो धम्म पूर्व कर्म के परिणाम-स्वरूप नही किये गये, किन्तु जो भविष्य में धम्मो को पैदा करनेवाले हैं ।
(इ) जो धम्म न तो पूर्व कर्म के परिणाम-स्वरूप प्राप्त ही किये गये है और न जो भविष्य में धम्मों को पैदा करनेवाले हैं ।

५. (अ) जो धम्म स्वयं अपवित्र हैं और अपवित्रता के आलम्बन भी बनते है ।
   (आ) जो धम्म स्वयं अपवित्र नही हैं, किन्तु अपवित्रता के आलम्बन बनते हैं ।
   (इ) जो धम्म न स्वयं अपवित्र है और न अपवित्रता के आलम्बन ही बनते है ।

६. (अ) जो धम्म वितर्क और विचार से युक्त है ।
   (आ) जो धम्म वितर्क से तो नही, किन्तु विचार से युक्त हैं ।
   (इ) जो धम्म न तो वितर्क और न विचार से ही युक्त है ।

७. (अ) जो धम्म प्रीति की भावना से युक्त है ।
   (आ) जो धम्म सुख की भावना से युक्त है ।
   (इ) जो धम्म उपेक्षा की भावना से युक्त है ।

८. (अ) वे धम्म जिनका दर्शन के द्वारा नाश किया जा सकता है ।
   (आ) वे धम्म जिनका अभ्यास के द्वारा नाश किया जा सकता है ।
   (इ) वे धम्म जो न दर्शन और न अभ्यास से ही नष्ट किये जा सकते है ।

९. (अ) वे धम्म जिनके हेतु का विनाश दर्शन से किया जा सकता है ।
   (आ) वे धम्म जिनके हेतु का विनाश अभ्यास से किया जा सकता है ।
   (इ) वे धम्म जिनके हेतु का विनाश न दर्शन से और न अभ्यास से ही किया जा सकता है ।

१०. (अ) वे धम्म जो कर्म-संचय के कारण होते है ।
   (आ) वे धम्म जो कर्म-सचय के विनाश के कारण बनते हैं ।
   (इ) वे धम्म जो न कर्म-सञ्चय और न उसके विनाश के कारण बनते हैं ।

११. (अ) वे धम्म जो शैक्ष्य-सम्बन्धी हैं ।
   (आ) वे धम्म जो शैक्ष्य-सम्बन्धी नही है ।
   (इ) वे धम्म जो उपर्युक्त दोनो प्रकार से विभिन्न है ।

१२. (अ) वे धम्म जो अल्प आकारवाले है।
(आ) वे धम्म जो महा आकारवाले है।
(इ) वे धम्म जो अपरिमेय आकारवाले है।

१३. (अ) वे धम्म जिनका आलम्बन अल्प आकारवाला है।
(आ) वे धम्म जिनका आलम्बन महा आकारवाला है।
(इ) वे धम्म जिनका आलम्बन अपरिमेय आकारवाला है।

१४. (अ) वे धम्म जो हीन हैं।
(आ) वे धम्म जो मध्यम है।
(इ) वे धम्म जो उत्तम है।

१५. (अ) वे धम्म जो निश्चयपूर्वक बुरे है।
(आ) वे धम्म जो निश्चयपूर्वक अच्छे है।
(इ) वे धम्म जिनका स्वरूप अनिश्चित है।

१६. (अ) वे धम्म जिनका आलम्बन मार्ग है।
(आ) वे धम्म जिनका हेतु मार्ग है।
(इ) वे धम्म जिनका मुख्य उद्देश्य ही मार्ग है।

१७. (अ) वे धम्म जो उत्पन्न हो चुके है।
(आ) वे धम्म जो अभी उत्पन्न नही हुए है।
(इ) वे धम्म जो भविष्य मे पैदा होनेवाले है।

१८. (अ) वे धम्म जो अतीत है।
(आ) वे धम्म जो अनागत है।
(इ) वे धम्म जो प्रत्युत्पन्न है।

१९. (अ) वे धम्म जिनका आलम्बन अतीत है।
(आ) वे धम्म जिनका आलम्बन अनागत है।
(इ) वे धम्म जिनका आलम्बन प्रत्युत्पन्न है।

२०. (अ) वे धम्म जो किसी व्यक्ति के अन्दर अवस्थित हैं।
(आ) वे धम्म जो किसी व्यक्ति के बाहर अवस्थित हैं।

(इ) वे धम्म जो किसी व्यक्ति के अन्दर और बाहर दोनों जगह अवस्थित हैं।

२१. (अ) वे धम्म जिनका आलम्बन कोई आन्तरिक वस्तु है।

(आ) वे धम्म जिनका आलम्बन कोई बाह्य वस्तु है।

(इ) वे धम्म जिनका आलम्बन आन्तरिक और बाह्य दोनों वस्तुएँ है।

२२. (अ) वे धम्म जो दृश्य है और इन्द्रिय तथा उसके विषय के सन्निकर्ष से उत्पन्न होनेवाले हैं।

(आ) वे धम्म जो दृश्य नही है, किन्तु इन्द्रिय तथा उसके विषय के सन्निकर्ष से उत्पन्न होनेवाले हैं।

(इ) वे धम्म जो न तो दृश्य है और न इन्द्रिय तथा उसके विषय के सन्निकर्ष से उत्पन्न होनेवाले है।

(२) **दुक**—इसी प्रकार से १०० दुको के द्वारा भी धम्मो का विश्लेषण यहाँ पर प्रस्तुत है, जिनमे हेतु, आस्रव, सयोजन, ग्रन्थ, ओघ, नीवरण, परामर्श, उपादान, क्लेश आदि वर्गों मे इनका विश्लेषण किया गया है। धम्मो के १२२ प्रकार से वर्गीकरण इसी उपर्युक्त रूप मे है।

इन वर्गीकरणो मे प्रथम तिक द्वारा कुशल, अकुशल तथा अव्याकृत रूप में विद्यमान वर्गीकरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योकि यहाँ पर कर्मों का आधार पूर्णतया नैतिक दृष्टि ही है। शेष वर्गीकरण तो इसी के पूरक स्वरूप है।

२. विभङ्ग

यह इस पिटक का दूसरा ग्रन्थ है। आरम्भ मे विभङ्ग व्याख्या को कहते थे, जैसे प्रातिमोक्ष की व्याख्या विभङ्ग कही जाती थी। इसमे स्कन्धों का विवरण दिया गया है। बौद्ध मान्यता के अनुसार आत्मा वस्तुतः कोई चीज नही है, रूप (महाभूत), वेदना, सज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान, इन पाँच स्कन्धो के अतिरिक्त आत्मा नामक किसी पदार्थ की स्थिति नही है। इन्ही पञ्च स्कन्धों की यहाँ पर व्याख्या दी गयी है।

विभङ्ग के निम्न १८ प्रकरणों से उसका विषय स्पष्ट है—

१. स्कन्ध	१०. बोध्यङ्ग
२. आयतन	११. मार्ग
३. धातु	१२. ध्यान
४. सत्य	१३. अपरिमाण
५. इन्द्रिय	१४. शिक्षापद
६. प्रत्ययाकार	१५. प्रतिसविद्
७. स्मृतिप्रस्थान	१६ ज्ञान
८. सम्यक्प्रधान	१७ क्षुद्रकवस्तु
९. ऋद्धिपाद	१८. धर्महृदय

ये उपर्युक्त १८ विभङ्ग आगे इन तीन अङ्गो में विभक्त है—(१) सुत्तन्त-भाजनीय, (२) अभिधम्म-भाजनीय, (३) पञ्ह (प्रश्न)-पुच्छक। इनमे से पहले मे सूत्रो के अनुसार, दूसरे मे अभिधम्म की मातिकाओ के अनुसार तथा तीसरे मे दुक, तिक आदि रूप मे प्रश्नोत्तर करते हुए व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। धम्मसगणि मे तो धम्मो का विश्लेषण मात्र उपस्थित किया गया है, पर विभङ्ग मे उन्ही धम्मो का स्कन्ध, आयतन तथा धातु आदि मे सश्लिष्ट वर्गीकरण किया गया है। यहाँ भी धम्मसगणि के कुशल, अकुशल तथा अव्याकृत इन सभी को ग्रहण करके ही यह प्रस्तुत किया गया है। इस तरह विभङ्ग धम्मसगणि पर ही अवलम्बित है।

३. धातुकथा

स्कन्ध, आयतन और धातु यही तीनो धातुकथा के विषय हैं। इस प्रकार विभङ्ग के १८ विभङ्गों मे से स्कन्ध, आयतन तथा धातु इन तीन विभङ्गो को ग्रहण करके उनका विश्लेषण यहाँ पर किया गया है। इस प्रकार से इस ग्रन्थ का शीर्षक विषय-वस्तु की दृष्टि से धातुकथा न होकर स्कन्ध-आयतन-धातुकथा होना चाहिए था। इस ग्रन्थ में इन तीनों का सम्बन्ध धर्मों के साथ किस प्रकार से है, इसे सम्यक् रूप से प्रदर्शित किया गया है। किस-किस स्कन्ध, आयतन अथवा विभङ्ग में कौन-कौन से धर्म संगृहीत,

असगृहीत, सम्प्रयुक्त अथवा विप्रयुक्त होते है, इन्ही सबका विवेचन यहाँ पर १४ अध्यायो मे प्रश्नोत्तर की प्रणाली मे किया गया है। जैसे, प्रथम अध्याय मे—

कितने स्कन्ध, आयतन और धातुओ मे कौन-कौन से धर्म सगृहीत अथवा असगृहीत है ?

इसी प्रकार से यह क्रम चौदहो अध्यायो मे चला गया है।

४. पुग्गलपञ्ञत्ति

पुद्गल का अर्थ होता है व्यक्ति, और व्यक्ति की प्रज्ञप्ति करना ही इस ग्रन्थ का विषय है। इसमे व्यक्तियो का नाना प्रकार से वर्गीकरण किया गया है और यह एक-एक प्रकार के व्यक्तियो से प्रारम्भ करके दस-दस प्रकार के व्यक्तियो के निर्देश तक चला गया है। इन्ही के आधार पर यह ग्रन्थ दस अध्यायो मे विभक्त है। सर्वप्रथम प्रश्न किया गया है और बाद मे उसी का उत्तर दिया गया है। जैसे—

चार प्रकार के व्यक्तियो का वर्गीकरण—

(१) कौन-सा व्यक्ति उस बादल के समान है, जो गरजता है, पर बरसता नही ?

जो करता बहुत है, पर कहता कुछ नही—यही व्यक्ति उस बादल के समान है, जो गरजता है, पर बरसता नही।

(२) कौन-सा व्यक्ति उस बादल के समान है, जो बरसता है, पर गरजता नही ?

जो करता है, पर कहता नही—यही व्यक्ति उस बादल के समान है, जो बरसता है, पर गरजता नही।

(३) कौन सा व्यक्ति उस बादल के समान है, जो गरजता भी है और बरसता भी है ?

जो करता भी है और कहता भी है—यही व्यक्ति उस बादल के समान है, जो गरजता भी है और बरसता भी है।

(४) कौन-सा व्यक्ति उस बादल के समान है, जो गरजता भी नही है और
• बरसता भी नहीं है ?

जो न कहता है और न करता है—वही व्यक्ति उस बादल के समान है, जो गरजता भी नही और बरसता भी नही।

इसी वर्गीकरण का चूहे की उपमा प्रस्तुत करते हुए कितने सुन्दर रूप से विभाजन प्रस्तुत किया गया है—

(१) कौन-सा व्यक्ति उस चूहे के समान है, जो अपना बिल तो खोदकर तैयार करता है, किन्तु उसमे रहता नही ?

जो व्यक्ति सुत्त, गाथा, उदान, जातक आदि ग्रन्थो के अभ्यास मे रत तो होता है, किन्तु चार आर्य-सत्यो का साक्षात्कार नही करता, वही व्यक्ति उपर्युक्त चूहे के समान है।

(२) कौन-सा व्यक्ति उस चूहे के समान है, जो बिल मे रहता है, किन्तु स्वय उसे खोदकर तैयार नही करता ?

जो व्यक्ति सुत्त, गाथा आदि का अभ्यास तो नही करता, किन्तु चार आर्य-सत्यो का साक्षात्कार कर लेता है—वही व्यक्ति उपर्युक्त चूहे के समान है।

(३) कौन-सा व्यक्ति उस चूहे के समान है, जो बिल को स्वय खोद कर तैयार भी करता है और उसमे रहता भी है ?

जो व्यक्ति सुत्त, गाथा आदि का अभ्यास भी करता है और चार आर्य-सत्यो का साक्षात्कार भी करता है—वही व्यक्ति उपर्युक्त चूहे के समान है।

(४) कौन-सा व्यक्ति उस चूहे के समान है, जो न बिल को खोदता है, न उसमे रहता है ?

जो व्यक्ति न तो सुत्त, गाथा आदि का अभ्यास ही करता है और न चार आर्य-सत्यो का साक्षात्कार ही करता है—वही व्यक्ति उपर्युक्त चूहे के समान है।

इसी प्रकार से सभी अध्यायो में इन वर्गीकरणो के आधार पर ही ही व्यक्तियो का वर्णन उपस्थित किया गया है । कही-कही यहाँ पर बड़ी-बड़ी ही सुन्दर उपमाए दी गयी है ।

५. कथावत्थु

इसके रचयिता अशोक के गुरु 'मोग्गलिपुत्त तिस्स' माने जाते है, पर जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, यह सिलसिला बाद मे भी जारी रहा और इस ग्रन्थ में अभिवृद्धि होती रही।

इसके २३ अध्यायो मे स्थविरवाद के अतिरिक्त १७ निकायो (सम्प्रदायो) के २१६ सिद्धान्तो को प्रश्न के रूप मे पूर्वपक्ष रखकर बाद मे मे उनका उत्तर तथा समाधान उपस्थित करते हुए स्थविरवादी दृष्टिकोण की ही स्थापना की गयी है । अशोक के समय मे बौद्ध धर्म अनेक सम्प्रदायो मे विभक्त हो गया था और ये लोग अपने-अपने अनुसार बौद्ध मन्तव्यो की व्याख्या भी करने लगे । उस समय यह समझना कठिन-सा हो गया कि बुद्ध का वास्तविक मन्तव्य क्या था । इसी उद्देश्य को सामने रख कर 'मोग्गलिपुत्त तिस्स' ने इसकी रचना की और इसने इस उद्देश्य की पूर्ति की तथा बाद मे इसी कारणवश इसे त्रिपिटक के एक ग्रन्थ होने का गौरव प्राप्त हुआ । इस ग्रन्थ मे केवल दार्शनिक सिद्धान्तो का ही खडन दिया हुआ है और ये सिद्धान्त किन सम्प्रदायो के थे, इसका उल्लेख वहाँ पर नही है । इस कमी को पूर्ति इसकी अट्ठकथा ने की है । इन सिद्धान्तो तथा मान्यताओ मे कुछ तो ऐसे है, जिनका अस्तित्व अशोक के बाद हुआ । उदाहरणार्थ—अन्धक, अपरशैलीय, पूर्वशैलीय, राजगिरिक, सिद्धार्थक, वैपुल्य, उत्तरापथक और हेतुवादी । यह इस ओर संकेत करता है कि इसके कई अश ईसा की पहली शताब्दी तक इसमे जोडे गये है ।

इसमे के कुछ सिद्धान्त, जिनका खडन उपस्थित किया गया है, नीचे दिये जा रहे है—

खंडन-प्रक्रिया

(१) क्या जीव, सत्त्व या आत्मा की परमार्थत सत्ता है ? वज्जि-

पुत्तक और सम्मितिय भिक्षु इसे मानते थे। स्थविरवाद के दृष्टिकोण से इसका खण्डन किया गया है (अध्याय–१)।

(६) क्या सब कुछ है? सर्वास्तिवादियो का विश्वास था कि भूत, वर्तमान और भविष्यत् के सभी भौतिक और मानसिक धर्मों की सत्ता है। स्थविरवादियो के मतानुसार अतीत समाप्त हो चुका, भविष्यत् अभी उत्पन्न नही हुआ, केवल वर्तमान ही सत् हो सकता है (अध्याय–१)।

(३४) क्या गृहस्थ भी अर्हत् हो सकता है? उत्तरापथको का ऐसा विश्वास था। स्थविरवादी मान्यता यह है कि अर्हत होने पर मनुष्य गृहस्थ नही रह सकता (अध्याय–४)।

(६७) क्या यहाँ दिया हुआ दान अन्यत्र (पितरो द्वारा) उपभोग किया जा सकता है? राजगृहिक और सिद्धार्थक भिक्षुओ का ऐसा मत था। स्थविरवादियो के अनुसार भोजन का साक्षात् उपभोग तो उनके लिए सम्भव नही है, किन्तु यहाँ दिये हुए दान के कारण प्रेतो के मन पर अच्छा प्रभाव अवश्य पडता है और वह उनके कल्याण के लिए होता है (अध्याय–७)।

(१२५) क्या व्यक्ति का भाग्य उसके लिए पहले से ही निश्चित (नियत) है? पूर्वशैलियो और अपरशैलियो का ऐसा ही मत था -(अध्याय–१३)।

(१६७) क्या यह कहना गलत है कि सघ दान ग्रहण करता है? यह मत वैतुल्यक (वैपुल्यक) नामक महा-शून्यातावादियो का था (अध्याय–१७)।

(१९३) क्या देवताओ के पशु भी होते है? अन्धको के अनुसार होते थे (अध्याय–२०)।

६. यमक

इस प्रकरण में प्रश्न जोड़े के रूप में रखे गये है। यमक का शाब्दिक अर्थ है जुडवाँ। यहाँ पर प्रश्नो के अनुकूल और उनके विपरीत स्वरूपो के

जोड़े बना रखे गये हैं और इसी प्रणाली का आदि से अन्त तक अनुसरण किया गया है। इसी से इसका यह नामकरण हुआ है, जैसे—

(१) क्या सभी कुशल-धर्म कुशल-मूल है ?
क्या सभी कुशल मूल कुशल-धर्म है ?

(२) क्या सभी रूप रूप स्कन्ध है ?
क्या सभी रूप-स्कन्ध रूप है ?

(३) क्या सभी अरूप अरूप-स्कन्ध है ?
क्या सभी अरूप-स्कन्ध अरूप है ?

इस ग्रन्थ मे १० अध्याय है और वर्णित विषय उनके अध्यायो के नामो से ही स्पष्ट है—

(१) **मूलयमक**—कुशल अकुशल और अव्याकृत, ये तीन मूल' धर्म या पदार्थ,

(२) **खन्धयमक**—पञ्च स्कन्ध,

(३) **आयतनयमक**—१८ आयतन,

(४) **धातुयमक**—१८ धातुएँ

(५) **सच्चयमक**—४ सत्य,

(६) **सखारयमक**—कायिक वाचिक तथा मानसिक सस्कार,

(७) **अनुसययमक**—७ अनुशय (चित्त मे स्थित सुषुप्त बुराइयाँ),

(८) **चित्तयमक**—चित्त-सम्बन्धी प्रश्नोत्तर,

(९) **धम्मयमक**—धर्म-सम्बन्धी प्रश्नोत्तर,

(१०) **इन्द्रिययमक**—२२ इन्द्रियाँ।

जहाँ तक विषय-प्रतिपादन की शैली का प्रश्न है, वह प्राय प्रत्येक अध्याय में समान ही है। यह एक विशाल ग्रन्थ है।

७. पट्ठान (प्रस्थान)

यह शैली की दृष्टि से अत्यन्त दुरूह ग्रन्थ है, साथ ही आकार में भी बहुत बड़ा है। स्यामी सस्करण में यह ६ जिल्दो में समाप्त हुआ है और यही

हालत देवनागरी सस्करण की भी है। इसमे भी अन्तिम तीन भाग संक्षिप्त कर देने पर ही ऐसा हुआ है। यदि यह विवरण सक्षिप्त न किया जाय तो अनुमानत. यह ग्रन्थ १४,००० पृष्ठो मे समाप्त होगा। यह चार भागों मे विभक्त है—

(१) **अनुलोमपट्ठान** – इसमे धम्मों के पारस्परिक प्रत्यय-सम्बन्धों का विधानात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

(२) **पच्चनियपट्ठान** – इसमे धम्मो के पारस्परिक प्रत्यय-सम्बन्धो का निषेधात्मक अध्ययन प्रस्तुत है।

(३) **अनुलोमपच्चनियपट्ठान** – इसमे धम्मों के पारस्परिक प्रत्यय-सम्बन्धो का विधानात्मक और निषेधात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

(४) **पच्चनियअनुलोमपट्ठान** – इसमे धम्मो के पारस्परिक प्रत्यय-सम्बन्धो का निषेधात्मक और विधानात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

ग्रन्थारम्भ मे 'पच्चयनिद्देस' नामक भूमिका है। इसमे २४ प्रत्ययो का उल्लेख और संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है और इन्ही के आधार पर धम्मो का उदय तथा व्यय इस ग्रन्थ मे प्रदर्शित है। ये २४ प्रत्यय निम्न-लिखित हैं—

(१) हेतु प्रत्यय	(१०) पूर्वजात०
(२) आलम्बन०	(११) पश्चात्जात०
(३) अधिपति०	(१२) आसेवन०
(४) अनन्तर०	(१३) कर्म०
(५) समनन्तर०	(१४) विपाक०
(६) सहजात०	(१५) आहार०
(७) अन्योन्य०	(१६) इन्द्रिय०
(८) नि:श्रय०	(१७) ध्यान०
(९) उपनि:श्रय०	(१८) मार्ग०

(१९) सम्प्रयुक्त०	(२२) नास्ति०
(२०) विप्रयुक्त०	(२३) विगत०
(२१) अस्ति०	(२४) अविगत०

किसी एक धम्म अथवा धर्मों की उत्पत्ति तथा निरोध दूसरे धम्म अथवा धर्मों की उत्पत्ति तथा निरोध पर आधारित होते है और इसी आधार-सम्बन्ध को प्रत्यय कहते है। इन प्रत्ययो मे से कुछ का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(१) **हेतुप्रत्यय**—हेतु मूल कारण अथवा आधार को कहते है। ये छह होते हैं—लोभ, द्वेष, मोह तथा उनके विपक्षी अलोभ, अद्वेष और अमोह। ये ही मूल कारण है। जिनसे धम्म उत्पन्न होते है, वे हेतु या मूल-कारण कहे जाते है और जिस प्रत्यय से उन धर्मो की उत्पत्ति होती है, उन्हे हेतु-प्रत्यय कहते है।

(२) **आलम्बनप्रत्यय**—आलम्बन या 'आरम्मण' (इन्द्रिय) विषय को कहते है। जिस वस्तु के आधार से कोई दूसरी वस्तु पैदा होती है तो उस दूसरी वस्तु के प्रति पहली वस्तु का सम्बन्ध आलम्बन-प्रत्यय का होता है, जैसे चक्षु-विज्ञान का आलम्बन है रूपायतन। दूसरे शब्दो मे हम कह सकते है कि रूपायतन आलम्बन-प्रत्यय के रूप मे चक्षु-विज्ञान और उससे संयुक्त धर्मों का प्रत्यय है। इसी प्रकार हम शब्दायतन, गन्धायतन, रसायतन आदि को भी तद्‌तद्‌विज्ञानो के आलम्बन-प्रत्यय के रूप मे ले सकते है[1]।

—:०:—

[1] इस अध्याय विशेष के लिए द्रष्टव्य – पालि साहित्य का इतिहास, भरतसिंह उपाध्याय, पृ० ३३४–४६४।

आठवाँ अध्याय

पिटक बाह्य पालि ग्रन्थ

द क्षण भारत विशेषतर द्रविड प्रदेश तो ईसा की १४ वी सदी तक थेरवादी रहा । वहाँ पालि मे ग्रन्थ लिखे जाते थे । पर उत्तर भारत में पालि सम्प्रदाय पाचवी-छठी सदी के बाद नही रहा, जब कि वहाँ महायान का प्रभुत्व जम गया । वहाँ पर नालन्दा, विक्रमशिला, तथा ओदन्तपुरी आदि महायान के दुर्ग बन गये । उत्तर भारत की अतिम कृतियाँ हैं 'नेत्तिप्पकरण', 'पेटकोपदेस' तथा 'मिलिन्दपञ्ह' । बर्मी परम्परा के अनुसार ये ग्रन्थ भी त्रिपिटक मे सम्मिलित किये जाते है और इनका स्थान खुद्दक-निकाय के अन्तर्गत है । नीचे इनका विवरण प्रस्तुत किया जाता है—

१ नेत्तिप्पकरण

नेत्ति का अर्थ है नेता या मार्ग-प्रदर्शक । इस छोटे-से ग्रन्थ मे बौद्ध धर्म को समझाने के पथप्रदर्शन का काम किया गया है । इसके विषयो का विभाजन विद्वानो ने निम्न प्रकार से किया है—
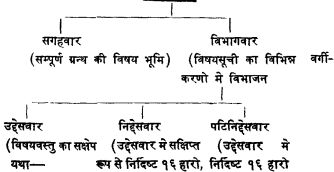
१. १६ हार,	५ नयो तथा १८ मूलपदो	५ नयो तथा १८ मूलपदो की विस्तृत
२. ५ नय,	की परिभाषाए,)	व्याख्याए जो इन चार वर्गों मे विभक्त है—
३. १८ मूलपद)		

१ हारविभङ्ग
२ हारसम्पात,
३ नयसमुट्ठान,
४ सासनपट्ठान ।

नतिप्पकरण को महाकात्यायन की रचना बतलाया गया है । पर यह ठीक नही ज्ञात होता । वास्तव मे इसका कता कोन था यह अज्ञात ही है । यह बुद्धकालीन कृति नही हो सकती तथा इसकीरचना ईसवी सन व प्रारम्भ के आस-पास की है यही अभी तक विद्वानो को मान्य है । प्राकृत काव्यो मे भी परिच्छेदो के स्थान पर हार का प्रयोग होता रहा ।

२ पेटकोपदेस

परम्परा के अनुसार इस ग्रन्थ के रचयिता भी महाकात्यायन ही बताये गये है । नेत्तिप्पकरण की विषयवस्तु ही यहा पर एक दूसरे तरह से विवेचित है और बुद्धशासन के मूल उपादान चार आर्य-सत्यो की दृष्टि से ही विषय-वस्तु का व्याख्यान इस ग्रन्थ मे है ।

३ मिलिन्दपञ्ह

पजाब से लेकर यमुना तक यवनो (ग्रीको) ने ईसा पूव द्वितीय शताब्दी मे राज्य किया था । दिमित्रि (१८६–१६७ ई० पू०) मौर्य साम्राज्य के के नष्ट होने पर भारत विजय के प्रयास मे निकला था और पतञ्जलि के महाभाष्य मे हम स्पष्ट रूप से यह उल्लेख पाते है कि यवनो ने साकेत को घेर लिया था—अरुणद् यवन साकेतम् । दिमित्रि का एक सेनापति मिनान्डर था । बाख्त्रिया पर मेसोपोतामिया के यवनराज अत्रिया के सेनापति

उत्कतिद के आक्रमण की बात सुनकर दिमित्रि को वहाँ लौटना पडा, पर वह अपने दामाद तथा सेनापति मिनान्डर को पजाब मे छोड गया। मिनान्डर ने पजाब मे रहकर राज्य करना शुरू किया। उसने 'सागल' (स्यालकोट) को अपनी राजधानी बनाया। यही मिनान्डर 'मिलिन्द' के नाम से प्रसिद्ध है। भिक्षु नागसेन का इस मिलिन्द से जो सलाप हुआ था, वही इस 'मिलिन्द-पञ्ह' (मिलिन्दप्रश्न) नामक ग्रन्थ मे सगृहीत है। मौखिक साहित्य के रूप मे ग्रन्थो मे घटना-बढना लगा ही रहता है और यह ग्रन्थ भी इस प्रक्रिया से अछूता कैसे रह सकता था। पर इस ग्रन्थ का मूल उसी समय का है जब कि नागसेन थे। साहित्य तथा दर्शन इन दोना दृष्टियो से यह ग्रन्थ स्थविरवाद बौद्धधर्म का एक बहुत ही गौरवपूर्ण ग्रन्थ है।

मिनान्डर स्वय विद्या-व्यसनी पुरुष था। भिक्षु नागसेन की विद्वत्ता को सुनकर एक दिन उनके दर्शन के हेतु वह चल पडा। सागल नगर का क्या ही सुन्दर वर्णन इस ग्रन्थ मे विद्यमान है—

सागल नगर का वर्णन

यवनो का नाना पुटभेदन (वाणिज्य-व्यवसाय का केन्द्र) सागल (स्यालकोट) नामक नगर है। वह नगर नदी और पर्वतो से शोभित रमणीय भूमिभागवाला, आराम-उद्यान उपवन-तडाग-पुष्करिणी से सम्पन्न, नदी-पर्वत-वन से अत्यन्त रमणीय, दक्ष कारीगरो द्वारा निर्मित, शत्रु तथा अमित्रो से रहित, पीडा-रहित, अनेक प्रकार के विचित्र दृढ अटारी तथा कोठो से युक्त, श्रेष्ठ गोपुरो तथा तोरणो वाला, गहरी परिखा और पीले प्राकार से घिरे भीतरी कोट वाला, सडक, आँगन और चौराहे सभी से सम्यक् रूप से विभक्त, अच्छी प्रकार से सजी हुई तथा बहुमूल्य सौदा से सजी हुई अच्छी दुकानोवाला, विविध श्रेष्ठ दानशालाओ से सुशोभित, हिमालय पर्वत की चोटियो की तरह सैकडो और हजारो ऊँचे-ऊँचे भवन-वाला, हाथी, घोडे, रथ और पैदल सेना से समाकुल, सुन्दर नर-नारी-गणो का विचरण-स्थल, मनुष्याकीर्ण, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, श्रमण, ब्राह्मण तथा गणाचार्यों से आकीर्ण, बड़े-बडे विद्वानो का केन्द्र, काशी एव कोटुम्बर

के वस्त्रो की दूकानो से आच्छादित, बहुविध पुष्पवर्ग की गन्धो से सुगन्धित, बहुत से प्रशसनीय रत्नो से परिपूर्ण, कार्षापण, रजत, स्वर्ण, कास्य तथा बहुमूल्य पत्थरो से परिपूर्ण, बहुमूल्य रत्नो के चमकते खजाने की भाँति सभी प्रकार के धन-धान्य-उपकरण भण्डार मे परिपूर्ण, अनेक प्रकार के खाद्य, भोज्य तथा पेय पदार्थों से युक्त, उत्तरकुरु के समान उपजाऊ तथा 'आळककन्दा' देवपुर के समान शोभासम्पन्न था।

मिलिन्द की नागसेन से भेंट

तब राजा मिलिन्द पाँच सौ यवनो के साथ, अच्छे रथ पर सवार हो, बडी भारी सेना के साथ 'सखेय्य' परिवेण मे आ, जहाँ आयुष्मान् नागसेन थे, वहाँ गया। उस समय आयुष्मान् नागसेन अस्सी हजार भिक्षुओ के साथ सम्मेलनगृह मे बैठे थे। राजा मिलिन्द ने आयुष्मान् नागसेन की परिषद् को देखा। दूर ही से देख देवमन्त्री से कहा—'देवमन्त्री, इतनी बडी यह परिषद् किसकी है ?"

'महाराज, आयुष्मान् नागसेन की यह परिषद् है।"

तब आयुष्मान् नागसेन की परिषद को दूर ही से देख राजा मिलिन्द को भय होने लगा, उसके गात्र स्तम्भित हो गये और रोमाच हो आया।

गैंडा से घिरे हाथी की तरह, गरुडा से घिरे साँप की तरह, अजगर से घिरे स्यार की तरह, महिषा से घिरे भालू की तरह, साप से पीछा किये गये मेढक की तरह, सिह से पीछा किये गये हरिण की तरह, सँपेरे के हाथा मे आये साँप की तरह, बिल्ली से खेल खिलाये जाते हुए चूहे की तरह, ओझा से बाँधे गये भूत की तरह, राहु से ग्रसित चन्द्रमा की तरह, पेटी मे बन्द किये गये साँप की तरह, पिजडे मे बन्द पक्षी की तरह, जाल मे पडी मछली की तरह हिंसक पशुओ से भरे जगल मे भटके मनुष्य की तरह, वैश्रवण के प्रति अपराध किये यक्ष की तरह तथा आयु समाप्त हुए देवता की तरह राजा मिलिन्द घबडा, डर, चिन्तित, उदास तथा खिन्न हो गया। मुझे यह कही हरा न दे ऐसा शकित हो उसने देवमन्त्री से कहा—

"देवमन्त्री, आप मुझे मत बतावे कि आयुष्मान् नागसेन कौन है। बिना बताये ही मै उन्हे जान लूँगा।"

नागसेन तथा मिलिन्द के सलाप का नमूना

"भन्ते नागसेन, यदि कोई पुरुष नही है तो कौन आप को चीवर, भिक्षा, शयनासन तथा ग्लानप्रत्यय देता है ? कौन उसका उपभोग करता है ? कौन शील की रक्षा करता है ? कौन ध्यान-भावना का अभ्यास करता है ? कौन आर्य-मार्ग के फल निर्वाण का साक्षात्कार करता है ? कौन प्राणातिपात करता है ? कौन चोरी करता है यदि ऐसी बात है तो न पाप है और न पुण्य, न पाप और पुण्य कर्मो का कोई कर्ता है, न कोई करानेवाला है न कोई फल है। भन्ते नागसेन, यदि कोई आप को मार भी डाले तो किसी का मारना नही हुआ। तब आपके कोई आचार्य भी नही हुए, कोई उपाध्याय भी नही हुए, आप की उपसम्पदा भी नही हुई।

आप कहते है कि आपके सब्रह्मचारी आप को नागसेन के नाम से पुकारते है, तो यह नागसेन' क्या है ? भन्ते, क्या ये केश नागसेन हैं ?"

नही महाराज।"

ये रोये नागसेन है ?"

'नही महाराज।"

'ये नख, दाँत, चमडा, मास, स्नायु, हड्डी, मज्जा, 'वक्क', हृदय, यकृत्, क्लोमक, तिल्ली, फुफ्फुस आँत, पतली आँत, पेट, पाखाना, पित्त, कफ, पीब, लोहू पसीना, मेद, आँसू, चर्बी, लार, नेटा, लसिका, दिमाग आदि नागसेन है ?"

"नही, महाराज।"

"तो क्या आपके रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार तथा विज्ञान मे से कोई नागसेन है ?"

"नही, महाराज।"

"भन्ते, तो क्या रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार तथा विज्ञान सभी एक साथ नागसेन है ?"

"नही, महाराज ।"

"तो भन्ते, क्या इन रूपादि से भिन्न कोई नागसेन है ?"

"नही, महाराज ।"

"भन्ते, मै आप से पूछते-पूछते थक गया, किन्तु नागसेन क्या है, इसका पता नही लगता। तो नागसेन क्या केवल शब्दमात्र है। आखिर नागसेन है कौन ? भन्ते, आप झूठ बोलते है कि नागसेन कोई नही है ।"

आयुष्मान् नागसेन ने उससे रथ-सम्बन्धी प्रश्न पूछकर ही उसकी इस शका का समाधान किया--

"महाराज, आप पैदल चलकर यहाँ आये या किसी सवारी पर ?"

"भन्ते, मै पैदल नही, प्रत्युत रथ पर यहाँ आया ।"

"महाराज, यदि आप रथ पर आये तो मुझे बतावे कि आपका रथ है ? क्या दण्ड रथ है ?"

"नही, भन्ते ।"

"तो क्या अक्ष, चक्के, रथपञ्जर, रथ की रस्सियाँ, लगाम, चाबुक आदि मे से कोई एक रथ है ?"

"नही, भन्ते ।"

"तो क्या ये सब मिलकर रथ है ?"

"नही, भन्ते ।"

"ता रथ क्या इन सबसे परे है ?"

"नही, भन्ते ।"

'महाराज, मै आप से पूछते-पूछते थक गया, किन्तु यह पता नही लगा कि रथ कहाँ है ? क्या रथ केवल एक शब्दमात्र है ? आखिर यह रथ क्या है ? महाराज, आप झूठ बोलते है कि रथ है नही । महाराज, सम्पूर्ण जम्बुद्वीप के आप सबसे बडे राजा है तो भला किससे डरकर आप झूठ बोलते है ?"

"भन्ते नागसेन, मै असत्य नही बोलता । ईषा इत्यादि रथ के अवयवो के आधार पर केवल व्यवहार के लिए 'रथ' ऐसा नाम कहा जाता है ।"

"महाराज, बहुत ठीक आपने जान लिया कि रथ क्या है। इसी प्रकार मेरे केश आदि के आधार पर केवल व्यवहार के लिए 'नागसेन' ऐसा नाम कहा जाता है, किन्तु परमार्थ मे 'नागसेन' ऐसा कोई एक पुरुष विद्यमान नही है। भिक्षुणी वज्रा ने भगवान् के सामने कहा था—

"जैसे अवयवो के आधार पर 'रथ' यह सज्ञा होती है, उसी तरह स्कन्धो के होने से एक 'सत्त्व' (=जीव) समझा जाता है।''

भदन्त नागसेन द्वारा प्रस्तुत की गयी अनात्मवाद की यह व्याख्या बेजोड है।

वस्तु के अस्तित्व के सिलसिले को व्यक्त करते हुए नागसेन ने कहा कि जो उत्पन्न होता है, वह न वही होता है और न अन्य। इसे उन्होने उदाहरण देकर समझाया कि पुरुष जब बच्चा होता है और जब क्रमश वह तरुण तथा युवा हो जाता है तब इन सब अवस्थाओ मे क्या वह एक ही होता है। यदि वह अन्य होगा तो उसके माता, पिता आदि नही होगे और यदि वही होगा तो उसका सारा व्यापार तथा व्यवहार खाट पर चित्त लेटनेवाले बच्चे की ही भाँति होना चाहिए। अत अपनी स्थापना—वह न वही न दूसरा है, की व्याख्या उन्हाने दीपक के जलने आदि की उपमाओ को उपस्थित करके किया।

भारत मे रचित पालि ग्रन्थ और भी हो सकते है, पर उत्तरी भारत का उपलब्ध अन्तिम ग्रन्थ 'मिलिन्दपञ्ह' ही है। यह बडा ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है और इसमे नागसेन के साथ हुए मिलिन्द के अनेक सलापो का उल्लेख है।

इस ग्रन्थ में पूर्वयोग, लक्षण-प्रश्न, विमतिच्छेदन-प्रश्न, मेण्डक-प्रश्न, अनुमान-प्रश्न तथा उपमा-कथा-प्रश्न आदि छह परिच्छेद है।

—o—

द्वितीय खंड

सिंहल में पालि

पहला अध्याय

१. बुद्धघोष युग

कठस्थ बौद्ध ग्रन्थो की शुद्धता तथा सुरक्षा के लिए दूसरी संगीति के सवा सौ वर्ष बाद तीसरी संगीति अशोक के समय मे पटना में हुई । इसी के निर्णयानुसार अशोक के पुत्र स्थविर महेन्द्र ई० पू० तीसरी सदी में सिहल आये और यह देश काषायधारी भिक्षुओं से आलोकित हो गया । पर पिटक की परम्परा अभी भी मौखिक ही थी और यह सूत्रधरो, विनयधरों तथा मात्रिकाधरो के हृदय मे निहित था । ऐसी विशाल सामग्री का हृदय जैसे कोमल भगुर पात्र में सुरक्षित रखना अत्यन्त कठिन है, अतएव सिहलराज वट्टगामणि के समय (ई० पू० प्रथम शताब्दी) मे त्रिपिटक को लिपिबद्ध करने का निर्णय किया गया और इसके अनुसार 'आलोक-विहार' मे त्रिपिटक तालपत्रो पर लिखा गया । उस समय उत्तर भारत में भी तालपत्र पर लेख लिखे जाते थे पर वहाँ इस कार्य मे लकडी की लेखनी तथा स्याही का प्रयोग किया जाता था । दक्षिण भारत की प्रणाली इससे कुछ भिन्न थी । वहाँ पर ताल के पत्र को लोहे की सुई से कुरेदकर उस पर स्याही की बुकनी डाल दी जाती थी । सिहल ने इसी दक्षिणी ढग को स्वीकार किया और आलोक-विहार मे भी यही प्रणाली अपनायी गयी, जो हाल तक वहाँ चलती रही ।

सूत्र, विनय तथा अभिधर्म को पढ़ाते समय आचार्य परम्परा के अनुसार जो व्याख्या करते थे, वही सिंहली अट्ठकथाओ के रूप मे प्रस्तुत हुई और इन्हें भी लिपिबद्ध किया गया था । ईसवी सदी के प्रारम्भ होते ही सिंहल थेरवाद का गढ़ हो गया । वहाँ पर लिपिबद्ध किये गये पिटक-ग्रन्थ बाहर भी पहुँच जाते थे, पर सिंहल-अट्ठकथाएँ सिंहल-प्राकृत भाषा में थीं और शायद ही उनमें से कुछ दक्षिण या उत्तर भारत में पहुँची हों । उनकी भाषा

सिंहल-प्राकृत थी, जो तीसरी-चौथी सदी के सिहल शिलालेखो मे मिलती है। प्राकृत होने से यह बहुत कठिन नही थी। समयानुसार पीछे यह माँग होने लगी कि इन्हे यदि मागधी (पालि) मे कर दिया जाय तो बडा लाभ हो, क्योकि इससे इनके प्रयोग का क्षेत्र विस्तृत हो जाता। इसी आवश्यकता की पूर्ति बुद्धघोष, बुद्धदत्त तथा धर्मपाल आदि आचार्यों ने की। बुद्धघोष इन्ही सिंहली अट्ठकथाओ का पालि रूपान्तर करने के लिए ही सिहल गये थे। इस प्रकार से इन आचार्यो द्वारा रचित अट्ठकथाओ के आधार-स्रोत ये सिंहल-अट्ठकथाए ही हैं। आचार्य बुद्धघोष ने अपनी विभिन्न अट्ठकथाओं मे इनका निर्देश भी किया है।

बुद्धघोष से पहले 'दीपवंस' नामक सिहल का इतिहास ग्रन्थ लिखा जा चुका था। 'खुद्दकसिक्खा' तथा 'महासिक्खा' नामक ग्रन्थों के भी लिखे जाने की बात कही जाती है। इन दोनों का उल्लेख 'पोलन्नरुव' के 'गलविहार' के अभिलेख मे प्राप्त होता है। 'खुद्दकसिक्खा' के लेखक 'धम्मसिरि' ताम्र-पर्णी-(सिहल) ध्वज कहे गये है, पर वास्तविक रूप मे पालि साहित्य का पुनरारम्भ आचार्य बुद्धघोष ही करते हैं। इनके समकालिक अन्य अट्ठक-थाकारो (बुद्धदत्त तथा धर्मपाल) आदि के सम्बन्ध मे इसी खण्ड के अन्तिम अध्याय मे विचार प्रस्तुत किया जायेगा। नीचे बुद्धघोष के सम्बन्ध मे लिखा जा रहा है—

(१) **बुद्धघोष** – महाबोधि (बोधिवृक्ष) के समीप ही 'मोरड-खेटक' के ब्राह्मण कुल मे इनका जन्म हुआ था। प्रारम्भ मे ये ब्राह्मण-शिल्प तथा तीनो वेदो मे पारगत हुए और रेवत स्थविर के सम्पर्क मे आकर उनके भिक्षु-शिष्य हो गये। यह काल प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक असग तथा वसुबन्धु का था। नालन्दा अशोक के समय मे सर्वास्तिवादियों का स्थान था और महायान का अनुगामी होते हुए भी अन्तिम समय तक (तेरहवी सदी) वहाँ पर सर्वास्तिवादी विनय ही मान्य था, अर्थात् यह आधा सर्वास्तिवादी था। इस प्रकार सभवतः बुद्धघोष के समय मे मगध मे सर्वास्तिवाद का प्रचार था। परन्तु रेवत स्थविर-जैसे थेरवादी भी वहाँ थे। उनके सम्पर्क

में आकर इन्होने त्रिपिटक का अध्ययन किया तथा सर्वप्रथम 'ञाणोदय' नामक ग्रन्थ की रचना की। त्रिपिटक के अध्ययन की तीव्र जिज्ञासा का प्रमाण-स्वरूप ग्रन्थ 'धम्मसगणि' पर इनके द्वारा रचित 'अट्ठसालिनी' नामक अट्ठकथा है। बाद मे सम्पूर्ण त्रिपिटक पर इन्होने एक संक्षिप्त अट्ठकथा प्रस्तुत करने का विचार किया। पर इसके बारे मे इनके गुरु ने यह कहा—"तुम्हारा यह प्रयास अधूरा ही है। यदि लिखना है तो सिहल जाओ। वहाँ के महाविहार-निकाय मे त्रिपिटक पर सिहली भाषा मे अट्ठकथाए है। उनको मागधी (पालि) मे करो।" बुद्धघोष इसी उद्देश्य से सिहल पहुँचे। ऐसी प्रसिद्धि है कि समुद्र मे जाते समय नाव पर ही बुद्धदत्त से उनकी मुलाकात हुई। बुद्धघोष ने अब अपना उद्देश्य उन्हे बतलाया तो उन्होने साधुकार देते हुए कहा—"मै तो इसे पूर्ण करने की अवस्था मे नही हूँ, पर अपनी कृतियो को तुम मेरे पास भेजना, मै उनका सक्षेप लिखूँगा।" कहते है कि विनय-अट्ठकथा को देखकर उन्होने 'विनयविनिच्छय' नामक ग्रन्थ लिखा।

पर बुद्धघोष उत्तर भारत से सीधे सिहल नही आये। काँची आदि के विहारो मे उन्होने वर्षावास किया था, जिसका उल्लेख अपनी अट्ठकथाओ मे उन्होने किया है। ऐसा सम्भव है कि द्रविड प्रदेश जैसे थेरवाद के गढ मे उन्हे जब अट्ठकथा-सम्बन्धी पूरी सामग्री न मिली हो तभी उन्होने सिहल का रास्ता लिया।

महा-महेन्द्र के समय से ही अनुराधपुर का 'महाविहार' प्रख्यात था। वहाँ पहुँचने पर महाविहार के भिक्षु जैसे-तैसे के सामने अपने पुस्तकालय का द्वार थोड़े ही खोल सकते थे। अत प्रारम्भ मे उन्होने बुद्धघोष की योग्यता की परीक्षा करने के लिए निम्नलिखित प्रसिद्ध गाथा व्याख्या के लिए प्रस्तुत की—

"अन्तो जटा बहि जटा जटाय जटिता पजा।
त तं गोतम पुच्छामि को इमं विजटये जटं।।

सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो चित्त पञ्ञञ्च भावयं ।
आतापी निपको भिक्खु सो इम विजटये जट ।।" ति ।

बुद्धघोष ने उत्तर-स्वरूप इस पर 'विसुद्धिमग्ग' जैसे गम्भीर एव विशाल ग्रन्थ को लिखकर प्रस्तुत किया, जिसमे बौद्ध-दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त शील, समाधि तथा प्रज्ञा की विस्तृत विवेचना है ।

सिंहल अट्ठकथाओ की भाषा सिंहली थी, जो आज की सिहली और हिन्दी जितना अन्तर नही रखती थी। वह एक प्राकृत थी और सम्भवतः द्रविड़ प्रदेश मे रहते हुए बुद्धघोष उससे परिचित हो चुके थे। अस्तु उसे पालि मे अनूदित करना उतना ही सरल था, जितना कि पालि का सस्कृत मे अनुवाद करना। इन प्राचीन सिहल अट्ठकथाओ का उल्लेख प्राप्त होता है। इनमे से सुत्तपिटक की अट्ठकथा 'महाअट्ठकथा' सारे निकायों पर थी और 'कुरुन्दी' एव 'महापच्चरि' क्रमश. विनय तथा अभिधम्मपिटक की अट्ठकथाए थी। बुद्धघोष ने इनके अतिरिक्त 'अन्धकअट्ठकथा' और 'सखेपअट्ठकथा' से भी सहायता ली थी। बुद्धघोष का साहित्य विशाल है—

(१) ञाणोदय
(२) विसुद्धिमग्ग
(३) विनय-अट्ठकथा – समन्तपासादिका
(४) पातिमोक्ख ,, – कङ्खावितरणी
(५) दीघनिकाय ,, – सुमङ्गलविलासिनी
(६) मज्झिमनिकाय – पपञ्चसूदनी
(७) सयुत्तनिकाय ,, – सारत्थपकासिनी
(८) अङ्गुत्तरनिकाय – मनोरथपूरणी
(९) खुद्दकनिकाय के
'खुद्दकपाठ' तथा
'सुत्तनिपात' की
अट्ठकथा – परमत्थजोतिका
(१०) जातक-अट्ठकथा – जातकट्ठकथा (परमत्थजोतिका)

(११) धम्मसगणि „ – अट्ठसालिनी
(१२) विभङ्ग „ – सम्मोहविनोदनी
(१३) 'धम्मसगणि' तथा
'विभङ्ग' को छोडकर
सम्पूर्ण अभिधम्म की अट्ठकथा – पञ्चप्पकरणट्ठकथा
(१४) धम्मपद-अट्ठकथा – धम्मपदट्ठकथा

इनमे से 'ञाणोदय' अब प्राप्य नही है। अट्ठकथाए कई देशो से कई लिपियो मे प्रकाशित है। देखे भारत मे यह कार्य कब होता है। 'विसुद्धि-मग्ग' का हिन्दी मे अनुवाद भी हो चुका है। अट्ठकथाए अभी अनूदित नही है, केवल *जातकअट्ठकथा मात्र का अनुवाद हो पाया है।*

'विसुद्धिमग्ग' मे अन्तो जटा बहि जटा' वाली गाथा का उत्तर प्रारम्भ मे ही देकर शेष को उसकी व्याख्या स्वरूप उपस्थित किया गया है। 'समन्त-पासादिका' सम्भवत उनकी प्रथम रचना है। इसे उन्होने बुद्धश्री स्थविर की प्राथना पर लिखा था। 'सुमङ्गलविलासिनी' सघ-स्थविर 'दाठानाग' की प्राथना पर लिखी गयी थी।

(२) **दीपवस** (ग्रन्थ)––इसके लेखक का नाम अज्ञात है। सघ के इतिहास लिखने का शायद यह पहला प्रयास है। आदिकाल (विजय के आगमन) से राजा महासेन (३२५–३५२ ई०) तक का इसमे सिहल का इतिहास है। इससे यह ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ किसी के द्वारा चौथी सदी के मध्य मे लिखा गया था। इसमे सभी प्राचीन परम्पराएँ सिहल अट्ठकथाओ से ली गयी है। दीपवस' की भाषा उतनी मँजी नही है, जितनी कि 'महावस' की। 'महावस' मे भिक्षुणियो का उल्लेख नही है, पर 'दीपवस' ने उन्हे विशेष महत्त्व दिया गया है। चौथी या पाँचवी सदी मे ही सिहल की भिक्षुणी 'देवसारा' ने चीन मे जाकर भिक्षुणी-सघ स्थापित किया, जो वहाँ अब भी जीवित है, पर सिंहल मे दसवी सदी मे वह उच्छिन्न हो गया। 'दीपवस' की वर्णन-शैली इस प्रकार है––

"(लंका) द्वीप मे बुद्ध, उनकी शरीर धातुएँ तथा बोधि, एवं सघ और आचार्यवाद के सहित शासन (बौद्ध धर्म) का आगमन तथा नरेन्द्र (विजय) के आगमन आदि की परम्परा का मैं वर्णन करूँगा, सुने—

प्रीति तथा प्रमोदोत्पादक, मनोरम तथा अनेक आकार से सम्पन्न इस वृत्तान्त को दत्तचित्त होकर लोग सुने।

—परिच्छेद, १

दूरदर्शी 'मोग्गलिपुत्त' ने दिव्य दृष्टि से सीमान्त देशो मे भविष्य में बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा देखकर 'मज्झन्तिक' आदि स्थविरो को चार अन्य साथियो के साथ पड़ोसी देशों मे शासन की प्रतिष्ठा तथा मानवो को आलोकित करने के लिए भेजा।

—परिच्छेद, ८

नरेन्द्र की प्रार्थना पर महागणी महेन्द्र स्थविर ने उपयुक्त उद्यान महामेघवन मे प्रवेश किया। सोने के गडुवे को लेकर महीपति ने यह कहते हुए उस उद्यान को सघ को दान कर दिया—मैं महामेघवन नामक इस उद्यान को चारो दिशाओ के सघ को दान मे देता हूँ।

—परिच्छेद, १३

लंका द्वीप का परिणाम

बत्तीस योजन लबा और अट्ठारह योजन चौड़ा तथा सौ योजन की परिधि वाला (यह लका द्वीप) सागर से घिरा है।

यह श्रेष्ठ लंका द्वीप सर्वत्र रत्नो की खान है तथा नदी, सर, पर्वत और वनो से युक्त है।

—परिच्छेद, १७

लंका में भिक्षुणियाँ

यशस्वी नरदेव अभय की प्रार्थना पर प्रख्यात अनुराधपुर मे भिक्षुणियो ने विनय का पाठ किया। तथा पाँच निकाय एवं सात अभिधर्म के प्रकरणों का भी पाठ किया।"

—परिच्छेद, १८

त्रिपिटक लिपिबद्ध करना

इस प्रकार राजा 'वट्टगामणि अभय' ने बारह वर्ष तथा आदि से पाँच मास तक राज्य किया ।

पूर्वकाल मे महामति भिक्षु तीनो पिटको की पालि (मूल पङ्क्ति) और उनकी अट्ठकथाएँ, जिन्हे वे मुख-परम्परा द्वारा (लका द्वीप मे) लाये थे;

उन्हे प्राणियो की (स्मृति) हानि को देखकर, एकत्रित हो; भिक्षुओ ने धर्म की चिरस्थिति के लिए पुस्तको के रूप मे लिपिबद्ध किया ।

—परिच्छेद, २०

(३) **महानाम**—पाँचवी सदी मे इस कवि-इतिहासकार ने 'महावस' नामक ग्रन्थ को लिखा । सिहल के इस इतिहास ग्रन्थ की तुलना मे आने-वाले बहुत कम तत्कालीन ग्रन्थ मिलेग । इसमे महासेन के शासन-काल (३२५–३५२ ई०) तक का इतिहास दिया हुआ है । आगे चलकर अन्य विद्वानो को यह ग्रन्थ इतना पसन्द आया कि इसके अगले भागो को भी उन्होने इसी नाम से लिखा । धर्मकीर्ति ने पराक्रमबाहु के शासन-काल (१२४०–१२७५ ई०) मे इसे परिवर्द्धित करके अपने समय तक पहुँचाया । बीच मे किसी और ने इसमे परिवर्द्धन किया और 'तिब्बोतुवावे सुमङ्गल' ने इसे १७५८ ई० तक तथा 'हिक्कडुवे सुङ्गल' ने अग्रेजो के शासनारम्भ (१८१५ ई०) तक इसे पहुँचाया ।

महावस की शैली को द्योतित करनेवाले निम्न उदाहरण प्रस्तत हैं—

ग्रन्थ का लक्ष्य

"प्राचीन विद्वानो ने कही अति विस्तारपूर्वक, कही अति सक्षिप्त तथा (कहीं) अनेक पुनरुक्तियो के साथ इसकी रचना की थी ।

उन दोषो से वर्जित, ग्रहण तथा धारण करने मे सहज, प्रसाद तथा सवेग उत्पन्न करने वाले (महावस का) उसे सुने ।'[1]

--परिच्छेद, १

---

१. अधिक उदाहरणों के लिए मेरी 'पालि काव्यधारा' देखें ।

कुवेणी का त्याग

उद्धत गुजराती तरुण विजय अपने पाँच सौ साथियो के साथ निर्वासित हो, ईसा पूर्व पाँचवी सदी मे लका पहुँचा। उस समय कोल-संथाल की जाति के वेद्दा लोग लंका के निवासी थे। उनके सरदार की लडकी कुवेणी विजय के प्रेमपाश में बँधी। उसने अपने लोगों की पराजय करायी। पर अधिपति होने पर विजय ने सभ्य तथा सुसस्कृत जाति की पुत्री को प्राप्त करने के लिए कुवेणी को छोड़ दिया। इसे कवि-इतिहासकार ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है—

(प्रथम मिलन मे)

"कुवेणी राजपुत्र के पास सर्वाभरण से भूषित होकर गयी और वृक्ष के नीचे उसने महार्घ शय्या तैयार की।

तब विजय प्रमुख आदि (विजय को प्रमुख बनाकर उनके अनुयायी आदि) नाव से भूमि पर उतरकर, थके हुए होकर धरती को हाथ से पकड़ कर बैठे थे।

विजय उस (कुवेणी) के साथ सहवास करके सुखपूर्वक शय्या पर सोया और कनात तानकर सारे भृत्य भी पड़ गये।

रात को बाजे के शब्द तथा गीत के रव को सुनकर साथ मे सोयी हुई यक्षिणी से विजय ने पूछा—'यह क्या शब्द है ?'

कुवेणी ने उत्तर दिया—'सारे यक्षों को मरवाकर राज्य स्वामी को देना है। मनुष्य के साथ वास करने के कारण यक्ष मुझे मार डालेंगे।

वहाँ विवाह का मगल महोत्सव है, वही यह शब्द है, यह बडा समागम है। आज ही यक्षों को मार डालो, फिर यह नही कर सकोगे।'

पांड्य राजकुमारी जब विजय के पास नयी दुलहिन बनकर आयी तो उसने कुवेणी से कहा—'अब तुम दोनों बच्चो को छोड़कर जाओ। मनुष्य अमनुष्य से सदा भय खाते हैं।'

यक्षिणी ने कहा—'मत चिन्ता करो—एक सहस्र शुल्क से मैं तुम्हारी बलि पूर्ण करूँगी।'

बार-बार प्रार्थना कर (हताश हो) दोनों बच्चो को लेकर वह लका पुर गयी ।

बच्चों को बाहर बैठाकर वह नगर मे घुसी । उस यक्षिणी को पहचानकर तथा उसे जासूस समझकर यक्ष क्षुब्ध हो गये (और उनमें से) एक साहसी ने यक्षिणी को एक ही हाथ में मार गिराया ।

कुवेणी का मामा नगर से बाहर निकला । बच्चो को देखकर उसने पूछा—'तुम किसके बच्चे हो ?' 'कुवेणी के' यह सुनकर कहा—'तुम्हारी माँ यहाँ पर मार दी गयी; तुम्हे भी देखकर मार डालेंगे, (अत·) शीघ्र ही भाग चलो ।"

—:o:—

दूसरा अध्याय

२. अनुराधपुरयुग

अनुराधपुर सिंहल की प्रथम राजधानी रहा । यही पर अशोकपुत्र महेन्द्र ने तीसरी सदी ई० पू० मे आकर 'महाविहार' **की** प्रतिष्ठा की । यद्यपि द्रविड देश तथा इसके बीच मे समुद्र स्थित था, पर बीस मील का यह छिछला समुद्र द्रविडो को नही रोक सका । जब द्वीप खाली पडा था तो ये वहाँ बसने नही आये । पर बाद मे इनका ध्यान इस ओर गया, जब गुजरात के विजय और उसके साथी वहाँ पहुँच गये और मगध आदि से भी हजारो परिवार वहाँ पर आकर बस गये । इस प्रकार द्रविड परिवार का भाषाओ से घिरी रहने पर भी सिंहल की भाषा आर्य परिवार की ही है ।

इसमे भी विचित्र बात यह है कि इसका उत्तर भारत की जिस बोली से अधिक साम्य है, वह भोजपुरी है । भोजपुरी को इसके बोलनेवाले उन्नीसवी सदी मे बर्मा, मलाया फिजी तथा ट्रिनीडाड आदि मे अपने साथ ले गये । सम्भवत इस प्रदेश के लोग ईसा के पूर्व शताब्दियो मे भी सिंहल मे आते रहे हो । वैसे भोजपुर, बगाल तथा गुजरात आदि स्थान के लोग यहा आ बसे ।

इनके सिंहल मे आ जाने पर तथा बस जाने पर ही द्रविडो का ध्यान इधर गया और वे लोग छेडखानी करने लगे । यह सघर्ष ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी से ही प्रारम्भ हुआ । यद्यपि अनुराधपुर समुद्र-तट से दूर था, पर चोळ तथा पाड्यो ने आकर यहा भी अपनी ध्वसलीला दिखायी ।

इस युग मे वस तथा अट्ठकथा साहित्य के निर्माण के साथ कुछ कथा साहित्य की भी रचना हुई । इनका सक्षिप्त परिचय यह है —

(१) **अनागतवस**—यह ग्रन्थ इसी कोटि मे आता है और इसमे

भावी बुद्ध मैत्रेय का वर्णन है । इसके कर्ता अज्ञात ही है । इसमे अनुराधपुर का भी वर्णन चित्रित है—

प्रसाद—"विविध रत्नों की भूमि, अनेक चित्रों से रम्य, सुगन्ध पुष्पों की माला के समान नृत्य-गीत से अभिराम, सुन्दर युवतियो से पूर्ण, अनेक प्रकार की शोभा से आकीर्ण रत्नमय विमान (देव प्रासाद) की ही भाँति उनका निवास-स्थान था ।

वहाँ की किन्नर-किन्नरियाँ मनोरमा थीं, गायन तथा अगनाएँ भी मनोरम थी, नृत्य तथा गीत आदि भी मनोरम थे और अनेक मनोरम प्रसगो का वहाँ पर प्रवर्तन था ।"

(२) **धम्मनन्दी**—अनुराधपुर काल मे ही धम्मनन्दी हुए, जिन्होने 'सिहलवत्थुकथा' नामक पुस्तक लिखी । इसमे प्रस्तुत की गयी कथाएं सुन्दर हैं तथा शैली भी प्रसाद गुण से युक्त है—

"ऐसा सुना जाता है—सुसमृद्ध जनो से समृद्ध, सम्पूर्ण शस्य-सम्पत्ति से नित्य युक्त, सुन्दर भिक्षुओं से बहुल, जनपदो मे माला के समान सौराष्ट्र जनपद मे अचिमन्तशैल नामक पर्वत था । उस पर्वत की एक गुफा मे छह अभिज्ञाओं को प्राप्त किये, महा ऋद्धिवाले एक अर्हत् रहते थे । दूसरा एक गजराज भी उसी पर्वत के आश्रय से रहता था । उसे देखकर किसी वनचर ने उज्जैन के राजा से कह दिया—'देव, इस प्रकार के लक्षणो से युक्त, महाराज के योग्य हाथी अरण्य मे है' । राजा ने सुनते ही उस हाथी को पकडवा लिया ...स्थविर राजा के पास हाथी को छुडवाने के लिए उज्जैन आये । राजा ने उनकी याचना पर हाथी को छोड़ दिया ।"

—.०.—

तीसरा अध्याय

३. पोलन्नरुव युग

द्रविड़ों के आक्रमणो के कारण सिंहल की राजधानी इस समय देश के सबसे महत्त्वपूर्ण तथा सांस्कृतिक केन्द्र अनुराधपुर से हटाकर पहाड़ मे दूर 'पोलन्नरुव' ले जायी गयी। पोलन्नरुव अनुराधपुर की ही भाँति बड़ा था तथा विशाल इमारतो से आकीर्ण था। सिंहल के इतिहास का स्वर्णिम युग यही पर व्यतीत हुआ। इसी काल मे पालि साहित्य की भी अभिवृद्धि हुई और उत्तम टीका ग्रन्थ तथा व्याकरणपरक ग्रन्थो का निर्माण इसी युग मे हुआ। सिंहल के राजा महापराक्रमबाहु ने भी इसे सुशोभित किया, जिसकी नौवाहिनी द्रविड़ देश के चोळो तथा पाड्यो के भाग्य का फैसला करती थी। पूरब मे उसकी धाक बर्मा तथा सुमात्रा तक थी। उत्तम सेनानायक तथा शासक होने के साथ ही वह बहुत बड़ा विद्याव्यसनी था और अपने अनुरूप ही उसे 'सारिपुत्त' सघराज-जैसे गुरु भी मिले थे, जिनके चारो ओर उस समय के प्रख्यात पडितो की मंडली विद्यमान थी।

(१) **सारिपुत्त**—अट्ठकथाए बन चुकी थी। उन पर टीका प्रस्तुत करने का कार्य सारिपुत्त ने किया। ऐसी प्रसिद्धि है कि उन्होने सभी अट्ठकथाओ पर टीकाएं लिखी, परन्तु अब सब नही मिलती।

संघ की एकता

वट्टगामणि ने बाद मे उन तैर्थिको के आराम को बौद्ध स्तूप मे परिवर्तित कर दिया, जो उसकी हार पर प्रसन्न हुए थे। वहाँ पर 'अभयगिरि' के नाम से दूसरा महाचैत्य बना। इस अभयगिरि ने महाविहार की परम्परा को तोड़ने का प्रयत्न किया और फूट महापराक्रमबाहु के समय तक चली आयी। इस प्रकार यह साढ़े बारह सौ वर्षों तक चलती रही और अन्त मे 'सारिपुत्त' के गुरु 'कस्सप' के समय मे ही इसको तोड़ने में सफलता मिली। इसका श्रेय

इन्हीं 'सारिपुत्त' को देना चाहिए । पर इसके थोड़े ही दिन बाद द्रविड़ देश के थेरवादी आचार्य 'कस्सप चोळिय' ने इनकी एक टीका पर आक्षेप किया कि इसमें अभयगिरिको के मतानुसार कोई बात लिखी गयी है । सारिपुत्त के गुरु कस्सप बड़े ही शील-सम्पन्न तथा त्यागी पुरुष थे । इनके सम्बन्ध मे 'समन्तपासादिका' की टीका में इन्होने यह उद्‌गार व्यक्त किया है—

"सिंहलनरेन्द्र पराक्रमबाहु ने जिनकी सहायता लेकर सम्प्रदायो के भेद को मिटा कर धर्म का सशोधन किया; जो ताम्रपर्णी द्वीप मे धर्म के उदय को करने वाले हैं, जो धर्मरूपी आकाश मे चन्द्रमडल के समान हैं; जो प्रतिपत्ति के आधीन हैं तथा सदा ही अरण्यवासी हैं; जो सघ के पिता हैं तथा 'विनयपिटक' मे सुविशारद हैं; जिनके आश्रय मे रहते हुए मुझे धर्म-सम्बन्धी बुद्धि की प्राप्ति हुई, ऐसे महास्थविर काश्यप की मैं वन्दना करता हूँ ।"

'सारिपुत्त' के नाम से अधुना जो अट्ठकथाओ की टीकाए प्राप्त है, उन सबके लेखक वे नही हो सकते और वस्तुत उन्हे उनके शिष्यों ने लिखा होगा और तत्पश्चात् गुरु ने उनका अवलोकन कर लिया होगा । ये सस्कृत के भी पण्डित थे और प्रमाणशास्त्र का पण्डित होने के कारण दिङनाग तथा धर्मकीर्ति के ग्रन्थो से भी परिचित होगे । चान्द्र व्याकरण का उस समय सिंहल में भी प्रचार था और इसकी व्याख्या में भी 'सारिपुत्त' ने अपना योगदान दिया तथा इस पर लिखी गयी 'रत्नमतिपञ्जिका' की 'पञ्जिकालंकार' नामक टीका प्रस्तुत की । इसका अब नाममात्र ही शेष है । 'पदावतार' के नाम से एक सस्कृत व्याकरण का संक्षिप्त ग्रन्थ भी इनके द्वारा लिखा गया था । विनय पर इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पालिमुत्तकविनयविनिच्छय' है । 'महावस' मे इसे 'विनयविनिच्छय' कहा गया है ।

'सारिपुत्त' के शिष्य 'सुमगल महासामी' ने अपने गुरु के सम्बन्ध में 'विभाविनी टीका' के अन्त मे लिखा है—

"सम्पन्नशील, दम-संयम द्वारा सन्तोषित, गुणाकर एवं जितेन्द्रिय भिक्षुओं के समूह द्वारा सम्मानित, बुद्ध के वचनों के पण्डित तथा अनेक

ग्रन्थों की रचना करने के कारण विद्वानों द्वारा सम्मानयुक्त आचार्य-पदवी-प्राप्त; 'विनयट्ठकथा' आदि की 'सवण्णना' जिसके ज्ञान के प्रताप को सूचित करती है...जो अपने नाम में विद्यमान साररूपी गुणो के आकर हैं ... ।"

'अङ्गुत्तरनिकाय' अट्ठकथा की टीका मे वे पराक्रमबाहु के सम्बन्ध मे लिखते है—

"सद्धर्म की स्थिति के इच्छुक, शासन को प्रकाशित करनेवाले राजा पराक्रमबाहु से आदिष्ट हो कर, उन्ही के बनवाये सौ रमणीय प्रासादो से मडित रम्य विहार मे, जो सिहल के स्वामी है, धृतिमान्, यशस्वी, विशालप्रज्ञ, कलाओ मे निपुण, महाबल तथा अद्भुत वृत्ति एव तेजवाले है और सूर्यवश मे उत्पन्न है ... ।"

इनकी कृतियो के सम्बन्ध मे इन्होंने यह कहा है—

"नगरों के अधिराज रम्य 'पुलस्तिनगर' (पोलन्नरुव) मे महाभुज राजा पराक्रमबाहु द्वारा बनावाये हुए रमणीय श्रेष्ठ प्रासादों तथा उपवनो से अभिराम जेनवन विहार' में जो (सारिपुत्त निवास करते है) सर्वत्र फैले हुए यशवाले, विशारद, शुद्ध हृदय वाले, परिशुद्ध कुल मे उत्पन्न, तर्क तथा आगमादि (शास्त्र) मे कुशल, यतीश्वर, गुण से महान्, 'सारी' के पुत्त, यति सारिपुत्त द्वारा, योगियो के उपकार के लिए 'विनयसग्रह' रचा गया और इन्ही के द्वारा इसकी 'लीनत्थपदवण्णना' नामक टीका रची गयी । इन्ही ने अरण्यवासी भिक्षुओं के लिए 'विसुद्धपथसगह' तथा कर्मस्थानिक भिक्षुओ के लिए 'कम्मट्ठानसगह' का निर्माण किया । चन्द्रगोमी के अभिधान पर जो रमणीय 'पञ्जिका' थी, उस पर इन्होंने 'अलकार' नामक व्याख्या प्रस्तुत की । श्रोताओ मे प्रसन्नता उत्पन्न करने के लिए तथा विद्वानो के हित के लिए इन्होंने महामूल्यवान् 'सम्पसादनी' व्याख्या लिखी ।

पवित्र तथा शुद्ध पदक्रम से 'विनयट्ठकथा' की भी विनयज्ञो द्वारा प्रशंसित रम्य टीका इनके द्वारा रची गयी ।

'अङ्गुत्तरनिकायट्ठकथा' की भी स्पष्ट तथा सुसस्कृत टीका भिक्षुओ को पटुभाव मे प्रतिष्ठित करने के लिए इनके द्वारा निर्मित की गयी ।

'मङ्गलसुत्त' के अट्ठकथा की भी एक सुन्दर टीका भिक्षुओ के प्रेमवर्द्धन तथा विद्वानो के लिए इनके द्वारा प्रस्तुत की गयी।

'अभिधम्मत्थसंगह' में उत्पन्न होनेवाली शंकाओं को दूर करने के लिए, भिक्षुओं के लिए (यह) ग्रन्थ सिंहली भाषा में उनके द्वारा लिखा गया।"

वही पर 'सारिपुत्त' के सम्बन्ध में यह भी कहा गया है—

"जिन 'सारिपुत्त' को चान्द्र व्याकरण में चन्द्रगोमिन् के समान, पाणिनीय मे तीक्ष्ण बुद्धिवाले पाणिनि के समान तथा सम्पूर्ण तर्कशास्त्र मे तीव्र-बुद्धि-जन कर्त्ता के समान तत्त्व स्वरूप मानते है; कवित्व मे जिनको कविजनो के हृदय को आनन्द देनेवाले कालिदास के समान मानते हैं, उनकी यह रचना लोगों को अर्थसिद्धि प्रदान करे।"

'सारिपुत्त' सघराज यद्यपि एक बहुत बड़े पडित थे, पर वे नम्र नही थे और यह इन सब विवरणों से प्रटक होता है। उनके साथ शिष्यो तथा अनुयायियो की एक अच्छी मडली थी और इसने उनके कार्य मे बहुत हाथ बँटाया।

पराक्रम से पहले (१०४५–१०७० ई० तक) द्रविड़ों के आक्रमण तथा अधिकार ने सिंहल मे धर्म को बहुत हानि पहुँचायी थी। इसी से भिक्षुणी-सघ ता सदा के लिए ही लुप्त हो गया। उस काल में नगरो के साथ विहारो को भी लूटा गया तथा नष्ट-भ्रष्ट किया गया। सिंहल को एकच्छत्र करने मे पराक्रमबाहु से पूर्व विजयबाहु सफल हुआ था, जिसने १०७० ई० मे चोळ-शासन को समाप्त करके 'पोलन्नरुव' मे अपना अभिषेक कराया था। इसी समय सिंहल की राजधानी भी 'अनुराधपुर' से 'पोलन्नरुव' चली आयी। प्रतिहार राजकुमार जगतीपाल ने दक्षिण सिंहल मे आकर चार वर्ष तक राज्य किया। चोळ उसे लड़ाई मे मारकर उसकी रानी तथा पुत्री को पकड़कर अपने देश ले गये। विजयबाहु के शासन के समय रानी और राजकुमारी मौका पाकर सिंहल भाग आयीं। और कन्नौज राजकुमारी

लीलावती का विजयबाहु से व्याह हुआ। उत्तर भारत के साथ सिंहल राजाओ का यही अन्तिम सम्बन्ध था।

उस समय सिंहल देश मे भिक्षु-सघ भी उच्छिन्न-सा हो गया था। इसलिए विजयबाहु ने बर्मा के राजा अनुरुद्ध से इस सम्बन्ध मे सहायता माँगी। वहाँ पर बर्मा के भिक्षु-सघ की सहायता से सघ की प्रतिष्ठा हुई तथा त्रिपिटक के पठन-पाठन का प्रारम्भ हुआ। ग्रन्थो के बारे मे भी बर्मा से सहायता प्राप्त हुई। इस प्रकार विजयबाहु ने जिस प्रकार से चोळो के चगुल से मुक्त कराकर सिहल को स्वतन्त्र किया उसी प्रकार से भिक्षु-सघ की भी पुन प्रतिष्ठा उनके द्वारा हुई। चोळ-आधिपत्य के समय अनुभूत अत्याचार की तीव्रता के कारण सिंहल के तीन बौद्ध निकायो (महाविहारीय, अभयगिरिक तथा जेतवनीय) मे आपस मे जो कटुता थी तथा जो मतभेदादि थे, उनकी उग्रता मे ह्रास हुआ और इसने 'सारिपुत्त' सघराज को इन तीनो मे एकता स्थापित कराने मे प्रचुर सहायता की। चोळ-शासनकाल में उस देश से ब्राह्मण तथा बौद्ध पडित सिहल मे आये और इससे वहाँ पर सस्कृत भाषा के अध्ययन को प्रोत्साहन मिला। बौद्ध धर्म की स्थिति उस समय चोळ देश मे भी थी और इससे विद्या के क्षेत्र मे भी काफी आदान-प्रदान हुआ। चोळ राजा सभवत बौद्ध धर्म के प्रति सहानुभूति भी प्रदर्शित करते थे। सिहल तथा चोळ, देश दोनो स्थानो मे एक ही स्थविरवाद प्रचलित था और चोळ राजाओ की सहानुभूति न सिहल के अत्याचार को कम करने मे भी सहायता दी होगी।

(२) **मोग्गल्लान** (व्याकरणकार)——कच्चायन व्याकरण पहले से ही मौजूद था। परम्परा बुद्धघोष के समय मे भी इसे विद्यमान मानती है। प्रारम्भिक व्याकरण होने के कारण उसमे व्याकरण के कितने ही नियम छूट गये थे। इधर सस्कृत व्याकरण का और उसमे भी जब चान्द्र व्याकरण का प्रचार बढा तो उसके ढाँचे पर पालि के एक पूर्ण व्याकरण के निर्माण की आवश्यकता हुई और इसकी पूर्ति मोग्गल्लान ने अपने इस व्याकरण को लिखकर की, जिसमे सूत्र, वृत्ति तथा उणादिपाठ आदि है। इसमे

८१७ सूत्र हैं, साथ ही लेखक द्वारा इस पर 'पञ्चिका' भी प्रस्तुत की गयी है। व्याकरण के अन्त में उन्होंने लिखा है—

"जिस राजा के प्रभाव से कुदृष्टिवाले बुरे भिक्षुओं द्वारा सर्वथा विकृत किया गया मुनिराज का धर्म ठीक से शुद्ध होकर पूर्ण चन्द्र के सयोग से समुद्र की भाँति बढ रहा है, उस श्रद्धा-बुद्धि-गुण-समन्वित, मनुवश-ध्वज-स्वरूप पराक्रमबाहु के लका द्वीप मे शासन करते समय, शुचिशील, धीमान् स्थविर 'मोग्गल्लान' ने जिस ग्रन्थ को सुज्ञेय, असदिग्ध तथा स्पष्ट बनाया।"

(३) **मोग्गल्लान** (कोशकार)—'अभिधानप्पदीपिका' कोश ग्रन्थ के रचयिता तथा व्याकरणकार ये दोनो 'मोग्गल्लान' शायद एक ही हो, पर इसमे भी सन्देह किया जाता है। यद्यपि उनकी कृतियो मे ऐसा कोई सकेत नही है। अपने इस कोश मे उन्होंने कहा है—

"लका मे गुणभूषण, तेजस्वी, विजयी, पराक्रम मे सिह के समान पराक्रमबाहु नामक भूपाल है। उन्होंने चिरकाल से तीन निकायो मे बँटे हुए *भिक्षु-सघ को सम्यक् रूप से एक मे करके साकार कीर्ति की भाँति* सघ मे सदा आदरवान् हो, उसके लिए महार्घ (भोजन आदि) प्रत्यय दिये, जिसके सर्वकामप्रद असाधारण अनुग्रह को पाकर मैंने भी विद्वानो के गोचर ग्रन्थकार पद को प्राप्त किया, उन्ही के द्वारा बनवाये हुए प्रासाद, गोचर आदि से विभूषित जेतवन नामक विहार मे रहते समय शान्त स्वभाव, धीमान् एव सद्धर्म की चिरस्थिति की कामनावाले स्थविर 'मोग्गल्लान' ने इस 'अभिधानप्पदीपिका' को रचा।"

(४) **धम्मकित्ति**—ये 'सारिपुत्त' सघराज के योग्य शिष्य थे। शास्ता को नमस्कार करते हुए वे कहते है—

"विशारद, वाद के पथ से दूरवर्ती, तीनो लोको के प्रद्योत-स्वरूप, अखिल ज्ञेयावरण को हटानेवाले तथा असह्य का सहन करनेवाले अनन्त-गोचर शास्ता को मै नमस्कार करता हूँ।"

अपने काव्य ग्रन्थ 'दाठावस' मे उन्होंने दन्तधातु का इतिहास लिखा है। बुद्ध की यह धातु कलिंग में पूजी जाती थी। राजा की अनुमति से

उसकी पुत्री तथा दामाद इसे सिंहल ले आये, यहाँ आज भी 'कैन्डी' मे वह है। 'धम्मकित्ति' ने पराक्रमशीला रानी लीलावती के शासनकाल मे इस ग्रन्थ की रचना की थी। 'पोलन्नरुव' मे सस्कृत का जितना प्रभाव विद्वानो पर पडा था, उसकी छाप 'दाठावस मे होनी ही चाहिए। पराक्रमबाहु के पश्चात् राजा बनानेवाले जो अमात्य हुए, उनमे सेनापति पराक्रम भी था, जिसकी प्रशसा करते हुए 'धम्मकित्ति' कहते हैं—

"काळकनगरवश के विभूषण, जिनशासन तथा जनता की समृद्धि चाहनेवाले पराक्रम सेनापति है जिन्होने बुद्ध धर्म मे श्रद्धावाली लीलावती को लका देश की राजलक्ष्मी बनाया।"

दन्तधातु को सिहल मे लानेवाली कुमारी हेममाला का वर्णन इस प्रकार से उन्होने किया है—"राजा 'गुहसीव' मुनीन्द्र बुद्ध की उस धातु को अपने नगर मे ले जाकर, अच्छी तरह सम्मान करते हुए तथा प्राणियो का सुगति गमन के मार्ग पर योजित करते हुए, सुपुण्य का सचय करते हुए विहार करता था।

उसकी (उस 'गुहसीव' राजा की) विकसित कमल के समान आँखोवाली, हमकान्तागामिनी, (अपने) मुख की आभा से सरोज का भी विजित करनेवाली, हार के भार से लदी हुई तथा कुचो के भार से अवनताङ्गी हेममाला नामक कन्या थी।

सम्पूर्ण गुणो के निधान, बन्धुत्व के अनुरूप तथा सुन्दर विमल कुल मे उत्पन्न उस कुमार को जानकर राजा 'गुहसीव' ने उसे (उस राजपुत्र को) सम्मान के साथ अपनी कन्या दे दी।"

इसके पश्चात् इस दन्तधातु की समुद्र-यात्रा का वर्णन निम्न प्रकार से है—

"कुसुम गन्ध के चूर्ण से आकीर्ण करो द्वारा नित्य ही कौतुकवश देवताओ द्वारा अनुगमन कराते हुए, मार्ग मे दुर्गम, गहन पहाड को पार होकर धीरे-धीरे वे ताम्रलिप्ति के बन्दरगाह पर पहुँचे।

सिंहल जानेवाले जहाज पर अपने काम से जानेवाले वणिजों को उन्होंने देखा और तब वे सिंहल जाने के इच्छुक द्विजप्रवर शीघ्र ही जाकर नाविक से बोले तथा उनके श्रुति-सुखद-वचन एवं साधु आचार से प्रमुदित हृदय हो उन्होंने उन्हें जहाज पर बैठा लिया।

धातु लेकर समुद्र पर आरूढ़ होने से (वहाँ के) चंचल तरंगों की माला शान्त हो गयी। सुगन्धि-युक्त तथा मनोज्ञ उत्तर-दिशावाली (उत्तरहिया) वायु बहने लगी तथा दिशाएं भी सर्वथा विमल एवं रुचिर शोभावाली हुईं...।

वह जहाज पवन से प्रकम्पित ध्वज तथा उच्च तरंग की पंक्ति तथा मेघावलि को चीरता हुआ स्थविर की उस सिद्धि से एकाएक लंकापट्टन में उतरा।

धातु को उत्तर विहार में ले जाकर प्रतिवर्ष ऐसी पूजा करने के लिए कीर्ति श्री मेघ नामक उस सत्यप्रतिज्ञ राजा ने पूजाचार का लेख लिखवाया।"

'दाठावंस' के अन्त में ग्रन्थकार ने अपना परिचय देते हुए लिखा है—

"जिसने चन्द्रगोमिन् रचित शब्दशास्त्र तथा उसकी पञ्चिका की प्रशस्त टीका रची तथा विनयट्ठकथा 'समन्तपासादिका' की बुद्धिप्रभावोत्पादिका टीका की रचना की।

श्रेष्ठ अङ्गुत्तर आगम (निकाय) की अट्ठकथा 'सम्मोहविनोदिनी' के भ्रम को नष्ट करने के लिए, जिसने उसकी टीका का निर्माण किया तथा योग में लगे संयमी जनों के हितार्थ 'विनयसङ्गह' नामक ग्रन्थ को रचा।

उस शान्त-इन्द्रिय, प्रतिपत्ति-परायण, तापस वृत्ति में निरत और समाधिस्थ, अल्पेच्छ आदि गुणों से विभूषित, सम्बुद्ध के शासन के महान् उन्नति के कारण;

सभी (शास्त्रों) में परम आचार्य पद को प्राप्त, शास्त्रों में तथा दूसरे वादों में कोविद, महास्वामी 'सारिपुत्त' के शिष्य तथा उनके विमल वंश में उत्पन्न;

शुद्ध वंशवाले, करुणादि गुणों के उदय से युक्त, तर्क तथा आगम

आदि मे निपुण; विशारद, सर्वत्र प्रसारित चन्द्र-किरणजाल के समान अपनी कीर्ति प्रसारित करनेवाले एव परीक्षक;

अखिल श्रद्धाधनवाले तथा नाम से 'धम्मकित्ति' राजगुरु ने श्रोताओ मे प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाले, सर्वदर्शी के प्रभाव के दीपस्वरूप 'बुद्ध-दन्तधातु वस' (इस इतिहास) की रचना की।"

'महावस' के द्वितीय भाग को लिखने वाले सम्भवत यही 'धम्मकित्ति' है। इस ग्रन्थ को मूल लेखक ने सैंतीसवे परिच्छेद तक लिखा था और ये उसे आगे बढाकर जम्बुद्रोणि (दम्बेदेनिय) काल तक ले आये?

(५) **बड़े छोटे वाचिस्सर**—बड़े वाचिस्सर 'सम्भवत' सारिपुत्त के समकालीन अथवा उनसे भी कुछ बडे थे। उनकी रचनाए है—'खेमप्प-करणटीका', 'उत्तरविनिच्छय', 'विनयविनिच्छय', 'रूपारूपविभाग' आदि।

छोटे वाचिस्सर 'सारिपुत्त' के शिष्य थे। इनकी कृति 'थूपवस' है। यह 'महाबोधिवस' के समान ही है। इसमे बुद्धधातु पर बने सिहल के 'रत्नमाल्य' आदि स्तूपों का वर्णन है।

(६) **मेघङ्कर उदुम्बरगिरि**—यह 'सारिपुत्त' तथा वैयाकरण 'मोग्गल्लान' दोनो के शिष्य थे। इन्होने 'विनयत्थसमुच्चय' नामक ग्रन्थ लिखा है।

धीरे-धीरे 'पोलन्नरुव' ने भी सस्कृति और सम्मान आदि मे अनुरातपुर का ही स्थान ग्रहण कर लिया। सिहल राजवश का सम्बन्ध उस समय कलिग के इलाके से हो गया था। और यह ख्याल किया जाता था कि विजय और उसके साथी कलिग के थे। वस्तुत. विजय न तो कलिग का था, न बंगाल का। यह उसके आये हुए मार्ग से ही व्यक्त होता है। वह नाव पर भरुकच्छ (भडोच) तथा सुप्पारा होते हुए ताम्रपर्णी पहुँचा। इस प्रकार यही व्यक्त होता है कि वह लाट (गुजरात) देश का था। पराक्रम के चौथे उत्तराधिकारी कलिग राजकुमार थे। उन्होंने अपने शिलालेखो में इस पर बहुत जोर दिया है कि सिहल सिंहासन का उत्तराधिकारी कलिगवंशी राजकुमार ही हो सकता है।

पराक्रम के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियो मे इतनी शक्ति न रही कि वे राज्य को सँभाल सकें, साथ ही आपसी षड्यन्त्रो से इनमें से कोई भी अधिक दिन तक टिक न सका। इन सब कमजोरियो से फायदा उठाकर मलबार लोगों ने, जो बराबर ही ऐसे अवसरों की ताक में थे, सिंहल पर आक्रमण कर दिया। उनका सेनापति माघ था। उन्हे विजय मिली और माघ राजा हुआ। उसका शासन बहुत ही कठोर एव नृशस रहा। उसके आक्रमण तथा शासनादि के सम्बन्ध मे 'महावस' मे उल्लेख है---

"लका-राज महावन को निपीडन मे दावानल के समान उसने बहु-सख्यक योद्धाओ को इस कार्य मे लगाया। उसके वीर महायोद्धा उन्माद करते हुए कहते थे कि हम केरल योद्धा हैं।

उसने मनुष्यो की सारी सम्पत्ति को छीन लिया तथा चिरकाल से रक्षित कुलाचार को तोड दिया। उसने बहुत-से मन्दिरों को तोड़ा, मनुष्यो के हाथ पैर काटे तथा गाय, भैस आदि को अपने हाथ मे कर लिया।

महाधनी लोगो को बाँधकर उनका वध करके उनके सारे धन को हर कर उन्हे दरिद्र बना दिया।

उसने प्रतिमा-गृहो को तोड़ दिया, बहुत-से स्तूपो को ध्वस्त कर दिया, तथा विहारो मे घूमते बहुत से उपासको को मार डाला।

ये लोग बच्चो को, धार्मिक लोगो एव सन्तो को पीटते थे तथा धनिको के धन को उन्होने हर लिया। वे सब दरिद्र हो गये।

प्रसिद्ध तथा बहुमूल्य पुस्तकों की भी रस्सी खोलकर उन्होने जहाँ-तहाँ फिंकवा दिया।

उन्होने श्रद्धालु पूर्व राजाओं द्वारा निर्मित 'रत्नमाल्य' आदि चैत्यों को गिराकर ध्वस्त किया और उनमे रखी हुई शरीर धातुओ को भी भ्रष्ट किया।

इस प्रकार मार के समान उनका आचरण था। तब पुलस्त्यपुर (पोलन्नरुव) को भी सब तरह से घेरकर उन लोगों ने दखल किया और विहारों तथा परिवेणों को कितने ही योद्धाओं का निवास-स्थान बनवाया।"

इस प्रकार के जोर तथा जबर्दस्ती से माघ महीपति सिंहल मे इक्कीस वर्ष तक राज्य करता रहा। माघ के आक्रमण के बाद 'पोलन्नरुव' फिर न सँभल सका। आज भी माघ के अत्याचारो के चिह्न 'पोलन्नरुव' की पुरानी इमारतों पर देखे जा सकते है। इसके बाद 'जम्बुद्रोणि' (दम्ब-देनिय) राजधानी बनी।

—:०:—

चौथा अध्याय

४. जम्बुद्रोणिकाल

माघ के अत्याचार-युक्त शासन से कितने ही विद्वान् स्थविर द्रविड़ देश भाग गये। इसके पश्चात् विजयबाहु ने राजधानी बदली। पोलन्न-रुव काल मे पालि की सर्वाङ्गीण उन्नति हुई थी। साथ ही संस्कृत की ओर भी दृष्टि थी। जिस समय पोलन्नरुव के विहारो की ध्वसलीला माघ कर रहा था, उस समय नालन्दा तथा विक्रमशिला तुर्कों द्वारा ध्वस्त हो चुके थे। जिस प्रकार से माघ के राज्य की स्थापना एकाएक हुई थी, वैसे ही उसके राज्य का उच्छेद भी अचानक ही हुआ। धर्म-ध्वंस के कारण सम्पूर्ण सिंहल जाति का कुपित होना स्वाभाविक ही था। अतः इक्कीस वर्ष के उसके शासनकाल मे सिंहल वीरों ने उसे चैन से नही रहने दिया। इस समय उत्तर भारत मे मुस्लिम शासन स्थापित हो गया था। सिंहल पर माघ के साथ ही चोलो का भी भय जाता रहा और विजयबाहु ने 'दम्ब-देनिय' को राजधानी बनाया।

इस प्रकार इस युग में भी पालि के बहुत विद्वान् आविर्भूत हुए, जिनका सक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है—

(१) संघरक्खित—ये 'सारिपुत्त' के शिष्य थे तथा उस समय सघराज थे। माघ के शासनकाल मे धर्म की जो अवनति हो गयी थी, उसके सुधार के लिए एक परिषद् करने की अत्यन्त आवश्यकता थी। अतः इनके तथा मेधङ्कर उदुम्बरगिरि की प्रधानता में विजयबाहु द्वारा निर्मित 'विजयसुन्दराराम' में यह परिषद् बैठी और इसमें आपसी मतभेदों को दूर करने का प्रयत्न किया गया। विजयबाहु ने माघ के शासनकाल में ही जम्बुद्रोणि को अपना केन्द्र बनाया था और उस अशान्ति के समय मे भी

आचार-वैराग्य में दृढ वनवासी सम्प्रदाय के भिक्षुओ का प्रभाव बढ़ता रहा ।

(२) **वनरतन तिस्स**--ये वनवासी सम्प्रदाय के थे । 'उदुम्बर मेघङ्कर' के शिष्य 'आनन्द वनरतन' भी इसी सम्प्रदाय के थे, जिनके द्रविड शिष्य 'बुद्धप्पिय' अपने गुरु को ताम्रपर्णी-ध्वज कहते है । आनन्द ने 'पियदस्सी' के व्याकरण-ग्रन्थ 'पदसाधन' की टीका और 'खुद्दकसिक्खा' की टीका लिखी । 'अभिधम्म मूल-टीका' के रचयिता भी ये ही कहे जाते हैं ।

(३) **सद्धम्मोपायन**--इस ग्रन्थ का रचनाकाल भी यही है । इसमे धर्म का महत्त्व बतलाया गया है । इसके कर्ता 'अभयगिरि' के कविचक्रवर्ती आनन्द महाथेर थे । ग्रन्थ मे यह स्पष्ट नही होता कि ये आनन्द वनरतन आनन्द' थे या दूसरे । ग्रन्थारम्भ मे यही लिखा है कि अपने मित्र तथा साथी 'बुद्धसोम' को धार्मिक भेट करने के लिए ही लेखक ने इसकी रचना की थी। इसमे १६ परिच्छेद हैं, जिनमे मनुष्य-जन्म प्राप्त करने की कठिनाइयाँ, पाप करने की प्रवृत्ति तथा इसके भयकर विपाक के स्वरूप प्रेतलावादि का वर्णन है ।

पराक्रमबाहु तृतीय ने द्वीप को आक्रमणकारियो से मुक्तकर बहुत जल्दी फिर से इसे बसा दिया । अपने पाण्डित्य के कारण ही कलिकाल-सर्वज्ञ की उपाधि से उन्हे विभूषित किया जाता है । उस समय भिक्षुओ के आचार मे शिथिलता आ गयी थी और उसे हटाने के लिए 'आरञ्ञक मेघङ्कर' की अध्यक्षता मे इन्होने बौद्ध परिषद् का आयोजन करवाया । इस समय वनवासी (अरञ्ञवासी) सम्प्रदाय की प्रधानता स्थापित हुई । भिक्षुओं के उच्च शिक्षण की व्यवस्था इनके द्वारा हुई और इसके लिए चोळ देश से विद्वान् भिक्षु बुलवाये गये ।

इसी काल मे भिक्षु अर्थदर्शी ने 'भेसज्जमञ्जूसा' नामक आयुर्वेद के ग्रन्थ को पालि मे लिखा और इसका सिंहली अनुवाद पीछे अठारहवी शताब्दी मे सघराज 'सरणङ्कर' द्वारा प्रस्तुत किया गया । सिंहली मे लिखे

गये विनय-नियमो के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सिक्खाबलञ्द' का पालि-अनुवाद भी 'सिक्खापदवलञ्जानि' शीर्षक से इन्ही भिक्षु ने किया।

'थूपवस' भी इसी समय की ही रचना है और इसके सम्बन्ध मे ऊपर कहा जा चुका है।

(४) **अनोमदस्सी**—'हत्थवन-गल्लविहारवस' इन्ही के शिष्य की कृति है। इसमे गद्यभाग ही अधिक है और भाषा तथा शैली दोनो ही अत्यन्त प्रौढ है। इसमे ११ अध्याय है और आठ अध्यायो मे 'सघबोधि' का चरित वर्णित है और अन्तिम तीन परिच्छेदो मे उस राजा के अन्तिम निवास-स्थान पर (जहाँ पर 'सघबोधि' ने लोभी राजा को अपना सिर काटकर दे दिया था, वहाँ के) निर्मित विहारो का वर्णन है। कविता भाग तथा गद्य भाग दोनो ही मधुर तथा प्राञ्जल है। इसके उद्धरण मैने 'पालि-काव्य-धारा' मे दिये है, फिर भी नमूने के तौर पर नीचे कुछ अश दिये जा रहे है—

"तब सारे राष्ट्रवासी अमात्यो के साथ महाविहार गये और वहाँ पर महासघ की बैठक कराकर, सघ के बीच 'सघबोधि' राजकुमार से प्रार्थना की। तब 'सघबोधि' राजकुमार ने सघ को दडवत् नमस्कार करके, अवकाश प्राप्त कर, इस प्रकार से कहना प्रारम्भ किया—यह राजलक्ष्मी जैसे-जैसे जलती है, वैसे-वैसे कपूर की दीपशिखा की भाँति काजल से मलिन कर्मों को ही वमन करती है। यह है तृष्णारूपी विषलता के लिए बढानेवाली जलधारा, इन्द्रिय रूपी मृगो के लिए निषाद (शिकारी) की मधुर गीत-सी, सच्चरित्र रूपी चित्रपट के लिए छूने की धूमरेखा-सी, मोहनिद्रावालो के लिए विभ्रमशय्या, प्रज्ञादृष्टिवालो के लिए आँख की फूली के समान, अविनय रूपी महासेना के लिए आगे चलनेवाली पताका के समान, क्रोधावेग रूपी मगरो के लिए उत्पन्न नदी-सी, मिथ्यादृष्टि मद्यपो के लिए मद्यशाला-सी, ऐश्वर्य-विकार-वाले अभिनेताओ के लिए सगीतशाला-सी, दोषरूपी सर्पों के लिए निवासगुफा, सत्पुरुषोचित व्यवहार के लिए भगानेवाली बेंत की छडी की भाँति, सुचरित रूपी हसो के लिए अकाल मेघ-सी, कपट नाटक की प्रस्तावना-सी, काम रूपी हाथी के लिए केले-सी, साधुता के लिए सूली

पर चढ़नेवालो को दी जानेवाली माला-सी, धर्म रूपी चन्द्रमडल के लिए राहुमुख-सी। मै किसी ऐसे (व्यक्ति) को नही देखता हूँ, जो इस राजलक्ष्मी द्वारा गाढालिङ्गन किया गया हो और धोखे मे न पडा हो।

..

"गोठाभय ने राज्य पाकर कुछ दिन। मे सोचा--मेरी चडता से विरक्त हो प्रजावर्ग वन मे गये 'सघबोधि' को लाकर शायद राज कराने का प्रयास करे। शकित हो 'उसे मरवा डालना होगा' यह निश्चय कर नगर मे भेरी बजवायी--'सघबोधि' राजा के सिर को जो लायेगा, उसे एक सहस्र पारितोषिक स्वरूप मिलेगा।

मलयदेशवासी कोई गरीब आदमी अपने काम से पोटली मे भात ले जा रहा था। भोजन के समय खाते के पास बैठे हुए 'सघबोधि' राजा का देखकर, उसके आकार से प्रसन्न हा भोजन के लिए निमन्त्रित किया। राजा ने स्वीकार नही किया। उस पुरुष ने कहा--'मै छोटी जाति का नही हूँ, न प्राणिवध से जीविकापार्जन करनेवाला केवट अथवा शिकारी हूँ। उत्तम वर्ण भोजन याग्य वश मे पैदा हुआ हूँ। कल्याणधर्मा (आप) इस भात को खा सकते हैं।'

उसके आग्रह का न ठुकरा सकते भात खाकर उससे पूछा-- अनुराधपुर का क्या समाचार है जो सिर लाकर देगा, उसे एक सहस्र पुरस्कार स्वरूप प्राप्त होगा उसकी बात के तुरन्त बाद साचा--मेरे सहस्र मूल्यवाले सिर के दान से इस समय इसका प्रत्युपकार हो सकेगा .. भो पुरुष, मै वही 'सघबोधि' राजा हूँ। मेरे सिर को ले जाकर राजा को दिखला .देव, मै इस प्रकार का पातक कार्य नही करूँगा तब राजा ने समझाया--मत डरो, सहस्र कार्षापण के लाभ का मै ही उपाय करूँगा .

मुड अलग हो गया, यह जान राजा ने उसी मुट्ठी से कपडे प्रवाहित होती हुई शोणित धारा के साथ अर्थी की हथेली पर रख दिया।

(५) **वनरतन आनन्द**--विजयबाहु के समय हुई बौद्ध परिषद् के ये अध्यक्ष थे। माघ के शासन मे शायद ये पाण्ड्य देश के श्रीवल्लभपुर

(मदुरा) में चले गये । 'उपासकजनालकार' नामक अपने ग्रन्थ में वे लिखते हैं—

"विशुद्ध वर्णवाले बुद्ध को, उनके द्वारा सुवर्णित श्रेष्ठ धर्म को एवं दोषों से विमुक्त सघ को नमस्कार करके 'उपासकालंकार' की मै रचना करता हूँ ।

इन तीनों वस्तुओं (बुद्ध, धर्म, संघ) की जो उपासना करते है, वे उपासक कहे जाते हैं, वे ही शरण आदि गुणो को भूषित करते हुए उपासको के अलकार कहे जाते हैं ।

जनो के भूषण तथा उनके गुणो का प्रकाशक होने से यह ग्रन्थ अथवा शब्द तथा अर्थ के अनुसार ही पण्डितों द्वारा 'उपासकालंकार' जानना चाहिए ।

अनेक सूत्रों से सार ग्रहण करके अनाकुल होकर इसका कथन किया जा रहा है, जैसे कि चतुर जन अनेक खानो की मणियों को लेकर उत्तम मुकुट बनाते है ।"

ग्रन्थकार-परिचय

"दूसरे बौद्ध-निकायों से बिना मिश्रण किये, अनाकुल, महाविहार-वासियो की परम्परा पर आधारित,

श्रीवल्लभी नाम से प्रसिद्ध श्रेष्ठ नगर मे विशाल कुल मे उत्पन्न श्रद्धालु तथा महाधनी,

सत्य-प्रतिज्ञ, नीति मे दक्ष पाण्डय भूमण्डल मे एक ही सामन्तराज 'चोलगंग' नाम से प्रख्यात था ।

उसके बनवाये हुए अतिदर्शनीय तीन रमणीय विहार पृथिवी-रमणी के मुकुट की भाँति प्रकाशमान है ।

उनमे से जो सुदर्शन शीतल-जल-युक्त नानातरुसमूह के आलय-सा सबमें श्रेष्ठ विहार (है);

जो अनेक जनों के सम्मोद नयनरूपी भँवरों के समागम-सा (है) तथा उसका एक भाग कीर्ति रूपी लता-मंजरी-सा देदीप्यमान (है) ।

स्वर्ग में जाने की सीढी के समान, प्राणियो का परम भवन, पाप अपहरण करने मे रमणीय 'करणी' नाम से प्रसिद्ध (है),

वह गुणो का आकर 'पेरम्पल्ली' इस नाम से विद्वानो द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। सम्पूर्ण लका द्वीप जब द्रविड रूपी आग से आकुल हो गया था,

तो यहाँ अपनी रक्षा के लिए तथा पुन धर्म की वृद्धि के लिए सदा ही सद्धर्मगोचर तम्बपर्णी के ध्वज-तुल्य स्थविर आये।

आगम की अनुरक्षा करते हुए वे जहाँ रहते थे उसके पूर्व उत्तरवाले रमणीय प्रासाद मे बसते हुए मैंने सदा सज्जनो के रजक इस अलकार को रचा।

(६) **वनरतन मेधङ्कर**—ये भी अरण्यवासियो मे से ही थे। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ 'जिनचरित' (एक छोटी-सी काव्य पुस्तिका) तथा 'पयोगसिद्धि (व्याकरण का ग्रन्थ) है। 'जिनचरित' मे बुद्ध की जीवनी वर्णित है और इसके साथ ही इसमे बुद्ध के उपदेश कार्यों का भी विवरण दिया गया है तथा बुद्ध के विभिन्न वर्षावास भी इसमे वर्णित है। इसमे प्रस्तुत की गयी बुद्धजीवनी मे कोई नवीन बात का उल्लेख नही है और सम्पूर्ण वर्णन का आधार जातक-निदानकथा ही है। इस पर संस्कृत के काव्यो का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर है। यद्यपि मेधङ्कर नाम के सिहल मे कई व्यक्ति हुए है, पर ये वनरतन मेधङ्कर' के नाम से प्रसिद्ध थे। इनके समय के सम्बन्ध मे भी विद्वानो मे विवाद है। इन्होने तो केवल यही व्यक्त किया है कि इस ग्रन्थ की रचना उनके द्वारा राजा विजयबाहु द्वारा निर्मित परिवेण मे हुई। इसी को आधार बनाकर विद्वानो ने इनके काल के सम्बन्ध मे अपने अनुमानो को प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। इन सबका निष्कर्ष यही निकलता है कि निस्सन्देह ही इनका समय तेरहवी सदी का उत्तरार्ध है।

'जिनचरित' के निम्नलिखित नमूने इनकी शैली को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त है—

हिमालय-वर्णन

"हरिचन्दन, कपूर तथा अगर की गन्धो से वासित, सुपुष्पित चम्पा, अशोक, पाटलि, तिलक वृक्षो तथा सुपारी, पुन्नाग आदि आदि के वृक्षो से मडित;

सिंह, बाघ, तरक्ष, हाथी, चीते तथा अश्व आदि अनेक मृगों से समाकुल;

मैना, रविहंस, हंस, तोता, क्रौंच, कबूतर तथा करविक आदि पक्षियों से कूजित;

यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, देव, दानव, सिद्ध तथा विद्याधरो आदि से सेवित;

स्वर्ण तथा मणि के सोपानवाले अनेक तीर्थों और सरोवरो से शोभित एव देवाङ्गनाओं की क्रीड़ा से शोभित;

शीतल फुहार से ढँके आँगनो से मडित तथा किन्नर और नागो के रमणीय रगस्थलों से विराजित;

मोरों के वन-नृत्यो से तथा लताओं के मडपो से एवं श्वेत बालू से ढँके आँगनो से मडित (हिमालय था)।"

सिद्धार्थ के जन्म पर प्रकृति का आचरण

"उस समय कुते हरिणो के साथ, हर्ष-पूरित हो कौए उल्लुओं के साथ, नाग सुनहले गरुड़ो के साथ और चूहे बिल्लियो के साथ खेलने लगे।

मृग सिंहो के साथ वैसे ही मिल गये जैसे पुत्रो के साथ माता-पिता का समागम होता है। नाव से विदेश को गये यात्री स्वदेश वापस आ गये...।

महासागर नाना वर्ण के नील कमलों से विभूषित सात तरगो की मालावाला हो गया था और (उसका) जल भी अत्यन्त सुखद हो गया था...

अकाल मेघ के प्रिय सगम से पृथ्वी रूपी बहू अत्यन्त शान्त हो गयी; देवों के अनेक प्रकार के पुष्पो की वृष्टि से विभूषित और भी यह विभूषित हो गयी थी।

:o: :o:

कोमल, शीतल तथा मनोज्ञ गन्धवाला वायु सम्पूर्ण प्राणियों के लिए

सुखप्रद होकर प्रवाहित होने लगा और अनेक रोगो से दुष्पीड़ित शरीरवाले लोग उनसे मुक्त होकर सुखी हो गये।"

ग्रन्थकार-परिचय

"लका के अलकारभूत राजवश के केतु विजयबाहु राजा के अपने नाम से बनवाये,

जलाशय, प्राकार, गोपुर आदि से शोभित श्रेष्ठ रमणीय विहार मे वास करते हुए शान्तवृत्तिवाले,

दयालु तथा धीमान्, मेधङ्कर स्थविर ने सदा सन्तो द्वारा सेवित इस (ग्रन्थ) को रचा।"

'वनरतन मेधङ्कर' का द्वितीय ग्रन्थ 'पयोगसिद्धि' है, जो मोग्गल्लान व्याकरण को आधार बनाकर प्रयोगो को ध्यान मे रखकर प्रस्तुत किया गया है। इसमे लेखक ने कच्चायन व्याकरण को आधार बनाकर प्रक्रिया-नुसार' बुद्धप्पिय दीपङ्कर' द्वारा प्रस्तुत किये गये ग्रन्थ 'रूपसिद्धि' मे वर्णित खण्डना का उत्तर उपस्थित करने का प्रयत्न किया है।

(८) **बुद्धप्पिय दीपङ्कर**—ये चोळ देश के अच्छे पडित थे। इनका सम्बन्ध सम्भवत 'वनरतन आनन्द' से उसी समय हुआ था, जब वे मदुरा के 'पेरम्पल्ली' विहार मे माघ के अत्याचारो के कारण शरणागत हुए थे। 'बुद्धप्पिय' वनरतन आनन्द' को अपना गुरु मानते थे। पडित पराक्रम ने सिंहल मे पुन शासन की प्रतिष्ठा के लिए चोळ देश से भिक्षु-सघ को जब आमन्त्रित किया था तो सम्भवत ये भी उसी प्रसग में ही सिंहल आये थे। इनके ग्रन्थ 'पज्जमधु' तथा 'रूपसिद्धि' आदि है, जिनके विषय मे 'द्रविड प्रदेश मे पालि' नामक अध्याय मे आगे विवरण प्रस्तुत किया जायेगा।

(८) **संघरक्खित**—'सारिपुत्त' के शिष्य तथा सम्राट् विजयबाहु के समय मे सघराज थे। इनकी कृतियाँ है—(१) 'सुबोधालकार' (२) 'वुत्तोदय' (३) 'खुद्दकसिक्खाटीका,' (४) 'सुसद्दसिद्धि' (५) 'मोग्गल्लानपञ्चिकाटीका', (६) 'सम्बन्धचिन्ता' तथा (७) 'योगविनि-

विनिच्छय' आदि । इन रचनाओं से यही ज्ञात होता है कि ये बहुत-से विषयों के पंडित तथा ऋजु प्रकृति के थे । 'सुबोधालंकार' की रचना उन्होंने संस्कृत के विख्यात कवि दडी के 'काव्यादर्श' के ढंग पर की ही जिसमे उदाहरण उन्होने अपने ही द्वारा बुद्ध-महिमापरक पद्यों को रचकर रखा । नीचे 'सुबोधालंकार' के उदाहरण दिये जा रहे है—

"मुनिराज बुद्ध के मुख-कमल-रूपी गर्भ से उत्पन्न सुन्दर तथा प्राणियों की शरण वाणी (सरस्वती) मेरे मन को प्रसन्न करे ।

रामशर्मा आदि के तो प्राचीन अलंकार (ग्रन्थ) विद्यमान है तथापि वे शुद्ध मागधी (पालि) के कानन मे प्रयुक्त होते है ।

इसलिए अलंकारवर्जितों को भी ठीक-ठीक अलकारो से सन्तुष्ट मै कर सकू, इसीलिए मेरा यह श्रम है ।

सभी गुणो से विवेकी पुरुष की पूजा करना ही पूजा है । अविवेकी जनो के पास लोग विवेक को नही प्राप्त कर सकते ।

सभी कुशल, अकुशल, प्रबल अथवा अप्रबल जब तक ज्ञान न हो तब तक दुःखप्रद ही होते है

मेरे द्वारा विहित विधानादि आनन्दप्रद त्रिरत्न को आनन्दित करते हुए आदर के सहित प्रकाशित हों

... ..

स्त्रियों पर, दुर्जनों पर, विष पर, सींगवाले पशुओं पर, नदी पर, रोग पर तथा राज्याधिकारियों पर विश्वास करना ठीक नही है ।

... ...

सभी कोमल वर्णों से अनुप्रास प्रशंसनीय नही है, जैसे कि लीन चचल भ्रमर-पंक्तिवाली चमेली की माला ।

... ...

हे जिनेश्वर, जो लोग नेत्ररूपी अञ्जलि दोने से तुम्हारे शरीर की कान्ति का पान करते हैं, वे तृप्त नहीं होते हैं, क्या आप तृषा लानेवाले भी है ?

... ...

चन्द्र क्षयधर्मा है, कमल बहुत रज (मल) वाला है, अत तुम्हारा मुख उनके समान होता हुआ भी उत्कृष्ट है—इसे निन्दोपमा कहा जाता है।

मुनीन्द्र का मुख शोभायमान तथा मनोहर चमकता है। हे चन्द्र, ऊपर उगे हुए भी तेरी चेष्टा व्यर्थ है।"

'खुद्दकसिक्खा' की टीका मे अपने गुरु के सम्बन्ध मे ये कहते हैं—

"अनेक शास्त्रो मे विशारद, महागुणी एव महाप्रज्ञ अपने गुरु 'सारिपुत्त' महास्वामी को मैं शिर से नमस्कार करता हूँ।"

(६) वेदेह—इनके काल के सम्बन्ध मे विवाद है। कुछ लोग इसे तेरहवी सदी और कुछ चौदहवी सदी मानते हैं। ये वनवासी सम्प्रदाय के थे और 'वनरतन आनन्द' के शिष्य थे। इनकी कृतियाँ हैं—(१) 'समन्त-कूटवण्णना तथा (२) रसवाहिनी'। सिंहल का प्राचीनतम व्याकरण ग्रन्थ 'सिदतसगरा' (सिद्धान्तसग्रह) को भी इन्ही की रचना कहा जाता है।

इनका ग्रन्थ रसवाहिनी' बडा ही लोकप्रिय है और इसमे १०३ आख्याना का सग्रह है। यद्यपि इनमे गद्य ही प्रधान है, पर बीच-बीच मे गाथाए भी आयी है। इन आख्याना मे नैतिक उपदेशा का प्राधान्य है, साथ ही लका तथा भारत दोनो की सम्मिश्रित सस्कृतिया का चित्रण इन आख्यानो मे उपस्थित किया गया है। 'दुट्ठगामणि' सिंहल का बहुत प्रतापी राजा था, जिसने ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी मे द्रविडो से सिंहल को मुक्त किया। वीर होने के साथ ही उसके धर्म-प्रेम का नमूना 'रत्नमाल्य' चैत्य है। उसके एकमात्र पुत्र शालि ने चाडाल कन्या से प्रेम करके सिंहासन छोड दिया। वेदेह ने 'रसवाहिनी' मे यह कथा दी है—

" 'दुट्ठगामणि' राजा का पुत्र शालिकुमार सौभाग्य, लक्षण से युक्त तेज-ऋद्धि-पराक्रमवाला था।

वह बहुत मेधावी, रूप मे कामदेव के समान, मधुरभाषी, सत्यप्रतिज्ञ तथा विशारद था।

(वह) दाता, भोगवाला, बली एव सम्पूर्ण प्राणियो का हितैषी

था। वह दान देने मे कभी भी तृप्त न होनेवाला तथा वस्तुत्रय मे परायण था।

... ...

एक दिन कुमार 'उद्यान-क्रीड़ा करूँगा', यह सोच कर दक्षिण द्वार से निकला। जाकर उद्यान-क्रीडा करते हुए जहाँ-तहाँ रमणीय शिलातल-पुष्करणी, लतामण्डप तथा वृक्षमूल आदि मे विचरण करता हुआ, एक पुष्पित अशोक वृक्ष को देखकर उसके नीचे गया और (वहाँ) ऊपर की ओर देखा। उस समय 'हल्लोल' ग्राम के चाडाल की पुत्री 'देवी' उस वृक्ष पर (के पास) मेघ मुखमण्डल पर देदीप्यमान विद्युल्लता की भाँति, श्रेष्ठ रूप को प्राप्त, अशोक के पुष्प तथा पल्लवो को लोढ़ती तथा पहनती हुई स्थित थी। कुमार उसे देखकर उत्पन्न बलवान् प्रेम से युक्त होकर आश्चर्य-चकित हो, अपने प्रेम पर सयम न कर सका। और फिर.. उसके साथ सलाप करते हुए बोला—

'कहाँ से तू आयी, तू कौन है ? देवता है या मानुषी ? मै तेरे समान अन्य किसी को इस पृथ्वी मडल मे नही देखता हूँ।

तेरे चरण पद्म सदृश सुरक्त तथा कोमल है। सुनहले मोर की ग्रीवा की भाँति तेरी जाँघे नेत्रो के लिए रसायन है।

भद्रे, तेरे जानु भरे हुए तथा कनक कदली तुल्य शुभ है। तेरी कटि ऐसी प्रतीत होती है, जैसे कि वह मुट्ठी से नप जाय।

भद्रे, रूप के समुद्र मे अविच्छिन्न रोमो की पंक्ति से सुशोभित तेरी त्रिवली तरगो की भंगिमा का निर्माण करती है।

भद्रे, रूपसागर में तेरे स्तन उत्तरसागर में चन्द्र तुल्य सुनहले बुलबुले के समान शोभायमान हैं।

भद्रे, कल्पलता से उत्पन्न अति अद्भुत प्ररोह की भाँति पाणि रूपी पल्लवों से अलंकृत तेरे बाहु विराजमान हैं।

भद्रे, वर्तसार रूपी तेरा मुख चन्द्र चमक की किरणों से मिश्रित हो मेरे मन रूपी कमल वन को प्रफुल्लित करता है।

... .

शृगार मन्दिर मे सुवर्णस्तम्भ पर बँधे ध्वज के समान अविभक्त कार्मुक की भाँति झिलमिलाती तेरी भौहे विराज रही है।

चमेली की माला से सेवित मनोरम तेरे नीले केश तापिंज के गुल्म के समान है।

भद्रे, तुम अपना नाम मुझे बतला। शुभे, तेरे माता-पिता कौन है? मेरे पूछने से यह बतला कि तू सभर्ता है या अभर्ता?'"

उसने कहा—

"स्वामिन्, 'हेल्लोल' ग्राम के मालिक की मै पुँत्री हूँ; मुझे लोग लोहार-पुत्री चांडाली कहते है।"

उसे सुनकर कुमार ने कहा—

"गन्दे मे पड़ी हुई उत्तम मणि को यह दुनियाँ नही छोडती। स्त्री-रत्न को हीन कुल से भी शुचि की भाँति ही ग्रहण करना चाहिए।

कुमार उस पर मुग्ध होकर, वृक्ष से उसे उतार कर, ढँके यान मे बिठलाकर उसके साथ नगर को गया।

... ...

राजा ने एक विश्वसनीय स्त्री को बुलाकर कुमार के पास यह कह कर भेजा—'स्वामिन, तुम्हारे पिता तुम्हारे चित्त के अनुकूल राज-कन्या या ब्राह्मण-कन्या लाकर, पादपरिचारिका बनाकर अभिषेक करा देगे। इस चांडाली को छोड दो। राजकुल को मत दूषित करो।' साथ ही यह भी कहा कि राजकुमार के मन के भाव को जानकर मुझसे भी कहना।

उस स्त्री ने जाकर यह बात राजकुमार से कही। तब कुमार बोला—

'दोहदवाली (जब) पके अनार को खाना चाहती है, तो क्या वह आम के फल को पाकर सतुष्ट हो सकती है?

इसी प्रकार दूसरी (स्त्री) को पाकर मेरा मन नही भरेगा; चाँद को देखकर कब कमलवन फूलता है ?'

... राजा ने ब्राह्मणो को उसकी लक्षण-जाँच के लिए भेजा। उन्होंने भी आकर कहा...

उसका शिर छत्र के आकार का, नेत्र विशाल कमल पत्र के समान, मुख तथा हाथ-पैर भरे हुए है तथा उसमे केवल लक्ष्मी बसती है।...

यह सुनकर राजा स्वयं उपराज के महल मे गया। ... तब उपराज और अशोकमाला दोनो राजा की अगवानी कर, वन्दना करके एक ओर खडे हो गये। राजा ने देवी की रूप-सम्पत्ति से सन्तुष्ट होकर पूछा – 'क्या तू ही अशोकमाला देवी है ?' उसके 'हाँ स्वामी' कहते समय मुख से कमल-गन्ध निकलकर सारे भवन में फैल गयी। राजा इस आश्चर्य को देख प्रसन्न हो, जाकर बिछाये आसन पर बैठा... राजा पति-पत्नी को उपदेश देकर, अभिषेक करके चला गया।...

तब पिता 'दुट्ठगामणि' राजा ने पुत्र को बुलवाकर कहा—'मेरे न रहने पर इस राज्य को सँभालना। उसने नही चाहा, और 'सद्धातिस्स' कुमार राजा हुआ। शालि राजकुमार भविष्य मे मैत्रेय बुद्ध के पुत्र होकर जन्मेगे।"

(१०) **सिद्धत्थ**—भुवनेकबाहु (१२७७–१२८८ ई०) के काल मे इन्होने 'सारत्थसङ्गह' नामक ग्रन्थ को गद्य-पद्य-मय ४० परिच्छेदो मे पूर्ण किया। यह बौद्ध धर्म का इतिहास है; साथ ही इसमे दान तथा त्यागादि से सम्बन्धित कथाएँ भी दी हुई है।

(११) **धम्मकित्ति**—इन्होने चौदहवी सदी में भारतीय तथा सिंहली आख्यानो के सग्रह-स्वरूप सिहली भाषा में 'सद्धम्मालंकार' नामक संग्रह-ग्रन्थ की रचना की। इसमे २४ परिच्छेद है तथा तीन परिच्छेदों को छोड़कर शेष २१ परिच्छेदो में 'रसवाहिनी' की ही कथाएँ दी हुई है। ये भी अरण्य-वासी सम्प्रदाय के ही थे।

(१२) **देवरक्खित धम्मकित्ति**—भुवनेकबाहु पचम तथा वीरबाहु द्वितीय के काल मे (१३७२–१४१०) ये सघराज थे। उस समय भिक्षुओ मे व्याप्त दुर्व्यवस्था को हटाने के लिए बौद्ध भिक्षुओ की एक परिषद् का आयोजन हुआ, जिसके अध्यक्ष 'देवरक्खित धम्मकित्ति' ही बनाये गये थे। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ 'सखेप', 'निकायसङ्गह', 'बालावतार' तथा 'जिन-बोधावली' आदि हैं। बौद्ध इतिहास को व्यक्त करने मे 'निकायसङ्गह' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह सिहली भाषा मे है। 'बालावतार' कच्चायन को आधार बनाकर प्रारम्भिक विद्यार्थियो के लिए सक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया गया है और पालि जगत् मे इसका सर्वाधिक प्रचार है।

अपने ग्रन्थ 'निकायसङ्गह' मे वे कहते हैं—

"'हमने क्या नही सुना', इससे अज्ञात रहते हुए तथा 'हम सब जानते हैं', यह भी चिन्तनीय नही है। जैसे दीप ज्योति-सहित हो और उसमे फिर तेल डाल दिया जाय, वैसे ही मेरा यह वचन है।

सदा अनेक दिशाओ मे प्रसारित महातेजवाला सूर्य दुर्जन-रूपी सम्पूर्ण घोर अन्धकार को अशेषत छिन्न-भिन्न कर, सज्जन-पक्ति-रूपी-हस सहित सघ-रूपी कमल-सरोवर को तुष्ट कर लका द्वीप मे राज आदि रश्मियो के स्वामी तथा श्रेष्ठ चिरकाल तक रमे।

मुनीश्वर का धर्म चिरकाल तक चलता रहे, राजा लोग धर्म मे स्थित रहें, समय पर मेघ बरसे और सारी प्रजा परस्पर मैत्री से सुख का प्राप्त हो।

'गगासिरिपुर' मे रमणीय पहले भुवनेकबाहु के राज्य करते समय जो यतिराज 'धम्मकित्ति' 'गडलादोणि' ग्राम मे तिलक' नामक विहार बनवाकर चिरकाल तक रहे,

उनका शिष्य-रूपी सुत 'देवरक्खित' नामक धीर, जयबाहु नाम से प्रसिद्ध और लोकपूजित जो 'धम्मकित्ति' इस नाम से भूषित है तथा सघराज पद को प्राप्त करके जो जिन शासन को शोभायमान करते है,

उन्होने इस 'निकायसङ्गह' को स्वभाषा मे सक्षेप से सदा बुद्धशासन की उन्नति के लिए रचा।"

— ० —

पाँचवाँ अध्याय

५. जयवर्धनपुर (कोट्टे) काल

जम्बुद्रोणि से 'कुरुनेगल' भी राजधानी का स्थानान्तरण हुआ और उसके बाद कोलम्बो के उपनगर 'कोट्टे' मे । पराक्रमबाहु षष्ठ (१४१५–१४६७) ने तानाशाह 'अलकेश्वर' की इहलीला समाप्त कर दी और लका का सम्राट् हुआ । लंका पुनः एकता के दृढ सूत्र मे बद्ध हुआ । इनके समय में संघराज राहुल जैसा महान् विद्वान् उत्पन्न हुआ, जो पराक्रम के 'पोलन्नरुव' की विद्वत्ता का अन्तिम प्रतिनिधि था ।

(१) **राहुल संघराज**—जो युग महापराक्रमबाहु के समय (११५३–११८६ ई०) में आरम्भ हुआ था, उसके ये अन्तिम पंडित थे । इन्हे राहुल 'वाचिस्सर' (वागीश्वर) भी कहा जाता है । 'तोटगमुव' के विजयबाहु परिवेण मे निवास करने के कारण इन्हे 'तोटगमुव राहुल' की सज्ञा भी प्रदान की जाती है । सम्भवतः ये राजवश के थे । ये 'उत्तरमूलनिकाय' के थे और इन्हीं के कथन के अनुसार स्वामी कार्त्तिकेय ने १५ वर्ष की अवस्था में इन्हे वरदान दिया था, जिससे ये 'षड्भाषापरमेश्वर' हुए । ये छह भाषाएँ है—(१) संस्कृत, (२) मागधी (पालि), (३) अपभ्रंश, (४) पैशाची, (५) शौरसेनी, (६) तामिल । इनके अतिरिक्त सिहली तो उनकी मातृभाषा थी ही । इन्होंने सिहली मे मेघदूत की शैली पर सन्देश-काव्यो को प्रारम्भ किया । और इनके ये दो सन्देश-काव्य है—(१) सळलिहिणि, (२) परविसन्देश । काव्य-क्षेत्र मे इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ काव्य-शेखर है, जिससे ये अमर हैं । इनकी अन्य कृतियाँ हैं—(१) सीमासंकर-छेदनी, (२) तोटगमुनिमित्त, (३) चतुरार्यसत्यकाव्य, (४) मोग्गल्लान-पञ्जिकाप्रदीप (५) पदसाधनटीका आदि । इन सबके अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाएं भी है ।

इनके द्वारा प्रस्तुत किया गया 'पञ्जिकाप्रदीप' पालि-व्याकरण को व्यक्त करनेवाली प्रौढ टीका है । स्वय आचार्य 'मोग्गल्लान' द्वारा अपने व्याकरण पर लिखी 'पञ्जिका' का यह प्रौढ व्याख्यान है। यह अशत पालि तथा सिंहली मे लिखा गया है । इसमे विद्वान् लेखक द्वारा संस्कृत, पालि, सिंहली तथा अन्य तमिल कृतियो से उद्धरण भी दिये गये है, और ये कृतियाँ अधुना पूर्णत. उपलब्ध नही हैं । जब तक 'पञ्जिका' अपने मूल रूप मे मे प्राप्य नही थी, तब तक मोग्गल्लान व्याकरण के गम्भीर अध्ययन के लिए केवल इसी ग्रन्थ का सहारा विद्यमान था और इसी से पञ्जिका के गाम्भीर्य तथा प्रौढता का आभास विद्वानो को प्राप्त होता था । पञ्जिका के मिलने के पश्चात् तो इस ग्रन्थ का महत्त्व और बढ गया है ।

सिहल के प्रसिद्ध विद्वान् सुभूति ने अपने ग्रन्थ 'नाममाला' मे राहुल सघराज द्वारा उद्धृत निम्न ग्रन्थों की सूची दी है--

(१) कच्चायन
(२) न्याम
(३) न्यामप्रदीप
(४) निरुत्तिमञ्जूसा
(५) रूपसिद्धि तथा इस पर 'सन्ने' तथा 'गटपद' (ग्रन्थिपद)
(६) बालावतार तथा इस पर 'सन्ने'
(७) सद्दनीति
(८) चूलनिरुत्ति
(९) निरुत्तिपिटक
(१०) सुत्तनिद्देस
(११) सम्बन्धचिन्ता
(१२) पदसाधन तथा इस पर 'सन्ने'
(१३) पञ्जिकाटीका
(१४) पयोगसिद्धि
(१५) दिक्-सङ्गि-टीका ('दीघनिकाय' की टीका)

(१६) भेसज्जमञ्जूसा तथा इस पर 'सन्नै'
(१७) अभिधानप्पदीपिका
(१८) चान्द्रव्याकरण
(१९) महाभाष्य (पतञ्जलि)
(२०) भाष्यप्रदीप (कैयट)
(२१) लघुवृत्ति (पुरुषोत्तमदेव)
(२२) दुर्गसिंहवृत्तिपञ्जिका
(२३) पञ्जिकालङ्कार
(२४) कातन्त्र
(२५) शब्दार्थचिन्ता
(२६) सारस्वत
(२७) काशिका
(२८) काशिकावृत्ति
(२९) वार्तिक
(३०) भागवृत्ति (भर्तृहरि)
(३१) सारसङ्ग्रह
(३२) पदावतार
(३३) श्रीधर (कोश)
(३४) वैजयन्ती (कोश)
(३५) अभिधर्मकोश (वसुबन्धु)
(३६) प्राकृतप्रकाश
(३७) वेद
(३८) रामायण
(३९) बाहट (महाभारत)
(४०) भरतशास्त्र
(४१) अमरकोश
(४२) मेदिनीकोश

(४३) जातक-सन्ने
(४४) उमन्दा-गटपद
(४५) रतनसुत्त-गटपद
(४६) देमल-जातक-गटपद
(४७) विरित-सन्ने

'पञ्जिकाप्रदीप' को प्रकाश मे लाने का श्रेय विद्यालकार परिवेण (विहार), लंका, के सस्थापक तथा हमारे दादा गुरु आचार्य श्री 'धम्माराम नायक महाथेर' को है। इन्होंने १८९६ ई० मे 'पञ्जिकाप्रदीप' का सम्पादन करते हुए इसकी भूमिका मे लिखा था—"मोग्गल्लान व्याकरण के अध्ययन करने मे विद्यार्थियो का जो इतना उत्साह बढ रहा है, उसमे पञ्जिका का खो जाना बड़ा बाधक हो रहा है" आदि। अब तो मूल पञ्जिका भी प्राप्य है और इस पञ्जिकाप्रदीप के महत्त्व मे इससे और वृद्धि हो हो गयी है।

इसके प्रारम्भ मे ये कहते हैं—

"जिस सम्बोधि-रूपी निर्मल-सागर से उत्पन्न जिन मुनिचन्द्र के उज्ज्वल वचनो के द्युतिसमूहो के द्वारा बाह्य वादो के मुखकमल सकुचित हो जाते है, ऐसे उस अतुल बुद्ध-रूपी चन्द्र की मै सदा वन्दना करता हूँ।"

अपने लालन-पालन करनेवाले पराक्रमबाहु के सम्बन्ध मे इन्होंने कहा है—

"सूर्यवश-रूपी कमलाकर के प्रकाशक, राजेन्द्रो के मुकुटमणियो से रंजित अनुशासनवाले, पिता-पद-अधिगत लंकाधिपति (षष्ठ) पराक्रमबाहु द्वारा पुत्र-प्रेम-भाव-द्वारा जो पाले-पोसे गये;

अनेक शास्त्रो मे तथा दूसरे वादो मे, अन्य भाषाओ मे एवं सम्पूर्ण त्रिपिटक मे, जो आचार्यत्व को प्राप्त कर प्रीति पा चुके हैं, ऐसे राजा पराक्रमबाहु दीर्घजीवी हो।"

'पञ्जिकाप्रदीप' के अन्त मे ये लिखते है—

"महातीर्थग्राम (तोटगमुव) मे (स्थित) रमणीय प्रवर विहार

महाविजयबाहु-निवास के वासी स्थविर, राहुल स्वामी के नामवाले, वागीश्वर नाम से विदित ने 'पञ्चिका' के पठनार्थ 'दीप' प्रदान किया ।

यशस्वी राजा पराक्रमबाहु ने, जो कि सिहल के बहु पुण्य तथा तेजवाले राजा है, बचपन से ही मुझे पुत्र-समान प्रेम से अच्छे गुणो के साथ पोसा;

उस कुशाग्र बुद्धिवाले राजा को त्रिपिटक के अर्थ की व्याख्या करते हुए तथा दस पुण्य कर्मों की प्रेरणा प्रदान करते हुए हमने जयवर्धनपुर मे,

उन्ही के राज्यारम्भ के चौदहवे वर्ष मे कार्तिक की पूर्णिमा को शाके १३७९ (१४५७ ई०) मे इस ग्रन्थ को समाप्त किया ।"

(२) **गतार उपतपस्सी**—ये भी इसी काल के थे तथा 'सरसी-गाम' के निवासी थे, इसी से इन्हे 'सरसी-गाम-मूल-महासामी' कहा गया है । इनकी रचना 'वुत्तमाला-सन्देस-सतक' है, जिसमे १०२ पद्य है तथा यह उत्कृष्ट काव्य के आदर्श को उपस्थित करती है —

जयवर्धनपुर (कोट्टे) वर्णन

"प्राणियो के लिए आनन्दकर, निकायो का समूह, लक्ष्मी-रूपी-सरोज के आकर, अच्छे कुल सूर्यवश राजवश मे उत्पन्न (तथा) जो दुर्मित्र के अशरण, सुमित्र को शरण देनेवाले तथा पुण्यार्थ को साधारण करनेवाले है। जिस पुर मे देवलोक के देवताओ की भाँति लोग प्रमुदित हो क्रीडा करते है,

सूर्यवशोत्पन्न राजा पराक्रमबाहु (की पुरी) प्राकार के सारभूत घेरेवाली, श्वेत तथा विशाल, चन्द्रवश मे स्थित बन्धुओ को देने के लिए परिधि-सी दीखती है,

. .

(जहाँ) विशाल आकाश मे निरालम्ब धरा मे उतरते चारो ओर प्रकाशित मानो शरद् ऋतु के मेघो की पङ्क्ति के समान अनेक प्रासाद-शिखर देदीप्यमान हैं;

(जहाँ) भूमि पर फैले घाम-रूपी जल मे प्रतिबिम्बित नगर की सडको के दोनो ओर बँधे ध्वज सदा ही मूगे की नदी के सिर पर खेलते हुए नाना प्रकार के जलचरो-जैसे शोभायमान हैं;

(जहाँ) ध्वजो के चरणों में बँधी किंकिणी-जाल के नाद अति अधिक वायुवेग से हिलते मानो राजा की कीर्ति को नगर के आकाश मे देदीप्यमान विशाल ध्वजमाला द्वारा स्वर्ग के देवगणो के लिए गाये जाते हुए (गीत के समान) दीखते है;

(जहाँ) भारी तुरग-समूह के खुरो से उठी धूलि से सूर्य धूसरित है और विस्तृत सडको के बीच उत्तम गजो की बड़ी पङ्क्ति बादलो की मर्दनकारी प्रतीत होती है तथा अधकार के समूह की भाँति ही ज्ञात है।

... ...

जब चारो ओर स्थित सुपारी तथा विशाल शाल के वृक्ष मन्द वायु से कँपाये जाते है, तो ऐसा जान पडता है कि ये पुर की शोभा को दिखला, स्तुतिकर, अपने मस्तक को हिला रहे है।

नील जल के तल से उत्पन्न श्वेत शतपत्रों की कमल-पङ्क्ति, राजहसो आदि पक्षियो की विचित्र परिखाओं से घिरी, चूने मे लिपी, प्राकार से विस्तृत पुर नामक वधू जब सर्वथा वस्त्रहीन होती है, तब कल्याण के छोर से विचित्र चित्र-से चमकता वस्त्र सा दीखता है।

... .

ऊँचे स्तम्भो के शिखरो पर बँधी मन्द वायु द्वारा चालित ध्वजो की पङ्क्ति ऐसी लगती है मानो नागलोग के पृथक्-पृथक् स्तम्भ-रूपी सर्पो को पकडने के लिए गरुड उठा हो।

जहाँ महानदी बह रही है और नदी के जल मे नीचे चचल दीप दिखाई दे रहे है। ऐसा लगता है मानो यहाँ सम्मान के लिए नागो द्वारा नागलोक से लायी गयी पद्मरागमणियाँ चमक रही हो।

इस प्रकार बहुविध ऐश्वर्य के निवास लका-रूपी-कान्ता के तिलक की भाँति उत्तम पुरी मे अशेष प्राणियो को श्री देनेवाले वे देवराज विभीषण विराजते है।"

राजा पराक्रमबाहु की प्रशंसा

"जो राजा धीरता मे शिखर, स्थिरता मे पृथिवी, शत्रु-समूह-रूपी

हिम के शोषण मे सूर्य, सज्जन-कुमुद के विकासन में चन्द्रमा तथा दिशा-विदिशा के शासन मे नरश्रेष्ठ के समान है।

विख्यात कीर्तिवाले भूपति ऐसे विराजमान है, जैसे, शरदमेघ, चन्द्र-किरण, क्षीरसागर से उठी तरगे तथा गगा का जल।

... ...

सूर्यवश के ध्वज नरराजश्रेष्ठ बुद्धि मे बृहस्पति को, उग्रबल मे विष्णु को, ओजगुण मे सूर्य को तथा यश मे चन्द्रमा को जीतते है।

कल्याणपुरी-रूपी-अम्बर मे अनुपम राजा-रूपी-चन्द्रमा के लोकहितार्थ निरन्तर प्रकाशित होने से शत्रुरूपी-कमल सदा मुरझाये और स्वबन्धु-रूपी-कुमुद आनन्दित हुए।

पूर्व जन्मो के सचित बहु पुण्य-रूपी-कमल-नाल से लका-रूपी-कमल-सरोवर मे उत्पन्न वे राजा सम्पूर्ण प्राणि-रूपी-भँवरो को दस राजधर्म-रूपी-मधु का दाता, उत्तम भूपालरूपी-कमल के मुकुल, सदा लक्ष्मी के निवास तथा सदा ही सम्पत्तिशाली उत्पलवर्ण देव-रूपी रवि से विकासित किये जाते है।

. . . . . .

लका-रूपी क्षीरसागर मे विराजित मेरुराज के समान, सदा प्रजा पर होनेवाले अन्याय-रूपी नागो को मारने मे गरुड के समान, सम्पूर्ण शत्रु-रूपी-गजो को विजित किये सिंहराज के समान वे श्रेष्ठ देवराज विभीषण की स्तुति करते हुए;

चित्त-रूपी-दर्पण पर तुम्हे दिखाई देते, अमात्य-मडल-सहित राजा पराक्रमबाहु को, स्नेह-रूपी अजन से अजित दयामय लोचनो से अच्छी तरह देख, हे सुराधिपति, नित्य रक्षा करो।"

सिंहल की प्रकृति का वर्णन

"सुपुष्पित सुपारी के वृक्षो को पाप को पछाड़ने के लिए बद्धकेतु के समान देख 'वहाँ बद्ध होना ही ठीक है' ऐसी हास-स्तुति से हँसते-से दीखते;

प्रभात मे गलते ओसकण और पक्षियो के कूजन-सहित वृक्ष-समूह 'यतियो के तपोतेज ठीक है' ऐसा कह मानो निशान्त मे सन्तोष अश्रु-सा स्रवित करते है ।

लता-रूपी-हाथो मे प्राप्त पुष्पित पुष्पवाले जहाँ नवपल्-लव-राशि-रूपी अजलिवाले वृक्षेन्द्र सदा ही धर्म के आचरण मे प्रेम किये विनम्र शिष्य के समान सदा प्रकाशित होते है ।

प्रातःकाल कूजते कुक्कुट वहाँ सयमियो के आश्रम मे भाव-युक्त उपस्थित हो मानो प्रतिदिन जगाते है ।

जहाँ सयमियो के तपोवन मे पुष्प के बाद फलयुक्त आम के वृक्ष है । वे माना अपनी इस सम्मति को कहते है कि आर्य-मार्ग के समाप्त होने पर इसी प्रकार से मोक्षफल होता है ।

नगर शोभा

क्षीरसागर से उत्पन्न फेन के सदृश देदीप्यमान घरो के प्रतिमा-गृहो मे बुद्ध की सजीव-सी चित्र-विचित्र प्रतिमाएँ सदा दीखती है ।

(वहाँ) पद पद पर सचित पुण्य की राशि है हाथ-हाथ मे दीपमाला-धारण है, बाँह-बाह मे फूल की डलियाँ लटक रही है और प्रत्येक मुख से साधु-साधु (का शब्द) निकल रहा है ।"

पराक्रमबाहु अखड सिंहल के अन्तिम प्रतापी राजा थे । अतएव कवि का यह कवित्व यथार्थ है ।

— o —

विशेष—विभीषण और उत्पलवर्ण (विष्णु) लंका के रक्षक देवता है ।

छठवां अध्याय

६. अन्धकार युग

षष्ठ पराक्रमबाहु (१४१५–१४६७ ई०) के मरने के बाद आधी शताब्दी भी नही बीती कि आपसी झगड़े के कारण सिंहल निर्बल हो गया और उसी समय पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने मे प्रथम पोर्तुगीज वहाँ पहुँचे। उस समय सोलहवी शती का प्रारम्भ ही था और धर्मपराक्रम नवम का लंका मे शासन था। उसे स्वजनो और बाहरी शत्रुओ से रक्षा करने का आश्वासन देकर पोर्तुगीजो ने पास ही की भूमि पर, जिसे उन्होने 'कोलम्बो' नाम दिया—समुद्र के किनारे की चट्टानो पर अपना किला बना लिया। कोलम्बो के किले पर पोर्तुगीजो की तोपे चढ गयी। फिर क्या, एक ओर आपसी झगड़े को बढ़ाये रखते हुए दूसरी ओर अपनी तोपो और बन्दूको का जौहर प्रदर्शित करते हुए उन्होने सिंहल को अपने हाथ मे कर लिया। इससे सिंहल प्रजा असतुष्ट हो गयी। १५४० ई० तक पहुँचते-पहुँचते राजा की स्थिति इस हद तक पहुँच गयी कि उसने पैतृक धर्म बौद्ध धर्म को छोड़कर ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया और उसका नया नामकरण 'डाम-जोअस-पेरिय-बन्डारा' हो गया।

कैथोलिक अत्याचार

भारत मे उस समय अकबर का शासन था और वहाँ पर शान्ति की नीति को अपना कर पादरी अपना प्रचार करते थे। सिंहल मे तो शक्ति भी उन्हीं के हाथ में थी। इस शक्ति का दुरुपयोग उन्होने सिंहल की जनता को ईसाई बनाने मे किस प्रकार से किया, इसे डाक्टर मललसेकर के शब्दों में सुनिए[1]—

---

१. द्र० – जी० पी० मललसेकर, "दी पालि लिटरेचर आफ सीलोन" पृ० २६१–२६३।

"पोर्तुगीजो के आगे का प्रत्येक कदम लूट, धर्मान्धता, क्रूरता, और और किसी यूरोपीय उपनिवेशिक शक्ति के उपलब्ध इतिहास में अतुलनीय अमानुषिकता से लाछित था। उनकी क्रूरता एव अत्याचारो के प्रति उपेक्षा उनकी सैनिक सफलता के साथ ही बढी। उनके अमानुषिक बर्बर व्यवहार ने स्त्री पुरुष और बच्चे का भेद नही रखा। अपनी प्रजा को भयभीत करने तथा पोर्तुगीज-बल के प्रभुत्व को समझाने के लिए उन्होने ऐसे अत्याचार किये, जो उनके अपने इतिहासकारा द्वारा यदि दशाब्दी के भीतर ही अभिलिखित न होते, तो उन्हे सच न माना जाता। बच्चे सैनिको के भाला पर टागे जाते थे, जिसमे उनके माँ-बाप शिशु की आवाज सुने। कभी-कभी दो पत्थरो के बीच उन्ह पीसा जाता और माताआ को यह दृश्य देखने क लिए मजबूर किया जाता।

कभी कभी पुला पर से नदी मे आदमिया को मगरो के खाद्य-रूप मे सैनिक मनोरजन के लिए फेक दिया जाता था। मगरो की यह आदत हो गयी थी कि वे सीटी को सुनते ही अपने मुँह को पानी के ऊपर कर देते अपने असली राजा के जो भक्त थे, उनके सर्वस्व को हर लिया जाता। जो पोर्तुगीजा का पक्ष करते उनका स्वागत होता और उन्हे धन, पद और भूमि दी जाती। गाँव के किसान इतने सताये जाते थे कि वे अक्सर अपनी जीवनोपयोगी चीजो के लिए अपने बच्चो को बेच डालते थे। पोर्तुगीज अफसर डाकुआ से कम नही थे लोग बस्तियो को छोडकर भाग गये थे और अधिकनर भूमि बिना जुती रह गयी थी। सबसे बुरा यह था कि पोर्तुगीजो ने सिहल के राष्ट्रीय धर्म को नष्ट कर देने का निश्चय कर लिया था। 'दोम जोओ तृतीय' उस समय पोर्तुगाल का राजा था तथा वह कैथोलिक धर्म का जबर्दस्त समर्थक था। वह अपनी काफिर प्रजा के धर्म परिवर्तन के लिए धर्मान्धतापूर्ण आग्रह रखता था।"

भुवनेकबाहु ने अपने पुत्र धर्मपाल की मूर्त्ति पोर्तुगीज राजा के पास राज्याभिषेक पाने के लिए भेजी। यह प्रार्थना इस शर्त के साथ की गयी कि सिहल राजा के राज्य मे बाईबिल के प्रचार की छूट हो। धर्म-

प्रचार पर पोर्तुगीजों का सबसे अधिक ध्यान था। हिदायत थी--"उपदेश शुरू करो; पर यदि उसमे सफलता न मिले, तो तलवार से फैसला हो।" पोर्तुगाल के राजा ने १५४६ ई० में भारत (गोवा) के वाइसराय को चिट्ठी भेजी--"मै तुम पर भार देता हूँ कि तत्पर अफसरों द्वारा सारी मूर्तियों का पता लगाओ; उन्हे टुकडे-टुकडे कर डालो। उन लोगो के खिलाफ कडी सजा घोषित करो, जो मूर्त्तियो के गढ़ने, ढालने तथा चित्रण करने का काम करते हो; अथवा जो धातु, पीतल, लकडी, मिट्टी अथवा किसी दूसरी चीज से मूर्ति बनाते हों, उनके खिलाफ भी कारवाई करो, जो विदेश से मूर्तियो को लाते हो।" जो काफिर खुले अथवा गुप्त रीति से अपने उत्सव आदि करे, उनके विरुद्ध भी कडा रुख अख्तियार करने के लिए हिदायत थी।

उसका आदेश अक्षरश: पाला गया।

जो भी काफिरो के धर्म-परिवर्तन करने के विरोध करने की धृष्टता करता, वह पोर्तुगाल के राजा के कोप का भाजन होता।

राजा धर्मपाल भी अपनी रानी के साथ कैथोलिक ईसाई हो गया। रानी का नाम 'दोना कतेरिना' रखा गया। पोप ने भी राजदम्पति को अपना आशीर्वाद भेजा। सिहलवालो ने पोर्तुगीजो और शासको से बचने के लिए पोर्तुगीज नाम अपनाये। परेरा, दसित, दस्जा आदि उसी समय के अवशेष है। नाम रखने से प्राण तथा धर्म बचें तो क्यो न ऐसा करते। उस समय सिंहल के लोग गो-मास को हिन्दुओ की ही तरह अभक्ष्य मानते थे। पर उसको कसौटी बना कर पादरी कही सिर न काटे, इसलिए उन्होंने इसे भी भक्ष्य मान लिया।

पोर्तुगीजों ने अपनी इस धर्मान्धता की पूर्ति के लिए कोई उपाय बाकी नहीं रखा। विहार भूमिसात कर दिये गये। पुस्तकालयों में आग लगा दी गयी। पुस्तकों के पत्रों को हवा में उड़ा दिया गया। जो पूजा करता था, अथवा भिक्षु का पीताम्बर पहनता था, उसे मौत का सामना करना पड़ता। 'तोटगमुव' और 'कारगल' के विहार, जो नालन्दा तथा विक्रमशिला की

परम्परा के थे, के भिक्षु मार डाले गये। इस प्रकार से शताब्दियो के काम को कुछ ही वर्षों मे समाप्त कर दिया गया।

परन्तु सिंहल-निवासियो ने विशेषकर पहाडो मे रहनेवालो ने, पोर्तुगीजो को आराम से नही जीने दिया और इस सगठन मे 'सेनकडगल' (कैन्डी) के क्षेत्र के लोगों का विशेष हाथ रहा। प्रारम्भ से ही इस सम्बन्ध मे देशभक्त लोगो की दृष्टि रही और उन्हे तभी साँस-मे-साँस आयी, जब उन्हाने १५० वर्षों के पश्चात् पोर्तुगीजा को द्वीप छोडने के लिए बाध्य किया। इस कार्य मे राजवश के 'सीतावक' के 'मायादुन्ने' और उनके पुत्र 'टिकिरि बाण्डारा' का विशेष प्रयत्न रहा। प्रारम्भ मे इसका नेतृत्व इन्ही लोगा ने किया। 'टिकिरि' ने तो १३ वर्ष की अवस्था मे ही सेना मे प्रवेश ले लिया था और प्रारम्भ से ही उसे विजय तथा यश प्राप्त होता गया तथा उन्हे 'राजसिह' का खिताब हासिल हुआ। इस नाम को सुनकर ही पोर्तुगीजा का दिल कापने लगता था। धीरे-धीरे प्रत्येक स्थला पर उसकी विजय होती गयी और वह निचले क्षेत्र का स्वामी बनकर कैन्डी क्षेत्र पर भी आक्रमण करने मे समर्थ हो गया।

कैन्डी क राजा ने पादरियो को बुलाकर अपनी राजधानी मे गिरजा बनवाया और वह स्वय भी ईसाई होना चाहता था। राजसिह ने इस पर अधिकार कर लिया। पर राजसिह द्वारा बौद्ध पक्ष का यह समर्थन बहुत ही सक्षिप्त रहा। बात यह हुई कि कैन्डी की विजय के पश्चात् मदान्ध होकर उसने अपने हाथ से ही अपने पिता की हत्या कर दी। इस पाप से शुद्ध होने के बारे मे उसने भिक्षुओ से पूछा। उन्होने इसका यह उत्तर दिया कि पितृघात बहुत बडा अपराध है और इससे शुद्ध होना अत्यन्त कठिन है। यह उत्तर सुनकर वह आग-बबूला हो गया। उसकी दशा वैसी ही हो गयी, जैसे डडे से आहत आशीविष की। वह भयकर रूप से बौद्ध-विरोधी हो गया और विहारो को ध्वस्त करने, पुस्तको को जलाने तथा धर्म को ध्वस करने का कार्य उसने प्रारम्भ कर दिया। सिंहल मे आज जो प्राचीन पुस्तके प्राप्त नही होती, इसके कारण पोर्तुगीज कैथोलिक पादरी तथा राजसिह ये

दोनो ही हैं। राजसिंह से प्राण बचाने के लिए के डर के मारे भिक्षुओ ने अपने चीवर उतार दिये। वीर विक्रम (१५४२ ई०) ने बहुत-से धार्मिक ग्रन्थो की प्रतिलिपि पर्याप्त धन खर्च करके करवायी थी। अब वे सभी जलकर खाक हो गयी। राजसिंह स्वय शैव सम्प्रदाय का अनुयायी हो गया और उसने 'समन्तकूट' पर्वत पर स्थित 'श्रीपाद' को शैव सन्यासियो को दे दिया। राजसिह की मृत्यु १५९२ ई० में हुई।

राजसिह का उत्तराधिकारी 'विमलधर्म सूरिय' हुआ और उसने १२ वर्ष तक, अर्थात् १६०४ ई० तक राज्य किया। वह पोर्तुगीजो मे ही रहता था और उन्होने उसे ईसाई बना कर उसका नामकरण 'दोम जोओ' कर दिया था। पर कार्य-वेला मे उसने ईसाईयत छोड दी और पोर्तुगीजो से स्वतन्त्र हो अपने उपर्युक्त नाम से ही पहाडी क्षेत्र की राजधानी कैन्डी के राजसिंहासन को उसने विभूषित किया। पर वह तथा उसकी रानी पोर्तुगीजो के बीच मे रहे थे और यूरोपीय सहानुभूति उनमे विद्यमान थी। अत कैन्डी दरबार मे पोर्तुगीज वेशभूषा की नकल होने लगी। पोर्तुगीज नाम भी सामन्तो मे साधारण होने लगे और अब तक यह सब सिहली जीवन मे न्यूनाधिक रूप मे वर्तमान है। पर इन बाह्य प्रभावो का 'विमलधर्म' की शत्रुओ के प्रति नीति मे कोई असर नही हुआ और वह अटल ही रही। बौद्ध धर्म के प्रति आस्था का अभ्युदय हुआ और राजसिह द्वारा किये गये ध्वसा-त्मक कार्यो की पूर्ति की ओर उसका ध्यान गया। पोर्तुगीजो तथा राजसिह के अत्याचारो के कारण परिस्थिति यहाँ तक पहुँच गयी थी कि देश मे ऐसा कोई भी भिक्षु सुलभ नहीं था, जिसकी उपसम्पदा ठीक से (कायदे से) हुई हो। अत इसको पुनर्जीवित करने के लिए राजा ने 'रक्खङ्ग' (अरक्कन) देश से परम्परागत भिक्षु-समुदाय को आहूत करने के लिए अपने राजदूत को भेजा। यह उद्देश्य सफल रहा और स्थविर 'नन्दिचक्क' की अध्यक्षता में लका मे भिक्षु-समुदाय का आगमन हुआ। 'महावलीगङ्गा' के तट पर 'गतम्बाये' को सीमा मानकर सिंहल के सम्भ्रान्त परिवारो के कितने ही कुलपुत्र भिक्षु हुए और इससे प्रजा बहुत ही आनन्दित हुई। 'दन्तधातु' की

भी प्रतिष्ठा एक तिमजिला विहार बनवाकर कैन्डी मे की गयी और 'श्रीपाद' के भी अधिकारी बौद्ध बनाये गये ।

'विमलधर्म' की मृत्यु के उपरान्त उसकी रानी दोना कतेरिना' साम्राज्ञी हुई, पर 'सेनेरत' नामक एक शक्तिशाली व्यक्ति ने गद्दी पर अधिकार कर लिया और इस रानी से अपना विवाह सम्पन्न कराया। यद्यपि इसके समय मे देश कुछ शान्ति मे दृष्टिगोचर हुई, पर वह भी पोर्तुगीजो से लडता रहा। अगस्त १६३० ई० मे पोर्तुगीज सेना को उसने बुरी तरह से हराया। उनका सेनापति मारा गया और सेना भी बहुत सख्या मे ध्वस्त हुई। इस प्रकार से पार्तुगीजो की शक्ति नितान्त निर्बल हो गयी ।

सनरत क पश्चात् उसका पुत्र 'राजसिह द्वितीय' गद्दी पर बैठा । उसने भी मार्च १६३८ ई० मे पोर्तुगीजो को भयकर रूप मे परास्त किया और उनके मूलोच्छेद के लिए डचो को आमन्त्रित करके उसन सन्धि भी की ।

धर्म की स्थापमा (डचकाल) (१६५८-१७८६ ई०)

डच लोगा मे पोर्तुगीजो की धर्मान्धता नही थी, यह इसी से स्पष्ट हाता है कि कीर्ति श्री राजसिह ने जब सघ को फिर मे स्थापित करन का विचार किया तो डचा का इसम पूण सहयोग रहा । इस समय बीच क पहाडी इलाके कैन्डा के राजा क हाथ मे थ और इनकी राजधानी कालम्बो थी ।

कीर्ति श्री राजसिह के पहले विजय राजसिह ने स्याम से भिक्षुओ को लाने के लिए दूत भेजे, पर राजा बीच मे मर गया । पहिली बार के भेज दूत भी नौका दुर्घटना मे मर गये । दूसरी बार दूत भेजने के लिए जहाज डचो ने दिया । राजसिह द्वितीय के बाद कीर्ति श्री राजसिह गद्दी पर बैठा । डचो ने दूतो को स्याम मे भेजकर राजा की इच्छा जाननी चाही। राजा ने स्वीकृति दे दी । स्याम के राजा धार्मिक ने दूता का स्वागत किया और सिहल मे शासन की स्थापना के लिए सहायता देने की इच्छा प्रकट की । स्यामी सघ ने 'अयोध्या' के उपालि स्थविर के नेतृत्व मे भिक्षु भेज । १७५५ ई० के आषाढ मास मे कैन्डी में पहुँचकर उन्होने 'सरणकर' आदि सिहल पुत्रो को उपसम्पदा देकर भिक्षु बनाया ।

— ० —

सातवाँ अध्याय

७. संघ की पुनः स्थापना

सिंहल देश में लुप्त भिक्षु संघ की पुन स्थापना १७५५ ई० मे हुई और स्थविरवाद तथा पालि वाङ्मय के अभ्युदय ने एक नया मोड लिया। तात्कालिक सिंहल सम्राट् कीर्ति श्री राजसिंह की सहायता से इसे सम्पन्न करने वाले संघराज 'सरणकर' थे।

(१) **सरणकर संघराज**--धर्म के वैभव का अगली पीढियो के लिए पुनरुत्थान प्रस्तुत करने तथा प्राय अस्ताचल को प्राप्त धर्म-सूर्य की उषा-लालिमा का पुन दिग्दर्शन कराने मे अपना अपूर्व योगदान इन्होंने दिया और अन्धकाराच्छादन को संघ के इतिहास से विद्याकाश मे स्थित एकाकी नक्षत्र की भाँति इन्होंने दूर किया। इनके कृत्य रूपी प्रकाश मे अधुना भी यह द्वीप देदीप्यमान है। इनका जन्म ई० १६९८--९९ मे कैन्ड के ही समीप स्थित 'वलिविट' ग्राम मे हुआ था, अत इन्हे वलिविट सरणकर की भी संज्ञा प्रदान की जाती है। १६ वर्ष की ही अवस्था मे ये 'सामणेर' हुए तथा स्थविर 'सूरियगोद' का शिष्यत्व स्वीकार किया।

ये बहुत बड़े विद्या व्यसनी तथा अल्पेच्छ 'सामणेर' थे। प्रारम्भ से ही तात्कालिक सम्राट् से इन्होंने अपना सम्बन्ध स्थापित किया और संघ की पुन स्थापना तथा उसे सुदृढ करने मे अपना हाथ बँटाया। उस समय पालि के अध्ययन तथा अध्यापन का बहुत ह्रास हो गया था। बहुत कम भिक्षु या गृहस्थ ऐसे थे, जिन्हे पालि का साधारण ज्ञान था। अत पालि भाषा के अध्ययन मे रत होने पर इन्हे सबसे बडी कठिनाई यही हुई कि ऐसे व्यक्ति ही नही सुलभ थे, जो उन्हे पढाने की योग्यता रखते हो और पालि भाषा के ज्ञान के बिना बुद्धोपदेशों को समझना असम्भव ही था। पालि भाषा-सम्बन्धी अध्ययन की यह अवस्था थी कि इसके किसी

भी व्याकरण की कोई भी पूर्ण पुस्तक प्राप्य नही थी। इन्ही परिस्थितियो मे 'सरणकर' ने अपना अध्ययन प्रारम्भ किया। इन कठिनाइयो का सामना करते हुए नवयुवक 'सामणेर' ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक स्थानो की यात्रा की और अपना अध्ययन 'बालावतार' नामक पालि व्याकरण की प्रथम पुस्तक से एक गृहस्थ का शिष्य बनकर प्रारम्भ किया और इसकी पूर्ति 'अत्थदस्सी' सामणेर के द्वारा की। अध्ययन पूर्ण होने पर धर्म के सन्देश का प्रचार बडी लगन के साथ इन्होने सम्पन्न किया और इसके लिए देश के सुदूर भागो की भी यात्रा इनके द्वारा की गयी। साथ ही श्रोताओ का क्या कर्तव्य है तथा उन्हे इनकी पूर्ति के लिए क्या करना चाहिए इस सम्बन्ध मे भी इन्होने अपने उपदेश दिए। ये बडे ही उदार, सीधे स्वभाव-वाले तथा अल्पेच्छ थे। प्रात काल उन्हे जो भिक्षाटन मे प्राप्त होता था, उसी से इनको सन्तुष्टि थी और इसके कारण इनका नामकरण 'पिण्ड-पातिक सरणकर' भी लोगो ने कर दिया था।

बौद्ध धर्म एव सघ की प्रतिष्ठा मे सम्राट् को ये सदा उत्साहित करते रहे। सम्राट् ने भिक्षुओ को भेजने के लिए स्याम के राजा के पास जो प्रतिनिधि मडल भेजा था और वह उस देश के सघराज को जो पत्र ले गया था उसे पालि मे इन्होने ने ही लिखा था। उस प्रतिनिधि मडल के सदस्यो का चुनाव भी इन्ही की राय से हुआ था और इन्ही के उत्साहो से यह प्रतिनिधि मडल अपने उद्देश्य मे सफल हुआ। सिंहल म जब पुन 'उपसम्पदा' का प्रारम्भ हुआ और राजा ने इसकी स्थापना करने मे सहायता प्रदान करनेवालो के कृत्या का गुणगान करके उन्हे अनेक उच्च उपाधिया से विभूषित किया तो 'सरणकर' के कार्यों की भी अपूर्व सराहना उनके द्वारा की गयी और वे लका के सघराज बनाये गये। इस पद पर रहते हुए बौद्ध धर्म तथा पालि भाषा के अभ्युदय को दृष्टि मे रखकर इन्होने अनेक सुधार किए।

भिक्षु-सघ के अभाव मे सिहल मे विद्या का नाश होना स्वाभाविक ही था, क्योकि वहाँ पर इसका सम्पूर्ण भार भिक्षुओ पर ही था। भिक्षु-सघ ही समाज की शिक्षा के लिए उत्तरदायी था। समाज ने उनके आर्थिक

जीवन को व्यवस्था कर दी थी और वे विद्या का भार निभाते थे। वहाँ पर ब्राह्मणों की भाँति कोई ऐसी गृहस्थ श्रेणी नही थी, जिसकी जीविका का पूरा भार निश्चित कर दिया गया हो। अत समाज को शिक्षित करने के लिए सघ की अत्यन्त आवश्यकता थी और संघराज सरणंकर एवं उनके अन्य सहयोगी भिक्षुओ को सहायता से संघ ने अपने इस उत्तरदायित्व को पुनः सँभाला।

इनको कृतियो में 'अभिसम्बोधि-अलंकार' तथा अन्य फुटकर पद्यादि है—

अभिसम्बोधि-अलंकार

"वस्तुत्रय (बुद्ध, धर्म तथा सघ) को नमस्कार करके अभय (निर्वाण) को सुलभ करके रत्न-त्रयपालक (बुद्ध) ने जैसे वज्रालय (बोधगया) को प्राप्त किया; वैसे ही (उसका उसी प्रकार से वर्णन प्रस्तुत करते हुए) मै 'अभिसम्बोधि-अलकार' नामक ग्रन्थ को रचना करूँगा।

लाख कल्पो तक जिन्होने विपुल पुण्य का सम्पादन किया था, जो निरन्तर विमल शील से अलकृत अप्सरा-स्वरूपा थी तथा जो वर हास से युक्त थी, उन माया देवी को कुक्षि से स्मृतियुक्त वे (बोधिसत्त्व) उत्पन्न हुए।

सम्पूर्ण मणि के मध्य (विराजमान) स्वर्णरूप की भाँति माता से ज्ञानपूर्वक दस मास तक उनकी कुक्षि में निवास करते हुए, इसकी समाप्ति के पश्चात्—

वैशाख पूर्णिमा को विशाखा नक्षत्र मे पन्द्रह घड़ी के बाद मगलवार को,

इन्द्र के सुसज्जित नन्दन वन की भाँति रुचिर प्रसिद्ध लुम्बिनी नामक उद्यान में अत्यन्त पुष्पित मङ्गलशालवृक्ष के नीचे शाखा पकड़ कर खड़ी माता की कुक्षि से (बोधिसत्त्व ने जन्म ग्रहण किया)।"

बुद्ध-रूप वर्णन

"उस समय शरद्काल का चन्द्र सम्पूर्ण लोक को प्रसन्न कर रहा था; (अनेक महापुरुष) लक्षणों से पूर्ण शरीर सुन्दर मन मे सुलब्ध हुआ था;

(बोधिसत्त्व का) वह चरण सम्पूर्ण देवताओं तथा मनुष्यों के सिरों का अलंकार-स्वरूप था तथा अनेक सुर-नरों के जयघोष से युक्त था।

... ...

तमाल लता की आभा के समान सुनील केशवाले, पूर्ण चन्द्र के आकार के सौम्य मुखवाले, सुपुष्पित नील कमल के समान नील नेत्रवाले, इन्द्र-धनुष के समान टेढी भौंहोवाले,

सुरक्त अधरों से शोभित, कुन्द पुष्पो की उपमावाले दन्तपक्ति से शोभित, सुष्ठु मेखला से सुशोभित कटि-प्रदेशवाले, हाथी की सूँड़ के समान भरी हुई दोनों जाँघोवाले, वलय तथा मणि-युक्त शब्दायमान पादो वाले, महावर के चूर्ण के समान चरण कमलवाले,

(बोधिसत्त्व ने) 'नेरञ्जना' नदी में जा, बालू मे पात्र रखकर, पुनः स्नान करके, (पायास का) उनचास ग्रास बना, उसे अच्छी तरह ग्रहण करके, ऊपर धारा मे पात्र फेंक दिया।

शुद्ध, स्निग्ध, अच्छे बड़े समुदायवाले, सीधे घने बँधे मोर के पुच्छ के समान नील अचल पत्रवाले, चचल रक्त पल्लव की शोभावाले,

मन्दवायु से कम्पित शाखावाले, भूमि के तिलक से सहज श्वेत स्कन्ध वाले, सर्व मुनियो से सेवित, महीरुह नाम से प्रसिद्ध, अपनी दया की भाँति शीतल छायावाले उस श्रेष्ठ बोधि-वृक्ष के पास पहुँच कर, तीन बार प्रदक्षिणा करके सामने (स्थित) बुद्ध-प्रदेश को (उन्होंने) पहचाना।"

फुटकर

सम्राट् नरेन्द्र सिंह की प्रशसा मे इन्होने लिखा है--

"ब्रह्मलोकाधिपति ब्रह्मा, सुरपति देवराज शक्र स्वर्ग मे सिहल-राज की याचना करके (उनकी आज्ञा से) अपने-अपने शिर पर मुकुट धारण करना उचित है, (ऐसा सोचकर) राजा द्वारा प्रदत्त रत्न-खचित धातु-पेटिका से युक्त होकर, बुद्ध की (वहाँ) स्थापना करके सुर-नर और श्रमण-फल वर्णन करते है।

जिस वंश मे 'राजा का कर्त्तव्य क्या है', इसका ज्ञान है; जो सुगत जिनवर का सुन्दर सूर्य वंश है, उसी वंश मे नरपति प्रवर सिंहलेन्द्र तुमने भी जन्म प्राप्त किया। महर्षि शास्ता बुद्ध के मार्ग को तुम्हारे पिता-पितामहादि ने पूजित किया।

इस प्रकार से दश बल मुनि (बुद्ध) के धम को चित्रित कर, 'मेरे बुद्ध हैं, मेरा धर्म है, मेरा संघ है, मैं धर्म में प्रसन्न हूँ' (आदि आस्थाओ से युक्त होते हुए) दान आदि अनेक पुण्य तथा स्वर्ग की भाँति सुखद बुद्ध की श्रद्धा से प्रशंसा करते हुए तुम अन्धकार समूह-रूपी शत्रु-समूह को सूर्य की भाँति ध्वस्त करते हुए दस जोड़े अधिक पचास वर्षों तक (इस देश) की रक्षा करो।

चारों देवराज (महाराज) सहस्रनयन (इन्द्र) और नारायण आदि के देव-प्रताप से रात-दिन (सर्वदा) भीतरी-बाहरी रोग नष्ट हो। आयु, रूप, विपुल यश और बल देकर, उनके साथ पालन करते, शरद् ऋतु के रवि की भाँति राज-तेज-प्रताप से युक्त होकर (तुम) कल्प भर जीओ।"

(२) **गिनेगथ**—ये भी इसी काल मे हुए। इनकी कृति 'तिरतनमाला' है—

"श्रेष्ठ धर्मराज सुगत पूजनीय नेता बुद्ध ने, संसार में विचरण करते हुए दानादि सम्पूर्ण पारमिताओ को पूर्ण कर, बोधि वृक्ष के नीचे मार की सेना को परास्त कर सर्वज्ञ-पद को जो प्राप्त किया, उन उत्तम जिन के श्रेष्ठ 'दन्तधातु' की मै वन्दना करता हूँ"।

(३) **हीनटिकम्बुरे सुमङ्गल**—ये संघराज के शिष्य थे। राजा के प्रस्ताव पर 'मिलिन्दपञ्ह' (मिलिन्दप्रश्न) का सिंहली अनुवाद इन्होंने प्रस्तुत किया था। ग्रन्थ के अन्त मे ये गाथाएँ है—

"बुद्धराज के परिनिर्वाण के दो हजार सात सौ बीस वर्ष बाद श्रेष्ठ बुद्धधर्म के सुप्रतिष्ठित रमणीय बौद्ध समागम से शोभायमान लंका में स्वर्ग खंड से सास्वर कैन्डी नगर में, लोकशासन को कीर्ति श्री राजसिंह द्वारा पालन करते समय, बुद्ध-धर्म-रूपी कमल के सूर्य, वादी रूपी गजेन्द्रों

को जीतने में सिंहराज के समान, शत्रुसमूहरूपी नागराज के लिए गरुड़-राज के समान धीर 'सरणंकर' सघराज शोभायमान है।

उनके अग्रवर शिष्य 'अत्तरग्राम' निवासी 'भण्डार राजगुरु' के नाम से प्रसिद्ध थे। वह सागर के समान गम्भीर शास्त्रराशि को धारण करने-वाले थे। उनके अग्र शिष्य सुमङ्गल स्थविर थे।

.

उन्होने मूलभाषा (पालि) मे धर्म-रस से युक्त गम्भीर एव कठिन अर्थ जाल से बद्ध स्थित उस मिलिन्दपञ्ह को शुद्ध बुद्धि से विशेषत सिंहली भाषा मे किया। यह सद्धर्म का दर्पण श्रोत्र के लिए अमृत रसायन बन गया।"

— ० —

आठवाँ अध्याय

८. आधुनिक युग

सम्राट् राजधिराज

कीर्ति श्री राज के पश्चात् यही कैन्डी के सिंहासन पर बैठा। इसे भी पूर्व सम्राट् की ही भाँति धार्मिक कृत्यो तथा विद्या आदि से प्रेम था और इनके अभ्युदय एव प्रगति मे उसे आनन्द आता था। उस समय समुद्र के किनारे का भूभाग डचों के हाथ में था। अन्तिम सिंहल राजा द्रविड़ वश के थे और विवाह सम्बन्ध के कारण ही गद्दी के अधिकारी हो सके थे। जनप्रिय होने के लिए उनके लिए यह परमावश्यक था कि बौद्ध धर्म तथा उसकी भाषा पालि के प्रति अधिक अनुराग का प्रदर्शन करे। अतः इस सम्राट् ने भी इसी मार्ग का अनुसरण किया।

उस समय भारत मे स्थित अंग्रेज यह नही चाहते थे कि उनके अधिकार से केवल २० मील ही दूर डचों का शासन स्थापित रहे और यह बात बहुत दिनो से उन्हे खटक रही थी तथा इसे समाप्त करने के लिए वे मौका ढूँढ़ रहे थे। १७६३ ई० मे कीर्ति श्री के समय मे ही उन्होने अपना दूत कैन्डी भेजा था, जो सिंहल सम्राट् के प्रति सन्धि-प्रस्ताव को लेकर गया था यद्यपि राजा ने इस प्रतिनिधि से ठीक से भेंट की, पर सन्धि के सम्बन्ध में कोई विशेष फल नहीं हुआ। १७९५ में हालैंड अंग्रेजों के विरुद्ध यूरोप में चल रहे युद्ध में सम्मिलित हो गया और सिंहल से डचों को हमेशा के लिए समाप्त करने का यह अंग्रेजो के लिए स्वर्णावसर था तथा उन्होने यहाँ भी डचों के विरुद्ध युद्ध घोषणा की और अपने उद्देश्य में सफल हुए। १७९६ ई० में कर्नल स्टुअर्ट कोलम्बो के सामने सेना लेकर पहुँचा और उन्हें आधीनता स्वीकार करने के लिए कहा और १६ फरवरी १७९६ ई०

में कोलम्बो पर ब्रिटिश झंडा फहराने लगा, क्योंकि इस दिन डचों ने अंग्रेजो की सभी शर्तें मंजूर कर ली।

सिंहल के सामन्तो ने आगे चलकर आपसी षड्यन्त्र द्वारा कैन्डी पर भी अंग्रेजो के अधिकार को जमने मे सहायता दी। श्री विक्रमराज सिंह अन्तिम सिंहल राजा था। तात्कालिक प्रधान मन्त्री किसी भी प्रकार से उसे समाप्त करना चाहता था और इसके लिए अनेक षड्यन्त्र उसने किये। इन सबका राजा के चरित्र पर बहुत व्यापक प्रभाव पडा। उसके मस्तिष्क की शान्ति समाप्त हो गयी तथा दुष्ट साथियो ने इसी बीच गम गलत करने की सलाह देकर उसे शराब पिलाना भी प्रारम्भ कर दिया उसका जीवन घोर रूप से पतनोन्मुख हुआ और वह रोमाञ्चकारी अत्याचारों की ओर प्रवृत्त हुआ।

इससे प्रजा मे विद्रोह की आग सुलगी और सिंहल के प्रधान मन्त्री तथा ब्रिटिश गवर्नर नार्थ ने इसका लाभ उठाकर २ मार्च १८१५ ई० को सिंहल की स्वतन्त्रता सदा के लिए समाप्त कर दी और सम्पूर्ण देश पर अब उनका अधिकार हो गया। जिस सन्धि के अनुसार सम्पूर्ण द्वीप के शासन सूत्र पर अंग्रेजो का एकाधिकार हुआ, उसमे स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया गया था कि वे बौद्ध धर्म तथा आचार-विचार मे दखल नही देंगे और सदा ही इसकी रक्षा करेंगे। पर प्रारम्भिक दिनो मे अंग्रेजी शासन ने भी ईसाई प्रचारको के साथ अत्यन्त सहानुभूति रखी। ईसाईयत को जिस क्रूरता और बर्बरता से पोर्तुगीजों ने सिंहल के वक्षस्थल पर बलपूर्वक जमाया था और जिस प्रवञ्चना के साथ डचों ने क्रूरता को छोड़कर अन्दर ही अन्दर उसका सवर्धन किया था, उस मोह को अंग्रेज जाति भी न छोड़ सकी और उन्होंने प्रारम्भ में वस्तुस्थिति को ही बनाये रखना चाहा तथा तदनुसार अपने कार्य भी किये। गवर्नर टामस मेटलैंड ने चाहा कि सरकारी पदों के लिए ईसाई होने की शर्त हटा दी जाय, पर इस प्रस्ताव का विरोध तात्कालिक 'सेक्रेटरी आफ स्टेट' ने किया और यह कार्यान्वित नहीं हुआ। अतः मिशनरी लोग स्कूल खोलकर ईसाईयत का प्रचार करने लगे और स्कूलों में जो उन्हें

शिक्षा दी जाने लगी, उसमे सदा ही इस भावना का पुट रहा करता था कि उनका अपना धर्म हास्यास्पद विश्वासो से ओतप्रोत है। इसके विपरीत 'ईसाई धर्म ही स्वस्थ सभ्यता का प्रतीक है', यह भावना भी उनमें कूट-कूट कर भरी जाने लगी।

इसके विरुद्ध सिंहल निवासियों मे विचार जागृत हुए और इसका विरोध करने के लिए पादरियो ने सिंहल-साहित्य तथा पालि-वाङमय की कमियों आदि को बतलाने के लिए इनका अध्ययन भी प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बौद्ध पुस्तके केवल कूडा-करकट नही है। यद्यपि प्रारम्भ मे यह कार्य खडन-मडन के लिए ही शुरू हुआ, पर इसने एक नया मोड लिया। उधर स्कूलो मे पढे सिंहल तरुणो मे अपने मूलधर्म तथा परम्पराओं के प्रति सम्मान की भावना का जागरण हुआ और वे स्थान-स्थान पर मिशनरियों द्वारा अपनी आस्थाओ के प्रति किये गये आक्रमणो का जवाब देने लगे। अपने-अपने विहारो मे 'उपोसथ' के लिए एकत्रित भिक्षु भी मिशनरियो द्वारा बौद्ध आस्थाओं के प्रति प्रकट किये गये प्रहारों का उत्तर उसी प्रकार की खडनात्मक शैली में प्रस्तुत करने मे प्रवृत्त होने लगे। इसी समय 'मोहोट्टिवत्ते गुणानन्द' नामक एक तरुण 'सामणेर' का पदार्पण हुआ। इन्होने ईसाई शास्त्रो का अति गम्भीर अध्ययन किया और उनमे पारगत होने के पश्चात् ये शास्त्रार्थ के लिए मिशनरियो को ललकारने लगे। इनकी वाणी मे वह ओज, शौर्य तथा प्रतिभा थी कि उसके समक्ष परवादियो के मत अग्नीन्धन की भाँति भस्म हो गये। उन्होने ईसाई पादरियों को खुले आम शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। पहले तो इन लोगों ने इस तरुण 'सामणेर' की अवहेलना की; परन्तु इससे इनके उत्साह में कोई कमी नहीं आयी और बुद्धागम के प्रखर तेज से देदीप्यमान तथा ईसाइयों के शास्त्र-खडन मे पूर्ण दीक्षित गुणानन्द ने 'पानदुर शास्त्रार्थ' में खुले आम जनता के बीच १८७३ ई० में पादरियो को ऐसा परास्त किया कि सम्पूर्ण सिंहल में एक बार पुनः शास्ता के आगमों का शंखनाद गूँज गया तथा बौद्धोपदेश के शान्ति-स्रोत के प्रवाह से लंका द्वीप

की दिशाएँ प्रशान्त हो उठी और सर्वत्र बौद्धनिनाद की विजय वैजयन्ती फहरा गयी।

इस प्रकार एक बार पुन. बुद्ध-सन्देशो से सिंहल देश की वायु सुगन्धित हो गयी और आधुनिक युग मे बौध धर्म एव पालि वाङ्मय के अभ्युदय की लहर सम्पूर्ण देश मे दौड़ गयी। अपना सर्वस्व देकर लोगों ने गुणानन्द को उनके उद्देश्य की पूर्ति मे सहायता प्रदान की और बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान के लिए आवश्यक सामग्रियों--शिक्षा, उत्साह तथा प्रेस--की ओर लोगो का विशेष ध्यान गया तथा इनको सुलभ कराने मे लोग तन, मन और धन से जुट गये। ईसाइयो के तो अपने कई प्रेस थे और उनसे लोहा लेने के लिए बौद्धो ने अपने प्रेसो की स्थापना की। स्याम के सम्राट् ने प्रेस स्थापना मे प्रचुर धन देकर अपने अपूर्व सहयोग का प्रदर्शन किया और 'लङ्कोपकार-प्रेस' नामक प्रथम प्रेस की स्थापना 'गाले' मे १८६२ ई० मे हुई। गुणानन्द ने रोमन कैथलिको के गढ़ 'कोटहेन' को अपना प्रमुख अड्डा बनाया और वही पर दायको की सहायता से 'सर्वज्ञ-शासनाभिवृद्धि-प्रेस' नामक प्रेस की स्थापना की। बाद मे आगे चलकर इस प्रकार के अनेक प्रेसो की स्थापना हुई। इसके पश्चात् बौद्ध ग्रन्थों के प्रचारार्थ प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया गया और सर्वप्रथम इसके लिए 'मिलिन्दपञ्ह' को सिहली अनुवाद के साथ प्रकाशित करने के लिए चुना गया, क्योंकि विरोध-पक्ष के खडन एव अपने पक्ष की स्थापना के लिए यही पालि का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। इसका प्रकाशन १८७७-७८ ई० मे श्री गुणानन्द के ही सम्पादन मे हुआ।

गुणानन्द के शास्त्रार्थ की ओर 'थियोसाफिकल सोसाइटी' के संस्थापक अध्यक्ष कर्नल हेनरी स्टील आल्काट का ध्यान आकर्षित हुआ और वे भी बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट हुए। वे सभी धर्मों का व्यापक समन्वय चाहते थे और मानव के आध्यात्मिक विकास मे बौद्धोपदेशों के महत्त्व का अनुभव करते हुए उसके मूल अध्ययन के लिए वे सिंहल आये। वहाँ बौद्ध-धर्म-विषयक अन्वेषण मे रत होकर शास्ता के उपदेशो के गूढ़ तत्त्वों से वे अत्यन्त प्रभावित हुए तथा सिहली बौद्धो से उनकी प्रगाढ़ मैत्री स्थापित

हुई तथा उनके दिग्दर्शन में १८८० ई० में कोलम्बो मे 'बुद्धिस्ट थियोसाफिकल सोसायटी' की स्थापना हुई ।

इस पुनरुत्थान की लहर ने यूरोपीय विद्वानो को भी पर्याप्त रूप से प्रभावित किया और पालि तथा बौद्धधर्म की महिमा स्वय यूरोपीय विद्वानो द्वारा प्रसारित होने लगी । चाइल्डर्स तथा रीज डेविड्स आदि ने पोर्तुगीज काल में धर्मान्धता की आग में भस्म होने से अवशिष्ट ग्रन्थो का प्रकाशन प्रारम्भ किया । इन सबका आगे चलकर बृहद् परिणाम यह हुआ कि शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने 'प्राच्य शिक्षा विभाग' की स्थापना सिंहल मे की और इससे पालि के अध्ययन को विशेष बल तथा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ ।

सिंहल मे पालि की शिक्षा की ओर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट हुआ और राजधानी के सन्निकट ही वे एक ऐसे विद्यापीठ की स्थापना करना चाहते थे जहाँ पर भिक्षु तथा गृहस्थ दोनो ही सिंहली, पालि तथा सस्कृत की शिक्षा प्राप्त कर सके । इस प्रस्ताव को कार्यरूप मे परिणत करने के लिए उन्होने हिक्कडुव सुमङ्गल' को आमन्त्रित किया । वे एक बहुश्रुत भिक्षु थे । उन्हे अट्ठकथा-सहित सम्पूर्ण त्रिपिटक के गहन अध्ययन के साथ-साथ सस्कृत-भाषा पर भी पूर्ण अधिकार एव पाण्डित्य प्राप्त था और इन सबके वे सर्वत्र-श्रेष्ठ पडित थे । साथ ही प्रारम्भ हुए बौद्ध पुनरुत्थान कार्य मे भी उनका अत्यधिक योगदान था । गुणानन्द का ईसाई पादरियो के साथ जो सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ था, उसमे उनके सहायक के रूप मे वे भी सम्मिलित हुए थे । अत उन्होने १८७४ ई० मे 'विद्योदय परिवेण' की नीव डाली, जो उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त होता गया और आज विश्वविद्यालय के रूप मे प्रतिष्ठित है ।

१८७५ ई० मे कोलम्बो के बाहर 'केलनिया' नामक स्थान मे 'विद्यालकार परिवेण' की स्थापना हुई । यह 'धम्मालोक' स्थविर द्वारा स्थापित हुआ था, जिनके शिष्य 'रतनमलान धम्माराम' नायक स्थविर अपने समय के पालि के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् थे । इसी परम्परा में 'धम्मानन्द' नायकपाद हुए, जो इन पंक्तियो के लेखक, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा जगदीश

काश्यप के गुरु थे और इन्ही के चरणो मे बौद्ध धर्म तथा दर्शन का अध्ययन प्राप्त करके भारत मे इन शिष्यो ने पालि तथा बौद्ध धर्म से सम्बन्धित विकास कार्य तथा अध्ययनादि प्रस्तुत किये। यह परिवेण भी उत्तरोत्तर विकास तथा अभ्युदय को प्राप्त होता गया और आज इसे भी विश्वविद्यालय होने का गौरव प्राप्त है।

इस प्रकार सिंहल के स्वतन्त्र होने पर ये दोनों परिवेण विश्व-विद्यालय बनाये गये, जो अतीत के प्राचीन गौरव के गौरव के अद्भुत प्रतीक है।

इस प्रकार से आधुनिक युग मे पालि वाङ्मय के विकास मे सिंहल की प्रतिभा प्रस्फुटित होने लगी। इन विद्वानो में से कुछ प्रमुख का परिचय तथा रचनाओ का नमूना नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है––

१. धम्माराम (करतोट)––ये उन्नीसवी सदी के उत्तरार्ध मे हुए। इनके कुछ पद्य हैं––

"पुष्पित कमल जैसे नील नयनवाले, सम्पूर्ण सौम्य मुखवाले, सहस्र चन्द्र-सूर्य की प्रभा को तिरस्कृत करनेवाले, जगत् के एकमात्र बन्धु तथा नमस्कृत, संसार-रूपी समुद्र के पार जानेवाले, अमृतदायक, सर्वज्ञता को प्राप्त, शिष्य पंक्तियो से सेवित चरणकमलवाले उन धर्मराज को मैं नमस्कार करता हूँ।

बत्तीस अमित लक्षणो से उत्तम शरीरवाले, व्यामप्रभा से भासमान, देव-ब्रह्मा-नर-समूह द्वारा सेवित पकज के समान पदवाले, निखिल-गम्भीर-श्रेष्ठ-ज्ञान-सागर पर आरुढ हो पार को प्राप्त, शिष्य पंक्तियो से सेवित चरणकमलवाले उन धर्मराज को मैं नमस्कार करता हूँ।"

२ धम्माराम (यात्रामुल्ले)––इनके भी फुटकर पद्य प्राप्त है। चाइल्डर्स ने जो पालि कोश बनाया था, उसका स्वागत करते हुए इन्होंने लिखा था––

"कल्याण-मगल-प्रदायक, कुन्द तथा देवेन्द्र गज के समान श्वेत दाँतोवाले, हिम और सुरस सदृश उदात्त कीर्तिवाले, मुख की कान्ति से चन्द्रमा पर विजय

प्राप्त करनेवाले, आकार में दीर्घ शाल के समान सुमन्त्री राजमन्त्री चाइल्डर्स की जय हो।

नाना शास्त्रों के ज्ञाता, अनन्त पंडितों से प्रशंसित, प्रदान करने को पवित्र हाथवाले, अनेक भाषाओं में समर्थ, मुख की...सुमन्त्री राजमन्त्री चाइल्डर्स की जय हो।"

३. **अत्थदस्सी (वेन्तर)**—इनके भी फुटकर पद्य प्राप्त हैं, जिनका संकलन मैंने 'पालि काव्यधारा' मे किया है।

४. **सुमङ्गल (हिक्कडुव)**—आधुनिक सिंहल मे पालि और बौद्ध साहित्य के प्रचार मे जिन व्यक्तियों का सबसे अधिक हाथ रहा, उनमें 'विद्योदय परिवेण' के संस्थापक श्री सुमङ्गल स्थविर अन्यतम हैं। इसे ऊपर व्यक्त किया जा चुका है। २१ वर्ष की आयु मे जो इन्होने पद्यरचना की थी, उसके नमूने ये हैं—

"पूर्ण चन्द्र-हर-मेघ जैसे निर्मल यश-युक्त विशुद्ध प्रशसा के आकर, शोभाधारिणी पीन उरु-स्तनधारिणी यशोधरा को छोड़ और अधिक सुन्दरतर पुत्र को भी छोड़, जो निष्क्रमण मे निकले, उन नाथ को सदा ही दोनो हाथ अच्छी तरह सिर पर करके नमस्कार करता हूँ।

ब्रह्मा-इन्द्र आदि से सुपूजित, जय-बल प्राप्त एवं प्रसिद्ध, जिसने चित्त-मल-रूपी सम्पूर्ण शत्रुओं को मार अखिल ज्ञेय को बोधि मे जाना और जिसने जनता को शुभ अभय मार्ग पर पहुँचाया, उन नाथ को...।"

५. **धम्माराम (रत्नमलान)**—आचार्य धम्माराम ने 'जानकीहरण' महाकाव्य का उद्धार इसके उद्धरणों को सिंहली टीका से लेकर पूरा किया। इन्होने कई पालि ग्रन्थो का सम्पादन किया, जिनमे 'राहुल सघराज' की पुस्तक 'पञ्जिकाप्रदीप' भी है। इनके फुटकर पद्य हैं—

"सम्बुद्ध कमलनयन जिनको, उनके द्वारा कथित सुश्रद्ध धर्मचर को तथा विशुद्ध स्वच्छ गुणयुक्त उस सघ को विशुद्धि का इच्छुक मैं सदा प्रणाम करता हूँ। ..

बहुत बड़े विक्रमी श्री पराक्रमबाहु राजा ने शत्रु राजाओं को परास्त किया; उनकी पुरी 'जयवर्धनपुर' ऐसी ही थी, जैसे इन्द्र का निवास अमरावती हो।

अपनी सुभागिनी भगिनी 'सरोजवती' की स्मृति मे महार्ह 'कारगिरि' नामक पर्वत पर उन्होंने 'सरोजवती' नामक विहार बनवाया;

और अपनी माता रानी 'सुनेत्रा' की स्मृति में उत्तम तथा महाभोगवाले महाविहार 'सुनेत्ता परिवेण' का निर्माण शुभ 'पप्पटवन' में कराया।"

६. **विमलसार तिस्स**--इन्होंने 'सासनवंसदीप' नामक काव्य लिखा, जिसमें बौद्धधर्म का इतिहास व्यक्त है--

"तब महिषी (माया) उस (गर्भ) के दस मास पूर्ण होने पर अपने स्वजनों के भवन मे जाने की कामनावाली हुई। प्रियकर प्रियतम राजा से उसने पूछा--'देव, मुझे देवदह नगर जाने की इच्छा है।'

उस नरपति ने देवी के उस वचन को स्वीकार कर सुन्दर कपिलवस्तु से लेकर सारे मार्ग को कदली, कदली-शाखा, पूर्णघट आदि से स्वर्ग के सुरपथ की भांति सजवा दिया।

... ...

तब श्रीशय्या से उठकर, द्वार के पास स्वयं जा, (बोधिसत्त्व ने) पूछा --'यहाँ कौन है?' 'यहाँ महाराज, छन्दक नामक मै अमात्य हूँ।' नरेन्द्र ने कहा--"छन्दक, मै निष्क्रमण करूँगा।"

७. **रतनजोति (मातले)**--इन्होंने 'सुमङ्गलचरित' नामक एक संक्षिप्त रचना मे 'विद्योदय परिवेण' के सस्थापक आचार्य की प्रशंसा प्रस्तुत की है--

"जो वे महा श्री सुमङ्गल संघ-स्वामी विद्योदय नामक परिवेण के प्रसिद्ध पति, वागीश्वर तथा त्रिपिटकाचार्य थे, उनके चरित को मै सक्षेप मे कहता हूँ।

... ...

'तब पंडित जनों के स्नेहभूत भिक्षुराज बुद्ध के सिद्धान्त की महती वृद्धि की कामना करनेवाले ने पंडित-जनो के हित-रूप उस सुन्दर प्रशस्त तथा प्रसिद्ध विद्योदय परिवेण का आरम्भ किया ।

. . . .

जनता के शासन-मन्दिर में दीप के समान और असंख्यों में उसके उत्तम में निरत इनके ७५वी वर्ष गाँठ पर लका के बौद्धजनो ने आह्लादित होकर अलंकार-भूषण से युक्त एक मन हो, धूप, दीप और पुष्प लेकर स्थविर के उत्तम और सुन्दर गुणों का स्मरण करके,

नाना पूर्ण घटो, चामरों तथा तोरणो से और सुन्दर पञ्चाङ्गिक वाद्यों के साथ जहाँ-तहाँ बड़ी ध्वज-पंक्तियो को उठाये हुए सुविपुल लका भूमि को अलकृत किया ।"

८. **मेघानन्द (मोरटुवे)**--इन्होंने 'जिनवसदीप' नामक पालि ग्रन्थ की रचना की । यशोधरा का रूप-वर्णन इस प्रकार है--

"नाना भूषणो से भूषित शरीरवाली, नवीन स्थूल स्तनो से अभिराम यशोधरा कुमारी को मणिखचित हरी पालकी मे बैठाकर लाये ।

मालती की सुनहली माला पहने, सुगन्धि से भावित केशो की वेणीवाली (देवी) ने विरल-बक-पक्तिवाली एव विद्युत-राजिवाली मेघमाला को कोमलता मे जीत लिया ।"

कवि ने अपना परिचय देते हुए लिखा है--

"लका के लक्षपति वर ग्राम मे क्षेत्राराम के स्वामी, गुण के भूषणो से भूषित, विख्यात निर्मल विशद यशवाले, 'वल्लिग्राम' मे उत्पन्न, परिषद् के नेतृत्व मे समर्थ, उपाय चतुर भदन्त सङ्घानन्द स्थविर नामक गुरु भाववाले गुरु द्वारा उपसम्पदा से निजी शिष्य ने अपने नेत्रों के समान रक्षा करते हुए महाबुद्धि अर्पित की ।

'वजविहार' के स्वामी राजाधिराज गुरु-पदवीधारी यतीन्द्र को शिक्षा-गुरु बना, उपाध्याय बना, उपसम्पदा ले, धर्म के अध्ययन के लिए रमणीय बर्मा राष्ट्र मे उतरे ।

पिता के पद को प्राप्त 'मेन्डोन' राजा ने मेरी कुशाग्र बुद्धि से प्रसन्न होकर पालन किया।..."

९. पियतिस्स (विदुरुपल)—ये एक स्वाभाविक कवि थे। इनके ये तीन पालि काव्य ग्रन्थ सुन्दर कृतियाँ हैं—(१) 'महाकस्सपचरित,' (२) 'महानेक्खम्मचम्पू', (३) 'कमलाञ्जलि'।

इनके नमूने है—

"तब पिप्पली माणव की माता ने नित्य ही उसे स्त्री लाने के लिए अनेक प्रकार से कहते हुए (इस कथन से) पुत्र को अतिशय रूप से पीडित किया।

... ...

उन ब्राह्मणों ने सलाह दी—'भो, निश्चित रूप से 'मद्र' देश मे 'सागल' (स्यालकोट) नामक श्रेष्ठ नगर है। वहाँ सुन्दरियो की खान है, इसलिए इच्छित की साधना के लिए वही चले।

मद्र देश के आभारण समान उस सागल नामक श्रेष्ठ पुर मे जाकर नाना जनो से आकीर्ण वहाँ सुन्दर तीर्थ स्थानो को उन्होंने देखा।"

'महानेक्खम्मचम्पू' मे बुद्ध के बाहर निकलने का वर्णन है—

"तब उस समाचार के श्रवण से उत्पन्न प्रीतिप्रमोद की अधिकता से परवश हृदयवाले अनाथपिण्डिक गृहपति ने अपरिमित जनसमूह को ले, पाँच सौ महाश्रेष्ठियो से अनुगमित होकर, योजन मात्र मार्ग पर अगवानी कर, अनेक प्रकार के पूजाविधान करते, निरन्तर होनेवाले सहस्रो साधुवादो से भुवन लोक के आच्छादित होते हुए जनसमूह द्वारा पूजित भगवान ने भिक्षु सघ के साथ निकल कर, अपरिमित समय से सचित तीस पारमिताओ के अतिशय प्रभाव से उत्पन्न सारे त्रिभुवन के विस्मयदायक अति महान् बुद्धानुभाव से अचेतन पृथिवी के निम्न स्थानो को उन्नमित करते, उन्नत स्थानो को समीभाव करते. .बिना बजाये भी वीणा, वेणु, मृदग, शंख, ढोल आदि वाद्यो को बजाते तथा स्वय ही अपने-अपने नाद को छोडते, सम्पूर्ण नर-नारियो द्वारा पहने गये सोने-चाँदी-मणि-रत्न के आभूषणो के अधिकतर

भासमान होते, सिंहो के सिंहनाद करते. . .विविध रुचिर तोरण के शोभासार से मनोहर उठे द्वार प्रदेशवाले, सुवर्णार्ध पूर्णघट पर दीपमाला से अलंकृत मंडपवाले . .'जेतवन' नामक अनुपम विहार मे प्रवेश किया ।"

'कमलाञ्जलि' मे बुद्धस्तुति प्रस्तुत है—

"ब्रह्मा-विष्णु-शिव-इन्द्र-दानव-मनुज-गरुड-पतियो के मुकुटो मे जड़ी मणियो की किरण-रूपी-भ्रमर पक्तियो द्वारा सेवित मुनिचरण-रूपी निर्मल कमल को मै प्रणाम करता हूँ ।"

१०. ञाणतिलक (वेलितोट)—ये बहुत ही प्रतिभा-सम्पन्न थे । इनकी रचनाएँ है—(१) 'एकक्खरकोसव्याख्या', (२) 'कच्चायन-सारव्याख्या' (३) 'निरुत्तिरत्नाकर', (४) 'मोहमुद्गर' संस्कृत नीति-शास्त्र', (५) 'कारिकाव्याख्या' आदि ।

'कारिका' ग्रन्थ के आरम्भ मे—

'सम्बुद्धि से उगे उदार अनुपम तेज से जिसने मोहान्धकार के समूह को ध्वस्त-सा कर दिया, क्षुद्र दृष्टिवाले कोइयो को जिसने सकुचित कर दिया, उस सद्धर्म-रूपी अमल सूर्य को मै शिर से प्रणाम करता हूँ ।"

ग्रन्थान्त में—

"बुद्ध-शासन मे रत, ज्ञानकामी बुद्ध शिक्षा मे गौरव रखते मतिमान् और विनीत, मुनिराज के वचन और शब्दशास्त्र मे भी दक्ष स्थविर श्रेष्ठ जो पद्माराम हुए ।

वे यतीश्वर प्रसन्न चित्त थे; मेरे माता-पिता आदि तथा ज्ञातृ लोग प्रव्रज्या कराने के लिए तेरह वर्ष की छोटी ही आयु मे मुझे ले गये ।

. . . .

तेरह शिष्य-वरो के साथ मुझे उन्होंने प्रव्रजित किया और विशद *उपसम्पादित किया ।"*

११. विमलकित्ति (अहुनगल्ले)—इन्होने प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ 'दीप-वंस' का दूसरा भाग २७ परिच्छेदों से अधिक लिखा । बुद्धघोष के सम्बन्ध मे इन्होंने लिखा है—

"जम्बुद्वीप मे बोधगया के सन्निकट ही एक ब्राह्मण कुमार, त्रिवेद का वेत्ता, विज्ञात विद्या वाद के लिए घूमता हुआ एक विहार मे गया ।"

१२. पञ्ञानन्द (यगिरल)––इन्होंने वर्तमान सदी के प्रारम्भ मे 'महावस' के तीसरे भाग को लिखकर आधुनिक काल तक उसे पहुँचाया ।

'हिक्कडुव सुमङ्गल' के निधन पर वे लिखते है––

"विद्योदय के प्रथम अधिपति प्रसिद्ध विद्या विशुद्ध हृदय और सदा सदय, अपने समय के पूज्य श्रेष्ठ अधिनायक, श्री सुमगल हा ! स्वर्गवासी हो गये ।

यह कर्णकटु समाचार सुनकर, शोकपूर्ण हृदय से रोते, हा-हा नाद से सारी लका को बधिर करते, एकत्रित हो बौद्ध जन और अधिक रोये ।

उत्तम नेता के योग्य गौरवपूर्ण भक्ति-पूजा करके उन्हे दग्ध कर दिया, तब सारी लका चन्द से वर्जित आकाश की भाँति अशोभना हुई ।"

विद्यालकार के नायक पाद महाप्राज्ञ 'धम्माराम' के निधन पर इन्होने ये उद्गार कहे––

"अपनी बुद्धि से अनेक ग्रन्था के रचयिता और शोधक, कर्मशास्त्र के प्रवक्ता, दीपनकर्त्ता (और) यतिया के नायक,

विद्यालकार नामक प्रसिद्ध शास्त्रमन्दिर मे निवास करनेवाले महाप्राज्ञ महाकवि 'धम्माराम' ..

इन यतिराज, ज्ञानी, श्रेष्ठ के मृत्यु को प्राप्त होने पर सम्पूर्ण लकावाले शोकाकुल हो गये ।

अत्यन्त शोकाकुल, दु खित बौद्धा ने उनके मृत देह को जलाया ।"

१३. धम्माराम (यक्कडुव)––आशुकवि ये महाविद्वान् विद्यालकार विश्वविद्यालय के प्राण है । वर्षों से इन्होने व्रत ले रखा था––"या निशा सर्वभूताना तस्या जागर्ति सयमी ।" कविता उनके लिये अत्यन्त सरल काम था । 'धम्मारामसाधुचरित' नामक छोटी पुस्तिका उन्होने लिखी । बाकी कविताओ मे भक्तिगीत तथा फुटकर पद्य है । *'मनोरथपूरणी'* की भूमिका मे इनके पद्य है––

"बुद्ध से प्राप्त सुन्दर, चिन्तामणि या कल्पद्रुम समान अग्रधर्म, जनता के मन-रूपी कुन्द की चाँदनी के समान श्रेष्ठ सुखद की हर्ष से मैं वन्दना करता हूँ।"

विद्योदय (पेरादेनिया) विश्वविद्यालय मे उपाधि से सम्मानित होते समय उन्होंने यह कविता बनायी थी--

"यह जो वह विद्योदय प्रसिद्ध श्रेष्ठ विद्यालय मे चिरकाल से विद्या की उन्नति में निरत चित्त से रत, अध्यक्ष, 'वद्देगम' नामक प्रसिद्ध ग्राम के स्थिरमति महाविद्वान् श्रीमान् 'पियरतन' नामक स्थविर है।"

'भक्तिगीत' में इनके करुण उद्गार है—

"पुत्र, किसी को दुख दे रहा है। कटक, शरबू गिलहरी अथवा बब्बु या किसी की तू हिसा मत कर।

छोटे से भी प्राणी को पुत्र, जानते देखते तू न मार, अन्त मे मक्खी मच्छर या खटमल को भी।

न ढेले से, न काठ के टुकडे से, न सलाई से या न हाथ से ही चौपाये, पक्षी या किसी पर तू मत प्रहार कर।

आकाश मे उडते अथवा वृक्ष पर बैठे विहग को बाण के शिल्प से तू न मार।

पुत्र, पक्षी गगन मे उडते है तथा गगन को ही घर बनाते है, वे पुत्र, वृक्ष में बैठे वृक्ष का पालन करते हैं।

वे मधुर गायन करते हुए लोक को मधुर बनाते है। रग तथा कूजन से भी वे लोक को सुन्दर बनाते है।

उनमे भी पुत्र, कोई माता-पिता को पोसते है, बेटा-बेटी को पोसते है और पत्नी को भी पोसते हैं।

... ...

उनमे कोई एक ही पुत्रवाली है, उसी एक पुत्र के आश्रय में रहती है। उसकी वही एक मात्र गति है, अत्यन्त जरा से वह विवश भी है।

पुत्र, उस माता का सुत, भूख की मारी के लिए आहार, प्यासी के लिए पानी लाकर घोंसले मे देता है।

सूखे कड़े के समान चिपके पेट से भी दूनी काँपती वह पुत्र को जोहती खड़ी रहती है।

उसके लिए बड़ी मेहनत से आहार ढूँढकर वह चोच मे ले जल्दी जल्दी माँ के पास जाता है।

जो सुत, तूने उसे मारा, तो वह बुढिया क्या करेगी, वह माता क्या खाये, वह माता क्या पिये ?

पुत्र, कौन उसे खिलायेगा, कौन उसे पिलायेगा, कौन उसे आश्वासन देगा, वह तो एक ही पुत्रवाली है ?

हे सुत, वह अनाथ माता किसे आलिगन करे, किसको, सुत, वह चूमे या किससे प्रियालाप करे।

... ...

पुत्र, तू पत्थर का नही है, न तो तू मिट्टी का है, न तो तू काठ का है, न तो तू निर्मितक ही है।

एक बार ही पुत्र आ जा, जब तक मै जीती हूँ, पुत्र, मै तेरे चरणो पर गिरती हूँ, हे पुत्र, आ जा।

तू ही एक मात्र गति है, तू ही शरण है, तेरे बिना मै दीन-अनाथ हूँ, कैसे मै जीऊँ, कैसे मै जीऊँ।

... ...

किसी की गर्भिणी प्रिय भार्या घोंसले मे है; हे पुत्र, पति के आने की प्रतीक्षा करती हुई आहार चाहती है।

उसकी भी, हे सुत, प्रिय भार्या बच्चो को तथा परिसेवितो को देखती ठीक से सोये।

... ...

वे चिड़ियो के बच्चे मुँह से चूँ चूँ भी न कर घोंसले के भीतर ही नष्ट हो गये।

... ...

दूसरे भी, सुत, सारे प्राणी सुख-इच्छुक, दु ख के विरुद्ध हैं, अपने सुखी होना चाहते है, दुखी नही ।

मत तू किसी को मारे, मत किसी को फटकारे, मत किसी को डाँटे, मत भौह चढाये ।

१४. **प्रज्ञाकीर्ति (कोटहेने)**—विद्यालंकार विश्वविद्यालय मे पालि-सिंहली के ये विभागाध्यक्ष है । सिंहली भाषा मे इन्होने कितनी ही पुस्तके लिखी है । इधर यह देखकर कि पालि की पुस्तकों का प्रचार सीमित होता है, पालि मे बहुत नही लिखते । उनकी कविता के नमूने हैं—

"यह स्वच्छ शीतल जलधारावाली नदी किनारे पर शोभित तरुओ और लताओ से पुष्परज के चय से सम्मानित वनदेवता की सुभगा कन्या-सी दीखती है ।

सो यह तरुण पक्षी युवती प्रिया के साथ-साथ मधुर आम के फल को फोड़कर प्रिया के पूर्ण समागम-सुख का लाभ करते हुए गृह के मनोज्ञ प्रेम का निवेदन करता है ।

अच्छी तरह देखते मुझे अति आश्चर्य होता है कि मोर गणो के बीच मे सर्प सुख से सोता है; सिंह और मृग, ये सदा वैर रखने वाले जन्तु है और ये वही सहोदर की भाँति खेल रहे हैं ।"

१५. **जिनवंस (मिगमुवे)**—इन्होने 'भत्तिमालिनी' नामक पालि काव्य लिखा है—

"चाँदनी के समान मन्दहास से अलंकृत मुखवाले, उत्तर समुद्र में उगे महाहेम बुद्बुद्स्थानवाले हे विरागी, चचल अंग से शोभित गीत गाती हुई मार की कन्याओं को क्या तुमने पराजित नही किया ।

... ...

तोते की वाणी मैना आदि के गीत-स्वर से संकुल गंगा के तरंग की श्वेत वालुका-तलसमान मन्द वायु से कम्पित पुष्परज से धूसरित तुम्हारे जन्म से शालवन अति पुण्य से भासित हुआ ।

कुन्द और चन्द्रबन्धु (कुमुद) के समान मन्दहासवाले सुन्दर आनन से युक्त, लोक को आनन्दित करने के लिए जीर्ण 'आवट्ट' (आवर्त-ससार) के बन्धन मे जन्मे, सूर्यवंशी, लोकबन्धु, अप्रमत्तों के बन्धु हे बुद्धराज, अबन्धु के बन्धु तुम्ही मेरे एक बन्धु हो।

क्षीरसागर के चन्द्रमा के समान तुम श्वेत तथा शीतल हो; जनों के मानस को तुम तृप्त कर देनेवाले हो; तुम्हारे प्रति प्रसन्नता प्रदर्शन मात्र से 'मट्टकुण्डला' आदि मर कर देवता हुईं, तुम्ही कामप्रद मणि हो।"

कवि परिचय

"नील सागर के समान नारियल के बाग मे, देव-मन्दिर समान, अनेक मजिलो की आपण (बाजार) वाले, बिजली के दीपो से हतान्धकार शोभन-मार्गवाले, धर्म मे आस्थावाले सज्जनो के 'मिगम' नामक पुर मे,

कुन्द और हार सी श्वेत वालुका-विस्तृत प्राङ्गणवाले, बौद्ध भिक्षुओ के वास करने के अनेक भवनवाले, सदाचार, दान, दया आदि से पवित्र भिक्षु-वाले साधुओ के शेखर 'अभयशेखर नामक विहार मे,"

१६ **सुमङ्गल (गोवुस्स)**—इन तरुण भिक्षु ने 'मुनिन्दापदान' नामक लघु काव्य लिखा है—

"जहाँ-तहाँ हसयुगल कूज रहे थे, जहाँ-तहाँ पुष्प लताएँ पुष्पित थी; जहाँ-तहाँ स्थल क्रौंच निनाद से युक्त, जहाँ-तहाँ कमल-कुन्द से वासित,

सारस तथा मोर के झुडो से युक्त, मैना-तोता द्वारा आश्रित तथा भौरो से लीन कमलिनी से युक्त था। इसे देख वे मन मे बहुत प्रसन्न हुए।"

ग्रन्थ समाप्ति

" 'उड्डवर' नामक प्रसिद्ध ग्राम मे 'सुवम्मावास' नामक शुभ परिवेण मे...शासन के परम सेवा परायण 'गोवुस्स' नामक ग्राम में उत्पन्न स्थविर ने बुद्धाब्द २५०० (१९५६-५७) मे भक्तिपूर्वक इस ग्रन्थ 'मुनिन्दापदान' को रचा।"

सिंहल मे पालि का पठन-पाठन बहुत बढ़ा हुआ है। भिक्षु तो पालि में दक्षता प्राप्त करना ही चाहते हैं, गृहस्थ भी उससे वंचित नही हैं। विद्या-

लकार और विद्योदय दोनो विश्वविद्यालय विशेषकर इसी उद्देश्य से स्थापित किये गये है, जिनमे पालि के अध्ययन पर ध्यान दिया जाता है। इनमें प्राचीन प्रणाली को उतना आश्रय नही दिया गया है। इसलिये जैसे भारत मे सस्कृत का गभीर पाडित्य लुप्त होता जा रहा है, वैसे ही यहाँ भी पालि के पाडित्य के लिए भय है। पर भारत मे जिस प्रकार से सस्कृत के गम्भीर पाडित्य की रक्षा के लिए 'वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय' ऐसी सस्थाओ की स्थापना करके चेष्टा की जा रही है, उसी प्रकार से सिहल के उपर्युक्त विद्यालय भी अपने उद्देश्य-पूर्ति मे सलग्न हैं।

— ० —

नवाँ अध्याय

९. द्रविड़ प्रदेश में स्थविरवाद तथा पालि

द्रविड प्रदेश के बौद्ध धर्म के सम्बन्ध मे भारत के प्रकरण मे ही लिखना चाहता था, पर उसे यहा अलग लिखने का कारण यह है कि एक तो वहाँ के बौद्ध धर्म का सिहल के साथ, विशेषकर 'महाविहार' से घनिष्ट सबध था। साथ ही वहाँ बौद्ध धर्म एक शताब्दी अधिक स्थित रहा जब कि उत्तर भारत तेरहवी सदी मे ही बौद्ध विहीन हो गया था।

चोळ, पान्ड्य द्रविड प्रदेश को तमिलनाड कहा जाता है। 'चोळ' मे अशोक के समय धर्मदूतो के आने का उल्लेख उनके अभिलेखो मे आता है। द्रविड देश के समीपतम स्थान चित्तलदुर्ग के जटिजटिगा—दामोदर पहाड—मे अशोक शिलालेख प्राप्त है, जो कर्नाटक देश मे है। और यह धर्मदूतो के आने के पहले से है। प्रविड देश मे ब्राह्मण तथा कुछ सख्या मे क्षत्रिय भी आ चुके थे। धर्मदूत किस जगह उतरे थे, उसके बारे मे द्रविडपुत्र अट्ठकथाकार 'धम्मपाल' कहते है—

> "सद्धम्मावतरट्ठाने पट्टने नागसव्हये ।
> धम्मासोकमहाराजविहारे वसता मया ।।"

(नेत्तिप्पकरण-अट्ठकथा के अन्त मे)

अर्थात् सद्धर्म के उतरने के स्थान 'नागसपाद' के धर्माशोक महाराज के विहार मे बसते मैने यह पुस्तक लिखी। 'नेगापट्टन' तजौर जिले मे अब भी समुद्र तटपर एक अच्छा कस्बा है। नेगापट्टन के बन्दरगाह पर उतर कर धर्मदूत धर्म के प्रचार मे सलग्न हुए थे जैसा पिछली शताब्दियो मे उत्तर मे सर्वत्र महायान फैल गया था, वह बात द्रविड़ प्रदेश मे नही

हुई । यहां अन्त तक स्थविरवाद महाविहारीय ही रहा । द्रविड़ प्रदेश के कितने ही द्रविड आचार्यों का आज भी स्थविरवादी देशो मे बड़ा मान है ।

(१) **बुद्धदत्त**--यह शायद बुद्धघोष से पहले सिंहल आये थे । दोनो की भेट समुद्र मे नौका पर हुई थी । इनके ग्रन्थ 'विनयविमिच्छय' में लिखा है--

"इति तम्बपण्णीये परमवेय्याकरणेन तिपिटकनयविधिकुसलेन परमकविजनहृदयपदुमवनविकसनकरेन सब्बस्वसहेन परमरतिकर-वर-मधुर-वचनग्गारेन उरगपुरवासीन वमाल्नकारभूतेन बुद्धदत्तेन रचितोय 'विनयविनिच्छयो' ।"

द्रविड प्रदेश में नदी तट पर स्थित ताम्रपर्णी था और उसी प्रदेश मे 'उरमपुर (आज का उरेउर) नगर था । 'बुद्धदत्त' कवि और परम वैयाकरण थे । इनके ग्रन्थो मे कवित्व स्पष्ट है । इनके ग्रन्थ है--(१) 'विनयविनिच्छय', (२) 'उतरविनिच्छय,' (३) 'अभिधम्मावतार,' (४) 'मधुरत्थविलासिनी' और (५) 'रूपारूपविनिच्छय' ।

'विनयविनिच्छय' मे ये कहते है--

'विनयपिटक-रूपी सागर के पार उतरने मे भिक्षु तथा भिक्षुणियो के लिए जो नाव-सा है,

जो इस विनिश्चय को प्राप्त होते है, वे अत्यन्त उत्तुग तरङ्ग-माला-वाले, शील-समाधि-विघ्न रूप ग्राहोवाले प्रज्ञप्ति रूपी सागर को तर जाते है ।"

'उत्तरविनिच्छय' मे ऐसा व्याख्यान है--

"इस परम उत्तर ग्रन्थ को पार करने पर निर्बुद्धिजनो को सार देनेवाले अमृत-रूपी सागर के पार उतर विनय-पारङ्गत नर मुक्त होता है ।"

'अभिधम्मावतार' मे ग्रन्थकार का परिचय दिया गया है--

"नर-नारियो से भरे, कुल की आकुलता से असकीर्ण, समृद्ध सर्वाङ्ग-परिपूर्ण स्वच्छ-नदी जलवाले,

नाना रत्नो से भरी दूकानो से समाकीर्ण, नाना उद्यानो से शोभित रमणीय 'कावेरिपट्टन' मे,

''उरगपुर' निवासी आचार्य भदन्त बुद्धदत्त द्वारा कृत अभिधम्मावतार' नामक, अभिधर्म मे प्रवेश करानेवाला ग्रन्थ समाप्त।''

'खुद्दकनिकाय' के 'बुद्धवस की 'मधुरत्यविलासिनी' नामक अट्ठकथा के रचयिता भी यही है। जान पडता है और अट्ठकथाएँ लिखी जा चुकी थी और यही केवल इनके हाथ आ पायी। इसमे इन्होने कहा है--

'सद्धर्म मे रत, शीलादिगुण प्राप्त बुद्धसिह द्वारा सत्कारपूर्वक सुचिर काल तक प्रार्थित होने पर इस 'बुद्धवस' की 'अत्थवण्णना' का आरम्भ मै करता हूँ।

बुद्ध की पक्तियो के प्रकाशक प्राचीन अट्ठकथाओ के मार्ग का अनुसरण करते हुए मैन बुद्धवस' की अट्ठकथा बनायी।''

(२) **धम्मपाल**--द्रविड प्रदेश के इस आचार्य की कृतियाँ बुद्धघोष से कम महत्त्वपूर्ण नही है। वास्तव मे बुद्धघोष द्वारा छोडे हुए कार्य की पूर्ति इनके द्वारा हुई है। इनकी रचनाये है--

(१) परमत्थदीपनी (खुद्दकनिकाय के उन ग्रन्थो की अट्ठकथा जिनका बुद्धघोष ने व्याख्यान नही किया है। इस प्रकार उदान, इतिवुत्तक, विमानवत्थु, पेतवत्थु थेरगाथा, थेरीगाथा एव चरियापिटक की यह अट्ठकथा है)

(२) नेत्तिप्पकरणअट्ठकथा

(३) दीघनिकाय-अट्ठकथा-टीका

(४) मज्झिमनिकाय-अट्ठकथा-टीका

(५) सयुत्तनिकाय-अट्ठकथा-टीका

(६) अड्गुत्तरनिकाय-अट्ठकथा-टीका

(७) जातकट्ठकथा-टीका
(८) अभिधम्मट्ठकथा-टीका
(९) बुद्धवंस-अट्ठकथा-टीका
(१०) विसुद्धिमग्ग-टीका

इनका जन्म तमिल प्रदेश के 'काञ्चीपुर' नामक स्थान मे हुआ था। ये बुद्धघोष के पश्चात् हुए, अर्थात् पाँचवी सदी के पश्चात्। युवान्-च्वाङ ने जिन धर्मपाल का उल्लेख किया है, वे उनके गुरु तथा महायानी थे और नालन्दा के आचार्य थे।

इनकी शैली का नमूना है—

"महाकारुणिक, ज्ञेयसागर-पारङ्गत, निपुण, गम्भीर, विचित्र रूप की देशना देनेवाले नाथ की मैं वन्दना करता हूँ" (उदानट्ठकथा)।

"जिस महर्षि की चर्या सम्पूर्ण लोक के हितार्थ है, उस लोक के अग्रनायक, अचिन्त्य प्रताप को मैं वन्दना करता हूँ" (चरियापिटक-अट्ठकथा)।

"विनय-योग्यो के कमल-सरोवर मे जो सद्धर्म की किरणो की माला-वाला है, जिसने महामोह-रूपी तम को चारो ओर से नष्ट करके जाग्रत किया है" (विसुद्धिमग्गटीका)।

(३) **अनुरुद्ध**—ये भी काञ्ची के पास के ही 'कावेरिपट्टन' के रहनेवाले थे। इनके ग्रन्थ है—(१) 'अभिधम्मत्थसङ्गह', (२) 'नामरूप-परिच्छेद' (३) 'परमत्थविनिच्छय'।

इनमे मुख्य ग्रन्थ तो 'परमत्थविनिच्छय' ही है, पर 'अभिधम्मत्थ-सङ्गह' अधिक सरल होने से थेरवादी देशो मे अधिक प्रचलित हो गया और इसी कारणवश इसका अन्यत्र भी प्रचार हुआ।

ग्रन्थकार ने अपना परिचय देते हुए कहा है—

"श्रेष्ठ काञ्ची राज्य के उत्तम 'कावेरी' नगर मे कुलीन कुल में उत्पन्न बहुश्रुत, ज्ञानी,

अव्याहत यशवाले परमार्थ-ज्ञाता अनुरुद्ध स्थविर ने ताम्रपर्णी प्रदेश के 'तजोर' नगर मे बसते हुए,

वहाँ के सघ-प्रधान द्वारा प्रार्थित हो, निर्मल महाविहारवासियो की परम्परा पर आधारित 'परमत्थविनिच्छय' नामक प्रकरण को परमार्थ के प्रकाशन के लिए रचा।"

(४) **कस्सप (चोळीय)**---ये ईसा की बारहवी सदी के अन्त मे हुए। 'सारिपुत्त' से इनकी प्रतिद्वन्दिता थी और अपनी कृतियो मे इन्होने 'सारिपुत्त' की टीकाओ के दोषो का प्रदर्शन किया है। इनकी रचनाएँ है---
(१) 'मोहविच्छेदनी' (अभिधम्ममातिका-टीका, (२) 'विमतिविनोदनी' (विनयकथा-टीका)। सिंहल और द्रविड देश के विद्वानो मे थेरवादी होते हुए भी आपस मे जो प्रतिद्वन्दिता विद्यमान थी, इसकी स्पष्ट झलक हमे इनकी कृतियो मे मिलती है। अपने बारे मे ये कहते है---

नाना जनो के निवास से अतिरमणीय, चोल देश के भार को वहन करने मे कुलपर्वत के समान, कावेरी के पवित्र जल से हितयुक्त घरोवाले, राजाधिराज के उत्तम वश से सुसन्तोषित,

सम्पूर्ण उपभोग तथा परिभोग के धनो से नाना रगो से, भरी दुकानो से सुन्दर नन्दन के स्वामी के समान ही चोळराज का पुर है, वहाँ के श्रेष्ठ, सुन्दर बौद्ध-विहार मे जो रहते है।

. .. .

विशाली कृत, शोभायमान, प्राङ्गणोवाले उस नगर के 'नागानन' नामक विहार मे वास करते हुए,

नाम से धुतङ्गधर महाश्रेष्ठ काश्यप के समान, आकाश में उदित चन्द्रमा की भाँति विस्तृत प्रकाशवाले, दूसरे शास्त्रो और तीनो पिटको मे निपुण, वादी-गजसमूह के विपिन मे सिंह के समान लीला करनेवाले,

उन (काश्यप) ने अभिधम्मपिटक-रूपी सागर मे बिखरे सारभूत

वस्तु-रत्न-समूह को निकाल कर, सम्यक् ज्ञाताओं के गले को भूषित करने के लिए 'मोहविच्छेदनी' नामक रत्नावली बनायी।"

विनयटीका 'विमतिविनोदनी' में उन्होंने जो 'सारिपुत्त संघराज' का खंडन प्रस्तुत किया है, इससे स्पष्ट होता है कि उनकी मान्यता 'अभय-गिरिक' सिद्धान्तों की ओर थी, जिनका उच्छेदन 'सारिपुत्त संघराज' ने किया था। 'कस्सप चोळीय' अन्तिम द्रविड़ पिटक-टीकाकार थे।

(५) **बुद्धप्पिय दीपङ्कर**—इनका समय तेरहवीं शताब्दी है। इनकी रचनाएं है—(१) 'महारूपसिद्धि' (व्याकरण) (२) 'पज्जमधु' आदि। पज्जमधु' पालि की बहुत सुन्दर रचना है। यह एक शतक है। इसके अन्त में इन्होंने 'आनन्द वनरतन' की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

'आरण्यक आनन्द' नामक महायतीन्द्र के समान नित्य प्रबुद्ध पद्मप्रिय का सेवन करनेवाले, बुद्ध के गुणों के अत्यन्त प्रेमी 'बुद्धप्पिय' द्वारा रचे गये 'पज्जमधु' का पान स्थविर-रूपी भँवरे करें।"

बुद्ध सौन्दर्य वर्णन

"इन्दीवर के भीतर स्थित भ्रमर-पंक्ति के समान पञ्च वर्ण-कमलों के सरोवर के तट पर गमन करती, नेत्रकमल की शोभा की यवनिका-सी तुम्हारी श्री-सम्पन्न बरौनी की पंक्ति यहाँ पाप को दूर करे।

... ...

दोनों कन्धों और बाहुओं-रूपी तोरण के बीच गर्दन की धारा पर रखे शिर-रूपी मंगल-घट के ऊपर उत्सव के लिए क्रम से स्थापित नील-कमल जैसे तुम्हारे केश त्रिभुवन के मंगल के लिए होवें।"

इस प्रकार यह 'पज्जमधु' एक सुन्दर काव्य है।

'महाकच्चायन' के व्याकरण को छोड़कर जब 'मोग्गल्लान' ने एक नये पालि-व्याकरण की रचना की, तो 'बुद्धप्पिय' ने कच्चायन-व्याकरण की प्रतिष्ठा के लिए 'महारूपसिद्धि' नामक कच्चायन-व्याकरण पर आधारित ग्रन्थ को प्रस्तुत किया।

इस प्रकार हम देखते है कि केवल अट्ठकथा और दर्शन की उद्भावना करनेवाले ही नही, प्रत्युत बौद्ध कवि भी द्रविड देश मे उत्पन्न हुए। प्राचीन द्रविड भाषा मे भी मणिमेखला' आदि काव्य प्रस्तुत किये गये।

द्रविड प्रदेश से बौद्ध धर्म का उच्छेद

चौदहवी सदी मे मलिक काफूर ने मदुरा को जीता तथा सारे मन्दिरो और विहारा को ध्वस्त कर दिया। वहाँ घनघोर अत्याचार किया गया। प्रसिद्ध यात्री इब्नबतूता ने इस अत्याचार का आखो देखा वर्णन उपस्थित किया है—

'एक रात को सुल्तान एक जगल मे घुसा जहाँ काफिरो ने शरण ली थी। वहाँ दूसरे दिन सबेरे उनको उन काठ के खम्भा मे बाँधकर मार दिया गया, जिनको वे ही रात को ढो लाये थे। तब उनकी स्त्रियो के केशो को खम्भो मे बाँधकर वैसे ही मार कर छोड दिया गया। ऐसा आचरण करते मैने किसी भी शासक को नही देखा।"

बौद्धविहारा को तुर्को ने लूट लिया और इन्हे वे मध्य-एशिया से ही लूटते हुए चल आ रहे थे। ऐसे निर्मम हत्यारो से भिक्षु अपने को पीले कपडो मे रखकर कितने दिना तक बच सकते थे! जो जीवित बचे, वे सिहल भाग गये और बिना ग्वाले की गायो की भाति जो बौद्ध गृहस्थ बच रहे, वे ब्राह्मणो के शिष्य हो गये।

इस तरह द्रविड प्रदेश से बौद्ध धर्म का उच्छेद हो गया।

—०—

तृतीय खंड

अन्यत्र पालि

मेरे स्वामी, आज से हम अपना शरीर और जीवन आप को अर्पित करते है। भन्ते, मैं आपके सिद्धान्तो को अपनाता हूँ।"

इस प्रकार राजा ने वज्रयान-महायान को छोड़ शिन् अर्हन् के थेरवाद को स्वीकार किया।

बर्मा मे कई जातियो का समागम था। तलैङ पुराने और सबसे अधिक सभ्य थे। उत्तर से 'म्रम्म' बड़ी सख्या मे आकर बस गये। इनका तिब्बतियो के साथ वही सम्बन्ध है, जो हमारे साथ ईरानियो का। म्रम्म ही शासक थे।

अनुरुद्ध ने अपने एक मत्री को भेट देकर 'थातोन्' के राजा मनोहर के पास धर्म-ग्रन्थो और बुद्धधातुओं को माँगने के लिए भेजा। थातोन्-राजा का उत्तर था—"तुम्हारे जैसे मिथ्यादृष्टिवाले के पास पिटक और बुद्धधातु नही भेजी जा सकती—केशरी सिह-राज की चर्बी सुवर्ण पात्र मे ही रखी जा सकती है, मिट्टी के बर्तन मे नही।"

अनुरुद्ध यह सुनकर जल भुन गया, और जल तथा स्थल मार्ग से सेना ले थातोन् पर चढा तथा मनोहर और उसके मन्त्रियो को कैदी बना 'अरिमर्दनपुर' (पगान) लाया गया। साथ ही ग्रन्थो के साथ उनके जानकार विद्वान् भिक्षु भी 'पगान' लाये गये। वह बडा ही आकर्षक दृश्य था, जब कि राजा के बत्तीस श्वेत हाथियो के ऊपर त्रिपिटक तलैङ से म्रम्म देश मे लाया गया और उनके साथ बड़े सम्मान और सत्कार के साथ भिक्षु भी लाये गये।

इस विजय का क्या प्रभाव हुआ, इस सम्बन्ध मे एक फ्रेंच विद्वान् ने ये उद्गार व्यक्त किये है—

"युद्धक्षेत्र मे विजयी बर्मी बौद्धिक तौर से पराजित हो गये। इसी समय उस अद्भुत वास्तुविद्या और साहित्य का निर्माण होने लगा, जिससे पगान बौद्ध राजधानी बना दिया गया। उत्तरी और उत्तरपूर्वीय भारत के प्राय. तीन शताब्दियो से पड़ते प्रभावो ने धीरे-धीरे बर्मी लोगों को इस योग्य बना दिया कि राजा अनुरुद्ध की विजय से प्राप्त तलैङ सभ्यता को अपना सकें। उसी समय बर्मी स्वरो और पत्थर तथा ईंटो के अभिलेखो के लिए विदेशी वर्णमाला से साधारण बर्मी-वर्णमाला तैयार की गयी...इस नयी

पहला अध्याय

१. बर्मा में पालि

१. **थेरवाद**—बर्मा तथा सुवर्णभूमि मे अशोक के समय बौद्ध धर्म-दूत 'सोण' और 'उत्तर' गये थे। तब से लेकर पाँचवी सदी तक, अर्थात् लगभग ७०० वर्षों तक थेरवाद ही बर्मा में प्रचलित रहा। 'ह्मावजा' के समीप 'मौङ-गन' मे दो स्वर्णपत्र अभिलेख मिले है, जिनमे दक्षिण की चौथी-पाँचवीं सदी की कदम्ब लिपि तथा पालि भाषा मे उत्कीर्ण है—

"ये धम्मा हेतुप्पभवा तेस हेतु तथागतो आह ।
तेसञ्च यो निरोधो एववादी महासमणो ।।"

वही पर तालपोथी के समान बीस स्वर्ण-पत्रों पर लिखी एक पोथी निकल आयी, जो पालि मे है, जिसमे है—

"अविज्जापच्चया सङ्खारा" आदि ।।

इससे पता लगता है कि पाँचवी-छठी सदी मे बर्मा मे हीनयान स्थविरवाद ही स्थित था, पीछे यहाँ महायान फैला। तलैङ (केरन) वंश के 'शिन् अर्हन्' भिक्षु हुए। वे पिटक और शास्त्रों मे निपुण तथा चतुर थे। शिन् अर्हन अरण्य मे वास कर रहे थे। लोगों ने समझाया और बात उनकी में आ गयी। वे राजा अनुरुद्ध से मिलने गये।

राजा के पूछने पर उन्होने कहा—"मेरा वंश भगवान् बुद्ध का वंश है...मैं भगवान् बुद्ध के गंभीर, सूक्ष्म, पडित-वेदनीय धर्म का अनुगमन करता हूँ।"

"तो, भन्ते, मुझे भी भगवान के उपदेशित धर्म का थोड़ा-सा उपदेश कीजिये।"

शिन् अर्हन् ने राजा अनुरुद्ध को बुद्ध के शुद्ध धर्म का इतना सुन्दर उपदेश दिया कि वह बोल उठा—"भन्ते, आपको छोड़ कोई हमारा शरण नहीं;

वर्णमाला मे त्रिपिटक लेखबद्ध हुआ । बर्मी राजधानी पगान मे धार्मिक शिक्षा के लिए संस्कृत को हटा पालि ने स्थान ले लिया ।

तलैङ भिक्षुओं के चरणो मे बैठकर बर्मी जनता और राज-दरबार ने हीनयान की दीक्षा ली और जल्दी-जल्दी एक के बाद एक अतिभव्य विहार और मन्दिर भारतीय तथा तलैङ शिल्पाचार्यों के तत्त्वावधान मे बनने लगे।

बर्मा से तान्त्रिक बौद्ध धर्म और उसके पुरोहित आरी विदा हुए और एक नया ऐतिहासिक युग आरम्भ सा हुआ।

शिन् अर्हन् के प्रभाव और वाग्मिता तथा राजा अनुरुद्ध की उत्साह-पूर्ण सहायता से बुद्ध का सरल और शुद्ध धर्म सारे ब्रम्म देश मे फैलने लगा । देश के कोने-कोने से सैकड़ो जन आ-आकर भिक्षु-दीक्षा लेने लगे । पगान (अरिमर्दनपुर) स्थविरवाद के केन्द्र के रूप मे सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया । सिंहल के राजा विजयबाहु ने धार्मिक ग्रन्थों और भिक्षुओ को भेजकर शासन की स्थापना में अनुरुद्ध से मदद मागी । ब्रम्म सघ ने उतना ही नही भेजा, प्रत्युत सिंहलराज के लिए एक श्वेत हाथी भी भेजा और बदले मे भगवान् की दन्तधातु के लिए याचना की । इस इच्छा की पूर्ति सिंहलराज द्वारा हुई ।

इससे पहले बुद्ध की कुछ अस्थियाँ अनुरुद्ध को थेर कित्तरा से मिली थीं। इनके ऊपर अनुरुद्ध ने 'स्वेजिगोन' का महास्तूप बनवाना शुरु किया, जिसकी समाप्ति उनके योग्य पुत्र और उत्तराधिकारी 'केनुजित्था' के हाथ से हुई। इस स्तूप के चारो तरफ पूजारत तैंतीस 'नाटो' (देवताओ) के मन्दिर हैं। उनके बारे मे पूछने पर अनुरुद्ध ने कहा था--

"मनुष्य सद्धर्म के लिए नही आना चाहते ! अच्छा तो उन्हें अपने पुराने देवताओं के लिए आने दो; वे इस तरह धीरे-धीरे सच्चे पथ पर आ जायेंगे ।"

अनुरुद्ध ने अपने चार धर्मामात्यों को भेजकर सिंहल से त्रिपिटक की प्रतियाँ मँगवाई । शिन् अर्हन् ने थातोन् के त्रिपिटक से उनकी तुलना करके एक अधिक शुद्ध संस्करण तैयार किया । शिन् अर्हन् के उद्योग से

तैलङ जाति की संस्कृति ने म्रम्म देश को बहुत थोडे समय मे सस्कृत और सभ्य बना दिया ।

पगान में अधुना भी एक विशाल बुद्ध-प्रतिमा खडी है, जिसके दोनो ओर दो मूर्तियाँ हाथ जोडे, जमीन पर घुटने टेके खडी है । इनमे एक मुकुटधारी राजा केन्जित्था की और दूसरी सघराज शिन् अर्हन् की है ।

अनुरुद्ध के अभिलेख मे उत्कीर्ण है—"ओ देयधर्मोयं सच्चदानपति महार श्री अनिरुद्धदेवस्य ।"

केन्जित्था (१०८४-१११२) पिता की भाति योग्य और भक्तिमान था । उसने बहुत से स्तूप और मन्दिर बनवाये, जिनमे पगान का 'आनन्द विहार' बहुत सुन्दर और प्रसिद्ध है । इसकी पहली परिक्रमा की दीवारो मे अस्सी गवाक्ष है, जिनमे बुद्धजीवन के आरम्भ से बुद्धत्व प्राप्ति तक की घटनाएँ अकित है । इन मूर्तियो को 'जातकनिदानकथा' के अनुसार अकित किया गया है । दीवारो और विहार की दलानो पर कलईवाली मिट्टी की चमकीली रूपावलियाँ हैं । प्रत्येक रूपावली पर तलैङ मे सक्षिप्त लेख है । दूसरे तले पर मिट्टी की चमकीली रूपावलियाँ सजायी हुई हैं, जिनमे सम्पूर्ण साढे पाँच सौ (५४७) जातक अकित है । सारे मूर्ति-अंकनो की सख्या १४७२ है ।

शिन् अर्हन् की मृत्यु के समय बर्मा पालि-पिटक का अनुयायी हो चुका था । शिन् अर्हन् के बाद 'पथगू' सघराज हुए । 'नरत्थू' और 'मिन्-शिन्सा' के झगडो मे नरत्थू के कहने पर पथगू मध्यस्थ बने । पथगू को विश्वास देकर नरत्थू ने मिन्-शिन्सा को बुलवाया और अपने यहाँ बाद मे धोखे से विष देकर मरवा डाला । इससे पथगू बहुत नाराज हुए । वे देश छोड़ सिंहल चले गये और नरत्थू के जीने तक वहीं रहे ।

६० वर्ष की अवस्था मे जब संघराज बर्मा लौटे तो उनका बड़ा स्वागत हुआ । वे अधिक दिनो तक नही जी सके । उनके बाद तलैङ भिक्षु 'उत्तरजीव' सघराज हुए । सिंहल स्थविरवाद का केन्द्र था । इसलिए वहाँ बहुत से तीर्थयात्री जाया करते थे । एक बार 'उत्तरजीव' के साथ 'चपटा'

ग्रामवासी एक २० वर्ष का श्रामणेर भी गया। सिहल भिक्षुओं को बातचीत के दौरान में मालूम हुआ कि शिन् अर्हन् अशोक-पुत्र महेन्द्र के उत्तराधिकारी थे और 'उत्तरजीव' 'सोणउत्तर' के। श्रामणेर 'चपट' की उपसम्पदा सिंहल मे हुई, नाम पड़ा 'जोतिपाल'। 'उत्तरजीव' संघराज लौट गये। शिन् अर्हन् ने त्रिपिटक की पाठ-तुलना की थी और थातोन् त्रिपिटक से सिहल त्रिपिटक को अधिक शुद्ध बतलाया था। अब सिंहली उपसम्पदा भी श्रेष्ठ मानी जाने लगी। 'चपट' पूरे दस साल तक सिहल में रहे। उन्होने सोचा--"बर्मा के भिक्षु विधिपूर्वक उपसम्पन्न नही हैं। उनके साथ मै विनयकर्म नही कर सकता। उसके लिए पाँच और भिक्षुओ की आवश्यकता होगी। चार और भिक्षुओ को साथ ले विदेश लौटने के विचार से उन्होने ताम्रलिप्ति (बंगाल) के स्थविर 'सीवली', कम्बोजराज के पुत्र 'तामलिन्द', काञ्चीपुरी के 'आनन्द' महाथेर और लका के 'राहुल' महाथेर को इस कार्य के लिए साथ लिया।

अपने चारो साथियो के साथ ११८१-८२ मे वे पगान लौटे। उन्होने दूसरे भिक्षुओ के साथ विनयकर्म करने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार ११८१-८२ मे बर्मा मे सिहल सघ और म्रम्म सघ नामक दो सघ बन गये।

दोनो की परम्परा बताकर समझाने की कोशिश की गयी, किन्तु इसका कोई असर नही हुआ। 'चपट' राजी नही हुए। सिंहल सघ का आकर्षण इतना अधिक था कि उसके अनुसार भिक्षु बनने के लिए, इरावदी में बनाये गये नाव के बेड़ा मे आकर बहुत से लोग भिक्षु बनने लगे। सिंहल सघ की सख्या और प्रभाव बढने लगा। 'चपट' के साथियो में लंका के राहुल सबसे अधिक पडित थे। वे एक सुन्दरी कन्या पर मुग्ध हो गये। उन्होने चीवर छोडने का निश्चय कर लिया। समझाने-बुझाने का प्रयत्न निष्फल हुआ और राहुल चीवर छोड़ मलाया चले गये।

थोडे दिन बाद 'चपट' भी मर गये। सीवली, आनन्द तथा तामलिन्द पगान मे धर्मप्रचार करते रहे। उनमे मतभेद हुआ था, पर सिंहल संघ बढ़ता ही गया और उसका प्रभाव सारे बर्मा पर पड़ा।

यह वही समय था जब कि कुतुबुद्दीन के सेनापति महम्मद बिन-बख्तियार ने नालन्दा तथा विक्रमशिला को ध्वस्त कर दिया था और सारे भिक्षु इतनी निर्दयता से मारे गये, कि वहाँ के पुस्तकालयो के ग्रन्थो को पढ़कर बतलाने-वाला कोई नही रहा था। भारत मे विहारो और भिक्षुओं के सर्वनाश के साथ महायान (वज्रयान) बौद्ध धर्म भी सदा के लिए लुप्त हो गया।

नरपतिसियू (१२१० ई०) का उत्तराधिकारी 'हतिलो-मितेल' (१२१०–३४ई०) ने बोध गया के मन्दिर के नमूने पर एक मन्दिर 'पगान' मे बनवाया। उसके बाद 'क्यासवा' गद्दी पर बैठा। 'क्यासवा' स्वयं त्रिपिटक का विद्वान् था। कहते हैं उसने त्रिपिटक और उसकी अट्ठकथाओ और टीकाओ का तीन बार पारायण किया था। अपने अन्त पुर की स्त्रियो के लिए उसने 'परमत्थबिन्दु' नामक पुस्तक लिखी थी। 'सद्दबिन्दु' नामक व्याकरण की पुस्तक भी उसने लिखी थी। उसकी कन्या भी विदुषी थी, जिसने 'विभत्त्यत्थ' नामक पालि व्याकरण की एक छोटी पुस्तक रची।

'क्यासवा' के पौत्र 'नरथिहपते' अथवा 'श्रीत्रिभुवनादित्य परमधम्म-राज' (१२५४-८७ ई०) इस वश का अन्तिम राजा था, जिसके साथ ही दो सौ वर्षों से चली आ रही पगान की ज्योति बुझ गयी। १२८७ ई० में कुबलेखान् की सेना ने पगान पर आकर अधिकार कर लिया।

२. **छपट सद्धम्म जोतिपाल**--इनके ग्रन्थ है--(१) 'अभि-धम्मत्थसङ्खेप', (२) 'कच्चायननिद्देस', (३) 'विनयगूळ्हत्थदीपनी', (४) 'नामचारदीपक', (५) 'सीमालङ्कारटीका' आदि। ये कहते है--

"बुद्ध-निर्वाण के १६८० वर्ष पूरा होने पर, वहाँ समृद्ध 'अरिमद्दनपुर' (पेगू) से 'तम्बपण्णि' (लंका) पहुँच, श्री पराक्रमबाहु राजा षष्ठ को पा,

और अवलम्ब ले, धर्म के मलो को अच्छी तरह सुधार कर 'जयवर्धन' (कोट्टे) नामक पुर मे आपत्तिहीन विनयानुसार सीमा बँधवायी;

भिक्षुओ को 'विनय' और 'अभिधम्म' सिखाया; प्रज्ञा से शुद्ध हृदय-

वाले, जनो पर दयालु निर्लोभता, पराक्रम और शील के गुणो से प्रशस्त, श्रद्धा के धनी सम्पूर्ण शिष्यो पर अनुकम्पा करनेवाले,

सारे अर्थों के साथ त्रिपिटक पारगत 'छप्पट' नामक यतिराज के प्रिय शिष्य ने नाना शैली की इस परमसङ्गहवण्णना' को मुनि के शासन के हितार्थ सक्षेप से रची।'

धर्म छिन्न-भिन्न

मगोलो का आक्रमण होने से म्रम्म लोग बिलकुल निर्बल हो गये और इसका लाभ तलैडो ने उठाया। इसी समय उत्तर के घुमन्तू लडाके शान् की ओर बढे और बवडर की भाँति वे सारे बर्मा में फैल गये। उनके सामने न म्रम्म टिके न तलैड। पहले उन्होने मगोलो के सामन्त के तौर पर शासन करते हुए 'पिन्निया' (विजयपुर) को अपनी राजधानी बनाया और फिर 'आवा (रतनपुर) मे शासन शुरू किया १२८७ अपने एक नेता 'वरेरु' की अधीनता मे दक्षिणी बर्मा मे पेगू को अपना दूसरा केन्द्र बनाया। इन बर्बरो के प्रहार से और बातो के साथ विद्या को भी बहुत ह्रास हुआ, लेकिन ये भी सास्कृतिक प्रभाव से अक्षुण्ण नही रह सके। उनका एक राजा 'थीहथू बौद्ध हो गया। उसके दो भाई भी बौद्ध थे। मगोल विजय के बाद यही तीनो बर्मा के शासक थे। बौद्ध धर्म चीन और तिब्बत मे था, इसलिए शान उससे अपरिचित नही थे। 'पिन्निया' मे धीरे-धीरे कितने ही विहार बन गये, पठन-पाठन होने लगा। कुछ शान सैनिक तान्त्रिक बौद्ध धर्म के भी माननेवाले थे, अत उसका भी प्रभाव पडा।

३ **धम्मचेतिय** (१४७२-९६ ई०)—पेगू के राजा की लडकी का नाम 'शिन्-शा-बू' था। वह पहले आवा और फिर पेगू मे रानी रह चुकी थी। वह अन्त पुर से भाग निकलना चाहती थी। 'धम्मचेति' और उसके साथी भिक्षुओ ने उसे पढाया था। उनकी सहायता से भाग निकलने मे वह सफल हुई और फिर पेगू की रानी बनी। दोनो भिक्षुओ मे एक को राज्य का भार दे वह मुक्त होना चाहती थी। दोनो मे समानभाव होने से इसका निर्णय उसने भाग्य पर छोड दिया। एक दिन एक तरह के भिक्षापात्रो मे

से एक मे गृहस्थ का वस्त्र और दूसरे मे चीवर रख दिया । गृहस्थ परिधान-वाला पात्र 'धम्मचेतिय' के हाथ मे पडा । 'धम्मचेतिय' ने चीवर छोड शिन्-शा-बू की कन्या से ब्याह कर लिया । शिन्-शा-बू 'श्वेदगान-चैत्य' मे जा धर्म सेवा करने लगी । आज 'श्वेदगान' का वैभव शिन-शा-बू की ही देन है ।

'धम्मचेत्तिय' के समय तलैंड का सितारा फिर चमका । यद्यपि वह गृहस्थ हो गया था, पर धर्म पर उसका अनुराग था । इधर जो सघ मे शिथिलता आ गयी थी, उसको हटाने के लिए उसने २२ भिक्षु ६ जनवरी १४७६ मे सिंहल भेजे । दो जहाजो मे ग्यारह-ग्यारह भिक्षु अनुयायियो सहित चले । उनके अगुआ 'चिनदूत' और 'रामदूत' थे । दोनो पोतो मे 'चिनदूत' का पोता २३ फरवरी १४७६ को लका पहुँचा और उसने सिहल के राजा भुवनेकबाहु को 'धम्मचेतिय' का स्वर्णपत्र और भेट दी । रामदूत का पोता प्रतिकूल हवा होने के कारण आफत मे पड गया और वह १४ जून को सिंहल पहुँचा । कल्याणी गगा को सीमा बना सिंहल के भिक्षुओ ने उन्हे उपसम्पदा दी ।

२१ अगस्त १४७६ ई० को एक पोत ग्यारह भिक्षुओ और उनके शिष्यो के साथ बर्मा लौटा । दूसरे पोत पर आफत आयी और छह भिक्षु और उनके चार शिष्य मर गये । बाकी तीन वर्ष बाद १२ नवम्बर १४७६ मे बर्मा लौटे ।

ये कल्याणी सीमावाले भिक्षु हुए । राजा 'धम्मचेतिय' ने सारे राज्य मे घोषणा कर दी––जो श्रद्धालु है और सिहल मे उपसम्पदा प्राप्त भिक्षुओ से उपसम्पदा लेना चाहते हैं, यह कल्याणी सीमा मे आवे, और उपसम्पदा लें । जो नही चाहते , वे जैसे है , वैसे ही रहे । राजा की घोषणा का प्रभाव हुआ और कुछ ही समय मे १५,६६६ भिक्षुओ ने नयी उपसम्पदा ली । अरम्मसघ सिंहलसघ मे परिणत हो गया । धम्मचेतिय ने इसी सघ को मान्यता दी । प्राचीन सोण-उत्तर की परम्परा सर्वथा उच्छिन्न हो गयी ।

४. आधुनिक काल (१४७६) थेरवाद की 'महाविहार-परम्परा बर्मा में मानी जाने लगी। चपट जोतिपाल के समय भी कुछ पुरुष लोग सोण-उत्तर के अनुयायी रहे थे। उस समय बर्मा कई राज्यो मे बँटा हुआ था। १५२७ ई० मे 'थोहन्ब्वा' (श्रीहंसवा) आवा के सिंहासन पर बैठा। वह बडा लोभी और क्रूर था तथा विहारो की सपत्ति लूटने से बाज नही आता था। यही नही, उसने धार्मिक पुस्तको मे आग लगवा दी। भिक्षुओ को भोजन के लिए आमन्त्रित कर आने पर उन्हे मरवा दिया। इस प्रकार से मारे गये भिक्षुओ की सख्या तीन हजार थी। पर बर्मी जनता धर्म के बिना रह नही सकती थी। बौद्ध धर्म ने ही उसे सभ्यता, सस्कृति, विद्या दी थी।

थोहन्ब्वा के अपने एक बर्मी सहायक अधिकारी मिनक्यिानोड से यह अत्याचार सहा नही गया। १५४३ ई० मे उसने ही उसे मार डाला। इसका कारण बताते हुए उसने कहा—'वह त्रिरत्न को सम्मान नही करता था, मानव प्राण को कुछ नही समझता था, दूसरे पुरुषो की स्त्रियो से बलात्कार करता था।" राजा की हत्या के बाद इसने राज्य लेने से इन्कार कर दिया और विरक्त हो अरण्य मे चला गया।

पालि ग्रन्थो का बर्मा मे कितना प्रचार था, यह पगान के अभिलेख से ज्ञात होता है। तुङ्डवीन प्रान्त के शासक तथा उसकी पत्नी ने १४४२ ई० मे भिक्षुसघ को अनेक उपहार दानस्वरूप भेट किये। उनमे और वस्तुओ के साथ पुस्तके भी थी जिनकी यह सूची वहाँ पर दी हुई है—

१. पाराजिककण्ड
२. पाचित्तिय
३. भिक्खुनीविभङ्ग
४ विनयमहावग्ग
५ विनयचूळवग्ग
६ विनयपरिवार
७ पाराजिककण्ड-अट्ठकथा
८ पाचित्तियादि – अट्ठकथा

९. पाराजिककण्ड – टीका
१०. तेरसकण्ड – टीका
११. विनयसङ्ग्रह – अट्ठकथा (महा)
१२. ,, ,, ,(चूळ)
१३ कङ्खावितरणी – अट्ठकथा
१४. खुद्दकसिक्खा – टीका (प्राचीन)
१५. ,, ,, (नवीन)
१६. कङ्खा-टीका (नवीन)
१७. विनयगण्ठिपद
१८. विनय-उत्तरसिञ्चय-अट्ठकथा
१९. विनयसिञ्चय-टीका (उत्तरकालीन)
२०. विनयकन्धनिद्देस
२१ धम्मसङ्गणि
२२ विभङ्ग
२३. धातुकथा
२४. पुग्गलपञ्ञत्ति
२५ कथावत्थु
२६. मूलयमक
२७. इन्द्रिययमक
२८. तिकपट्ठान
२९. दुकतिकपट्ठान
३०. दुकपट्ठान
३१. अट्ठसालिनी – अट्ठकथा
३२. सम्मोहविनोदनी – अट्ठकथा
३३. पञ्चपकरण – अट्ठकथा
३४. अभिधम्म – अनुटीका
३५. अभिधम्मत्थसङ्गह – अट्ठकथा
३६. ,, ,, –टीका
३७. अभिधम्मत्थविभावनी – टीका
३८. सीलक्खन्ध
३९. महावग्ग
४०. पाथेय्य
४१. सीलक्खन्ध – अट्ठकथा

४२ महावग्ग – अट्ठकथा
४३. पाथेय्य – अट्ठकथा
४४. सीलक्खन्व – टीका
४५. महावग्ग – टीका
४६. पाथेय्य – टीका
४७. मूलपण्णास
४८. मूलपण्णास – अट्ठकथा
४६ मूलपण्णास – टीका
५०. मज्झिमपण्णास
५१. मज्झिमपण्णास – अट्ठकथा
५२. मज्झिमपण्णास – टीका
५३. उपरिपण्णास
५४ उपरिपण्णास – अट्ठकथा
५५. उपरिपण्णास-टीका
५६ सागाथवग्गसयुत्त
५७. सागाथवग्गसयुत्त – अट्ठकथा
५८. सागाथवग्गसयुत्त – टीका
५६ निदानवग्गसयुत्त
६०. निदानवग्गसयुत्त – अट्ठकथा
६१. खन्धवग्गसंयुत्त
६२. खन्धवग्गसयुत्त – टीका
६३ सळायतनवग्गसयुत्त
६४. सळायतनवग्गसयुत्त – अट्ठकथा
६५. महावग्गसंयुत्त
६६. एकदुकतिक – अङ्गुत्तर
६७. चतुकनिपात – अङ्गुत्तर
६८. पञ्चनिपात – अङ्गुत्तर
६६. छसत्तनिपात – अङ्गुत्तर
७०. अट्ठनवनिपात – अङ्गुत्तर
७१. दसएकादसनिपात – अङ्गुत्तर
७२. एकनिपात – अङ्गुत्तर – अट्ठकथा
७३. दुकतिकचतुकनिपात – अङ्गुत्तर – अट्ठकथा
७४. पञ्चादि – अङ्गुत्तर – अट्ठकथा

७५. अङ्गुत्तर – टीका (१)
७६. अङ्गुत्तर – टीका (२)
७७. खुद्दकपाठ – मूल – अट्ठकथा
७८. धम्मपद – मूल – अट्ठकथा
७९. उदान – मूल – अट्ठकथा
८०. इतिवुत्तक – मूल – अट्ठकथा
८१ सुत्तनिपात – मूल – अट्ठकथा
८२. विमानवत्थु – मूल – अट्ठकथा
८३. पेतवत्थु – मूल – अट्ठकथा
८४. थेरगाथा – मूल – अट्ठकथा
८४. थेरीगाथा – मूल – अट्ठकथा
८६. पाठचरिय
८७. एकनिपातजातक – अट्ठकथा
८८. दुकनिपातजातक – अट्ठकथा
८९. तिकनिपातजातक – अट्ठकथा
९०. चतुक – पञ्च – छनिपातजातक – अट्ठकथा
९१. सत्त – अट्ठ – नवनिपातजातक – अट्ठकथा
९२. दस-एकादसनिपातजातक – अट्ठकथा
९३. द्वादस – तेरस – पकिण्णकनिपात – जातक – अट्ठकथा
९४. वीसति जातक – अट्ठकथा
९५. जातत्तकी – सोतत्तकी – निदान – अट्ठकथा
९६. चूळनिद्देस
९७. चूळनिद्देस – अट्ठकथा
९८. महानिद्देस
९९. ,,
१००. जातक – टीका
१०१. दुमजातक – अट्ठकथा
१०२. अपदान
१०३. ,, –अट्ठकथा
१०४. पटिसम्भिदामग्ग
१०५. पटिसम्भिदामग्ग – अट्ठकथा
१०६. पटिसम्भिदामग्गगण्ठिपद
१०७. विसुद्धिमग्ग – अट्ठकथा

१०८ विसुद्धिमग्ग – टीका
१०९ बुद्धवस – अट्ठकथा
११० चरियापिटक – अट्ठकथा
१११ नामरूप – टीका (नवीन)
११२ परमत्थविनिच्छय (नवीन)
११३ मोहविच्छेदनी
११४ लोकपञ्ञत्ति
११५ मोहनयन
११६ लोकुप्पत्ति
११७ अरुणवति
११८ ळगतिदीपनी
११९ महस्सरसिमालिनी
१२० दसवत्थु
१२१ सहस्सवत्थु
१२२ सीहळवत्थु
१२३ पेटकोपदश
१२४ तथागतुप्पत्ति
१२५ धम्मचक्क (० पवत्तनसुत्त)
१२६ धम्मचक्क – टीका
१२७ दाठाधातुवस
१२८ दाठाधातुवस – टीका
१२९ चूळवस
१३० दीपवस
१३१ थूपवस
१३२ अनागतवस
१३३ बोधिवस
१३४ महावस
१३५ महावस – टीका
१३६. धम्मदान
१३७ महाकच्चायन
१३८ न्यास
१३९ थन् – ब्यिन् – टीका
१४० महाथेर – टीका

१४१. रूपसिद्धि – अट्ठकथा
१४२. रूपसिद्धि – टीका
१४३. बालावतार
१४४. वुत्तिमोग्गल्लान
१४५. पञ्चिका – मोग्गल्लान
१४६. पञ्चिका – मोग्गल्लान – टीका
१४७. कारिका
१४८. कारिका – टीका
१४९ लिङ्गत्थविवरण
१५०. लिङ्गत्थविवरण – टीका
१५१. मुखमत्तसार
१५२. मुखमत्तसार – टीका
१५३. महागण
१५४. चूळगण
१५५. अभिधान
१५६. अभिधान – टीका
१५७ सद्दनीति
१५८. चूळनिरुत्ति
१५९. चूळसन्धिविसोधन
१६० सद्दत्थभेदचिन्ता
१६१. सद्दत्थभेदचिन्ता – टीका
१६२. पदसोधन
१६३. सम्बन्धचिन्ता – टीका
१६४. रूपावतार
१६५. सद्दावतार
१६६. सद्धम्मदीपक
१६७. सोतमालिनी
१६८. सम्बन्धमालिनी
१६९. पदावहामहाचक्क
१७०. ण्वादि (मोग्गल्लान)
१७१. कतचा (कृतचक्र)
१७२. महाका (महाकच्चायन)
१७३. बालतज्जन

१७४. सुत्तावलि
१७५. अक्खरसम्मोहच्छेदनी
१७६. चेतिद्धीनेमिपरिगाथा
१७७. समासतद्धितदीपनी
१७८. बीजक्ख्यम्
१७९. कच्चायनसार
१८०. बालप्पबोधन
१८१ अत्थसालिनी
१८२. अत्थसालिनी – निस्सय
१८३. कच्चायन – निस्सय
१८४ रूपसिद्धि – निस्सय
१८५. जातक – निस्सय
१८६. जातकगण्ठि
१८७. धम्मपदगण्ठि – निस्सय
१८८. कम्मवाचा
१८९ धम्ममत्त
१९० कलापपञ्चिका
१९१. कलापपञ्चिका – टीका
१९२ कलापसुत्तप्रतिञ्ञासकु
१९३ प्रिण्डो – टीका
१९४. रत्तमाला
१९५. रत्तमाला – टीका
१९६. रोगनिदान
१९७. दक्ष्गुण
१९८ दक्ष्गुण – टीका
१९९. छन्दोविचिति
२००. चन्दप्रुत्ति (चान्द्रवृत्ति)
२०१. चन्द्रपञ्चिकर (० पञ्जिका)
२०२. कामन्दकी
२०३. धम्मपञ्ञापकरण
२०४. महोसट्ठि
२०५. सुबोधालंकार
२०६. सुबोधालंकार – टीका

२०७. तनोगत्रुद्धि
२०८. तण्डि (दण्डिन)
२०९ तण्डि – टीका
२१० चङ्कदास
२११. अरियसच्चावतार
२१२. विचित्रगन्ध
२१३ सद्धम्मुपाय
२१४. सारसङ्गह
२१५. सारपिण्ड
२१६ पटिपत्तिसङ्गह
२१७ सूलछारक
२१८. पालतक्क (बालतर्क)
२१९ त्रक्कभासा (तर्कभाषा)
२२० सद्दकारिका
२२१ कासिकाप्रुत्तिपलिनि (काशिकावृत्ति-पालिनी–पाणिनि)
२२२ सद्धम्मदीपक
२२३ सत्यतत्वबोध
२२४ बालप्पबोधनप्रुत्तिकरण
२२५ अत्थव्याख्यम्
२२६ चूळनिरुत्तिमञ्जूसा
२२७ मञ्जूसाटीकाव्याख्यम्
२२८. अनुटीकाव्याख्यम्
२२९. पकिण्णकनिकाय
२३० चत्थपयोग
२३१ मत्थपयोग
२३२. रोग्यात्रा
२३३ रोग्यात्रा – टीका
२३४. सत्येकविपस्वप्रकास
२३५. राजमत्तन्त
२३६. परासव
२३७. कोलद्धज
२३८. बृहज्जातक
२३९. बृहज्जातक – टीका

२४०. दाठाधातुवस – मूल – टीका
२४१. पतिगविवेक – टीका
२४२ अलंकार – टीका
२४३ चलिन्दपञ्चिका
२४४. वेदविधिनिमित्तनिरुत्तिवण्णना
२४५. निरुत्तिब्याख्यम्
२४६. वुत्तोदय
२४७ वुत्तोदय – टीका
२४८ मिलिन्दपञ्ह
२४९. सारत्थसङ्गह
२५० अमरकोस – निस्सय
२५१ पिण्डो – निस्सय
२५२. कलाप – निस्सय
२५३ रोगनिदानब्याख्यम्
२५४ दब्बगण – टीका
२५५. अमरकोस
२५६ दण्डी – टीका
२५७ ,, ,,
२५८ ,, ,,
२५९ कोलध्वज – टीका
२६० अलकार
२६१. अलकार – टीका
२६२ भेसज्जमञ्जूसा
२६३. युद्धजेय्य
२६४. यतनप्रभा – टीका
२६५ विरग्घ
२६६ विरग्घ – टीका
२६७. चूळमणिसार
२६८. राजमत्तन्त – टीका
२६९. मृत्युवञ्चन
२७०. महाकालचक्क
२७१. ,, ,, – टीका
२७२. परविवेक

२७३. कच्चायन – रूपावतार
२७४. पुम्भरसारी
२७५. तक्तावतार (तत्त्वावतार)
२७६. „ „ –टीका
२७७. न्यायबिन्दु
२७८. न्यायबिन्दु – टीका
२७९. हेतुबिन्दु
२८०. हेतुबिन्दु – टीका
२८१ रिक्कणिययात्रा
२८२. रिक्कणिययात्रा – टीका
२८३. बरित्तरताकर (वृत्तरत्नाकर)
२८४. स्यारामितिकब्य
२८५ युत्तिसङ्गह
२८६ युत्तिसङ्गह – टीका
२८७ सारसङ्गह – निस्सय
२८८. रोगयात्रा – निस्सय
२८९ रोगनिदान – निस्सय
२९० सद्दत्थभेदचिन्ता – निस्सय
२९१. पारा – निस्सय
२९२. स्यारामितिकब्य – निस्सय
२९३ बृहज्जातक – निस्सय
२९४. रत्तमाला
२९५ नरयुत्तिसङ्गह

(४) **वपिन्नौङ** (**१५५१–८१**)—तुङ्गू का राजा 'मिन्क्यिन्यो' (१४८६-१५३१) धार्मिक राजा था। उसने अनेक विहारों का निर्माण किया। उसके पुत्र ने 'पेगू' को जीत लिया और क्रमश. 'मर्तबान' और 'प्रोम' पर भी अधिकार कर लिया। तलैङ देश अभी भी म्रम्म लोगों के हाथ मे था और वहाँ के बर्मी राजा के उत्तराधिकारी ने सम्पूर्ण बर्मा को एक सूत्र मे बाँधने का कार्य सम्पन्न किया। यह व्यक्ति 'वपिन्नौङ' (१५५१-८१) था और अकबर का समकालिक था। तलैङ लोगों के विद्रोह को शान्त कर उसने पहले 'पेगू' को लिया, फिर दक्षिण और उत्तरी

बर्मा ही नहीं, शान् राज्यों को भी अपने अधीन किया। वह बौद्ध धर्म का भक्त था। उसने रंगून के 'श्वेदगोन्', प्रोम के 'श्वेशन्दा' और पगान के 'श्वेजिगोन्' आदि विहारों की अनेक बार यात्रा की तथा और कितने ही विहार तथा चैत्य आदि बनवाये। शान् लोगों में धर्मप्रचार का विशेष प्रबन्ध उसने किया। उसका राज्य बर्मा से बाहर कम्बोज, अयोध्या (स्याम) और सुखोदया (ऊपरी स्याम) आदि तक फैला हुआ था, जहाँ उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र अनुरुद्ध को उपराज बनाकर भेजा था।

वयिन्नौङ के बाद राजशक्ति क्षीण हुई। १५९९-१६०० ई० में अराकानियों ने पेगू नगर को लूटकर ध्वस्त किया। बर्मी लोग तलैङों से एका नही कर सके।

अलौङ्प्या (१७५२-६०) के साथ हम उस समय मे आ जाते हैं, जब अंग्रेजों ने भारत मे अपनी नीव डाली थी। तलैङों ने आवा पर अधिकार कर लिया, पर यह नही झुका। इसने तलैङों को उत्तरी बर्मा से निकाल बाहर किया। १७५३-५ मे इसने तलैङों के गढ़ रगून को भी ले लिया। अलौङ्प्या ने तलैङों के विद्रोह मे भिक्षुओं को भी नही छोड़ा, और उन्हे हाथियों से कुचलवा कर मरवाया, क्योंकि षडयन्त्र मे वे भी सम्मिलित थे। जो भिक्षु बच गये, वे सित्तङ्ग नदी के पार के नगरो मे भाग गये। बर्मी सैनिकों ने हाथ लगे तलैङ स्त्री-पुरुषों को दास बनाकर बाजार में बेंच डाला। न बच्चे अपनी माताओं को खोज पाते थे, न माताएँ अपने बच्चों को; सारे देश में क्रन्दन मचा था। इस प्रकार से अलौङ्प्या ने बडी निर्दयता से तलैङों को दबाया। यह एकता बड़ी कीमत देकर कायम की गयी। पिछले दो सौ वर्षों में दोनों जातियाँ धीरे-धीरे इतनी घुलमिल गयीं कि आज तलैङ नगरों मे सर्वत्र बर्मी भाषा ही बोली जाती है और गाँवों में ही तलैङ बोलनेवाले शेष रह गये हैं। ब्याह-शादी के कारण भी दोनों जातियाँ बहुत घुलमिल गयी हैं।

(५) **धार्मिक विवाद**--दूसरा विवाद न रहने पर १७०० ई० के

आसपास बर्मी भिक्षुओ मे चीवर कन्धे पर रखने के ढग को लेकर विवाद खड़ा हो गया। उत्तरासग (ऊपरी चीवर) को दाहिना कन्धा खोल कर पहनने को ठीक बतलाने वाले एकासिक कहे जाते और दोनो कन्धों को ढाँकनेवाले पारुपणवादी। एकासिका पक्ष का समर्थन प्रभावशाली स्थविर गुणाभिलंकार ने किया। पारुपणवादी (प्रारोपण) राजा होने से धीरे-धीरे सम्पूर्ण बर्मा पारुपण-वादी हो गया। राजा कीर्त्ति श्री राजसिंह के समय स्याम से भिक्षु बुला कर सिंहल में भिक्षुसंघ स्थापित किया गया। राजा तमिल ब्राह्मणो से प्रभावित था। उसने शर्त रखी कि भिक्षु सिर्फ गोवी (उच्च) जाति के ही लोग बनाये जायें। बौद्ध धर्म के लिए यह तीव्र लांछन की बात थी; पर आज भी बहुसंख्यक स्यामी-निकाय इसको मानता है। दूसरी जातिवाले कैसे इसको मानते ? १८०० ई० मे 'अम्बगहपति' के नेतृत्व में कुछ सिंहल तरुण उपसम्पदा लेने बर्मा पहुँचे। बर्मी सघराज ज्ञानाभिवंश ने उनकी प्रार्थना मंजूर की। उन्हे उपसम्पदा मिल गयी। अगोवी भिक्षुओं के लिए अब रास्ता खुल गया। उस समय बर्मा की राजधानी अमरपुर थी और वही इनकी उपसम्पदा हुई। इसीलिये ये 'अमरपुरनिकाय' के कहे गये। इसके बाद बर्मा से उपसम्पदा प्राप्त भिक्षुओ का एक और भी सम्प्र-दाय लंका मे स्थापित हुआ, जिसे 'रामञ्ञनिकाय' कहते है।

'बोदाबुपया' के समय (१७८२-१८१९ ई०) ये ही घटनाएँ घटीं। उसके बाद बोग्यिदा (१८१९-३७ ई०) राजा हुआ। इसने राजधानी को अमरपुर से आवा मे परिवर्तित की। उसे सिंहासन से वंचित होना पड़ा। दो और राजाओं के बाद 'मिन्-दोन् मिन्' (१८२२-७७ ई०) गद्दी पर बैठा। उसके समय में उत्तरी बर्मा मे शान्ति रही; कुछ प्रगति भी हुई। वह राजधानी को माडले ले गया। इसी के सभापतित्व मे लगातार तीन वर्षों तक त्रिपिटक का संशोधन किया गया। फिर उसे ७२९ संगमरमर की पट्टियों पर खोदा गया, जो आज भी मांडले के पास 'कुथो-दाव्' विहार में मौजूद हैं।

६. परतन्त्र और स्वतन्त्र बर्मा—मिन-दोन्-मिन् के मरने के आठ वर्ष बाद ही १८८५ ई० में माडले पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया। अन्तिम राजा थीबो (शिव) को कैदी बनाकर भारत भेज दिया गया। अंग्रेजो ने बर्मी और तलैङ दोनों के झगड़े को जारी रखा। केरनों का ईसाई हो जाना उनके काम में सहायक हुआ। १९४८ में स्वतंत्र होते ही बर्मा ने बौद्ध धर्म को अपना राज-धर्म घोषित किया। इस राजनीतिक इतिहास की उथल-पुथल मे बर्मा में बौद्धधर्म भी चलता रहा। छापेखानो के खुल जाने पर त्रिपिटक के नये संस्करण निकले।

१९५४-५६ तक बर्मा मे 'छट्ठ सङ्गायन' का आयोजन रहा और साथ में मे पालि त्रिपिटक तथा अट्ठकथाएँ आदि मुद्रित हुईं। इसी संस्करण को आधार बना कर सम्पूर्ण त्रिपिटक भिक्षु जगदीश काश्यप के नेतृत्व मे भारत मे देवनागरी मे प्रथम बार सम्पादित हुआ।

बर्मा तथा थाई भूमि मे भिक्षुओ के लिए कविता करना अनुचित समझा जाता रहा है, इसलिए उन्होंने व्याकरण तथा अभिधर्म को अपना मुख्य विषय बनाया। वहाँ (बर्मा) उन्नीसवीं सदी में 'गन्धवस' (ग्रन्थों का इतिहास) तथा 'सासनवंस' (बौद्धधर्म का इतिहास) नामक दो ग्रन्थ लिखे गये। 'गन्धवस' मे सम्पूर्ण पालि ग्रन्थो की सूची दी हुई है तथा बर्मा में लिखे गये ग्रन्थ वही पर द्रष्टव्य है[1]।

७. पञ्ञासामी—ये उन्नीसवीं सदी मे हुए और इन्होंने 'सासनवंस' नामक बौद्ध धर्म का इतिहास विशेषकर बर्मा के लिए लिखा। इसे 'पालि टेक्स्ट सोसायटी' (लन्दन) ने १८९७ ई० में प्रकाशित किया। ये मिन्-दोन्-मिन् राजा के शिक्षक थे।

---

१. द्र०—भरतसिंह उपाध्याय, "पालि साहित्य का इतिहास," पृ० ७७-५८१।

इस ग्रन्थ मे दस परिच्छेद है—

(१) बुद्धचरितादि तथा नव स्थानो मे शासन-प्रतिष्ठा की कथा
(२) सिंहल द्वीप मे शासन-प्रतिष्ठा की कथा
(३) सुवर्णभूमि मे०
(४) 'योनक' राष्ट्र मे०
(५) वनवासी राष्ट्र मे०
(६) अपरान्त राष्ट्र मे०
(७) काश्मीर-गान्धार राष्ट्र मे०
(८) 'महिंसकक' राष्ट्र में०
(९) महाराष्ट्र मे०
(१०) चीन राष्ट्र मे०

भौगोलिक नामो के सम्बन्ध मे 'पञ्ञासामी' ने जो गलती की है, वह क्षन्तव्य है। उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध मे ऐसा ही भौगोलिक अज्ञान हमारे देशो में था।

—— o ——

दूसरा अध्याय

२. थाई देश में थेरवाद तथा पालि

(१) **थाई जाति**—थाई जाति का शान् जाति से सम्बन्ध है। थाई भूमि में आने से पहले वह 'युन्नन्' में रहती थी। बंगाल की खाड़ी से प्रशान्त महासागर तक मुख्यतया चीनी-मंगोल मुखमुद्रावाली जातियाँ बसती हैं—(१) तिब्बती-बर्मी, (२) थाई-चीनी, और (३) मानख्मेर। इनमें सबसे पुरानी जाति मानख्मेर है। आज इस जाति की शाखाएँ चम्पा से लेकर नेपाल तक तथा बर्मा होते हुए कम्बोज तक पायी जाती है, ये हैं—उभय लाहुल के लाहुली, मलाणी, कनौरी, माना-नीत्ति के मारछा, जोहि-याली, गरब्यागी, राजी, मगर, गुरुंग, तमंग, नेवार, किराती, लेपचा, नागा, केरन आदि। इनको तिब्बती लोग मोनूपा कहते हैं। उनके रहने के कारण प्रदेश का नाम मोनूयुल् है। इनमें नेवार, बर्मा के मोन् (तलैङ), केरेन भी है। ईसवी सन् के आरम्भ या कुछ पहले वे सामन्ती सभ्यता कायम करने मे सफल हुए थे। पीछे ये बौद्ध धर्म के सम्पर्क में आये। उनके आदिम राजाओं के पूर्वज प्रायः भारतीय राजवंशों के सामन्त थे। इसलिए ब्राह्मण-धर्मों के प्रति आग्रह होना उनका स्वाभाविक था।

(२) **नान्‌चाउ**—जब भारत में सर्वत्र महायान फैल गया, और नालन्दा विक्रमशिला के एक से एक धुरंधर विद्वान् उसके अनुयायी हो गये, तो बर्मा, स्याम आदि मे भी उसी की दुन्दुभी बजने लगी। थेरवाद की पुनः स्थापना के समय कम्बोज मे महायान था। थाई मूलतः उत्तर के रहनेवाले थे, जहाँ अब भी स्वायत्त शासित जिले है और स्याम की तरह थेरवाद चलता है। थाईयों (ताईयों) की एक शाखा 'च्वाङ ताई' है। आजकल च्वाङो की संख्या ६६ लाख है। क्वाङसी प्रदेश में उनका बहु-मत है और अब उस प्रदेश को च्वाङ स्वायत्त भूखण्ड कहते है, जिसकी

राजधानी नालङ्ग एक समृद्ध नगर है। क्वाङ भूखण्ड के उत्तर में 'क्वेदचाउ' प्रदेश है, जहाँ १२ लाख पुमी बसते हैं। दोनों के सहोदर, दक्षिण युन्नन के दो अलग-अलग स्वायत्त इलाकों में ताई बसते हैं। यद्यपि उनकी सख्या मुश्किल से दो लाख होगी, पर उनके भाई-बन्धु बर्मा (शान्), स्याम (थाई) और लाव के निवासी हैं।

किसी समय याङ्ची नदी के दक्षिण की चीनी भूमि ताई (थाई) जाति की थी। हान् (चीनी) जाति दक्षिण की ओर बढी और उसने कितने ही 'क्वाङ-ताइयो' को आत्मसात् कर लिया। दक्षिणी युन्नन् मे ताईयो का प्राधान्य बराबर बना रहा। इन्हीं की भूमि से होकर ईसा पूर्व के भारत में चीन का व्यापार मार्ग था, जिससे जानेवाले चीनी माल को ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी के चीनी यात्री चङक्याङ ने बल्त्रिया (बलख) मे देखा था। इस मार्ग के पूर्वी छोरवाले मार्ग के स्वामी ताई लोग थे। इस व्यापार मार्ग से उनको बहुत लाभ था। इसलिए इसका रास्ता कितने ही समय तक चीन को भी मालूम नही था। इसी मार्ग द्वारा भारतीय सस्कृति वहाँ पहुँची। कितने ही भारतीय वहाँ बस गये। सामन्त राजकुमार भी भाग्य-परीक्षा के लिए वहाँ पहुँचे, जिन्होने उसे गान्धार नाम दे दिया।

यह भूमि ऐतिहासिक काल मे ननचाउ के नाम से चीन मे प्रसिद्ध थी। संस्कृति के प्रभाव में सारे ताई नही आये। विषम विकास जातियो में देखा ही जाता है। थाङ काल में नान्चाउ के राजा का उल्लेख मिलता है। यहाँ के राजा ईमोशून ने चीन मे दूत भेजा था। बर्मा की पुरानी राजधानी को ८३२ ई० में लूटकर ध्वस्त करने वाले ननचाउ के थाई (ताई) ही थे। चीनी उन्हें लड़ाकू मानते थे। उनको सन्तुष्ट रखने के लिए थाङ-सम्राटों ने वैसे ही उनके राजा को दामाद बनाया, जैसे वे तिब्बत के सम्राट् को बनाते थे। दसवीं सदी के आसपास वे दक्षिण की ओर जाकर बसने लगे। उनकी वीरता को देखकर कम्बुज राजा उन्हें अपनी सेना मे रखते थे। कम्बुज की शक्ति का ह्रास देखकर थाई सरदार अपने छोटे-छोटे पहाड़ी राज्य स्थापित करने में सफल हुए। वर्तमान उत्तरी थाई भूमि (स्याम)

को पहले से ही मोनों ने ले लिया था; जहाँ मेनाम् नदी की एक शाखा के किनारे उनका समृद्ध नगर 'हरिपुजय' बसा था। इसे आजकल ल्यङमह् कहा जाता है। यही थाईयो का सबसे पुराना राज्य था। उन्ही के कारण युन्नन् (चीन) के थाई आज भी थेरवादी है, जब कि सारे चीन मे केवल महायान का नाम सुना जाता है। बर्मा का हरिपुजय से सम्बन्ध ग्यारहवी सदी मे हुआ। ईचिङ और फाहियान् की यात्राओ के उद्धरणो से कितने ही विहारों का वर्णन हमें प्राप्त होता है। सातवी-आठवी सदी मे भारत तथा बृहत्तर भारत मे सर्वास्तिवाद की समाप्ति हो गयी थी। महायान ने सबसे पहले उसे ही उदरसात् किया। पर यहाँ उसका विनय बराबर चलता रहा, क्योंकि महायान का अपना विशेष विनय नही था। विनय सर्वास्तिवाद (मूलसर्वास्तिवाद) का आज भी तिब्बत मे चलता है। उसी के अनुसार भिक्षुओं को उपसम्पदा दी जाती है, यद्यपि तिब्बत का बौद्ध धर्म महायान से भी चार कदम आगे बढा हुआ वज्रयान है।

(३) **हरिपुजय**—हरिपुंजय मे थाई सबसे पहले थेरवाद में आये। उनके इतिहास 'जिनकालमाली' मे आया है—हरिपुजय राज्य १२२३ ई० मे स्थापित हुआ। कम्बोज पहले ही निर्बल हो चुका था, जिसके राज्य में हरिपुजय पडता था। १२८० ई० मे पगान के ध्वस्त होने पर थाई सरदारों को खुला खेलने का मौका मिला। थाई सरदार 'चिङमई' ने 'योन' राष्ट्र में हरिपुजय से लगा चिङमेई नगर १२६०–६२ ई० मे बसा कर उसे अपनी राजधानी बनायी। उस समय सुखोदया कम्बोज की पश्चिमी राजधानी थी, जिसे थाई सरदार इन्द्रादित्य ने १२३० ई० मे ले लिया था। सुखोदया को प्रमुख स्थान दिलाने वाला राम (खम्हेङ) था। राजनीतिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टियो से उनका शासन बहुत महत्त्व रखता है। इसी ने कम्बोज लिपि की सहायता से थाई लिपि बनायी। यह थेरवाद का वैसा ही भक्त था, जैसा बर्मा का धम्मचेतिय या पगान का अनुरुद्ध। वह प्रारम्भ मे अपने लेख में लिखता है—

"त्रिभूमिक २३शक कुक्कुट वर्ष के चौथे मास की पूर्णिमा गुरुवार को समाप्त

हुई। श्री सज्जालय-सुखोदया के राजा लिन्तङ तथा रामख्येङ के पौत्र ने सज्जनालय पर कई वर्ष राज्य करने के बाद 'त्रैमूमिक' माता को अभिधर्म पढ़ाने के लिए लिखा। उसके आधार ग्रन्थ थे—'जिनालंकार', 'सारत्थ-दीपनी', 'बुद्धवंस', 'सारत्थसगह', 'मिलिन्दपञ्ह', 'अनागतवंस,' 'चरिया-पिटक, 'लोकपञ्ञत्ति', 'समन्तपासादिका'। अब प्रश्न उठ सकता है, राज-वंश के राजा ने कैसे ऐसे विद्वत्ता-पूर्ण ग्रन्थ को लिखा। उत्तर है—परमभट्टा-रक त्रिपिटक पारगत थे। उन्होने भदन्त 'अनोनदस्सी' 'उपसेन', जैसे पंडितों से अध्ययन किया था और हरिपुंजयवासी भदन्त बुद्धघोष से भी पत्राचार करके पढ़ा था। 'चिङ-मई' (हरिपुंजय-योनरट्ठ) ने थेरवाद को अपनाने में शीघ्रता की थी। इसलिए थाइयो मे सबसे पहले उन्होने पालि के ग्रंथ लिखे। रतनप्रज्ञ के ग्रन्थ 'जिनकालमाली' से बहुतसे उद्धरण आगे दिये गये है। पन्द्रहवी सदी के आरम्भ मे वही के स्थविर 'बोधिरसि ने 'सिंहलबुद्धरूपनिदान' और 'चामदेवीवंस' नामक दो इतिहास ग्रन्थ लिखे।

(४) **अयोध्या, द्वारवती**—१३५० ई० मे एक थाई राजकुमार ने सुखोदया से दक्षिण अयोध्या की स्थापना की और वही रामाधिपति सुवर्ण-दोल के नये नाम से अपना अभिषेक कराया। सुखोदया निर्बल हो चुकी थी। १३७८ई०मे सुखोदयाधिपति ने अयोध्या का सामन्त होना स्वीकार किया, और १४३८ई० में सम्पूर्ण विलयन भी। हरिपुजय (चिङमई) ने अधिक उत्तर तथा बर्मा के समीप होने से कुछ समय उनसे अपने को बचाया, पर अप्रैल१५५६ई०में उसने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खो दिया। अब बर्मा की सारी पूर्वी सीमा थाई राज्य से मिली हुई थी और किसी काल का एक बड़ा साम्राज्य कम्बोज अब स्याम की दया पर था।

बर्मा ने स्याम को पराजित कर १५६६-८४ ई० तक अपने अधीन रखा। इससे पहले स्याम में भारतीय शकाब्द चलता था। किसी समय सिंहल, कम्बोज आदि मे भी शकाब्द का रिवाज था। नेपाल मे अठारहवीं सदी के बाद तक शकाब्द चलता रहा। बर्मा मे किसी बड़ी विजय के उपलक्ष्य में ६३८ ई० मे एक सवत् (शक) चलाया गया, या बाहर से लिया गया।

अपनी विजय के चिह्न स्वरूप बर्मा ने अपने संवत् को स्याम पर लादा। इस प्रकार १५६८ के बाद वहाँ भी वही संवत् चलने लगा, जिसे भारतीय शकाब्द से भिन्न करने के लिए चूल (छोटा) शक कहते है।

अयोध्या ने सुखोदया से राज्य के साथ-साथ थेरवाद को भी उत्तराधिकार में पाया। यद्यपि बर्मा और स्याम दोनों जबर्दस्त थेरवादी देश थे, पर युद्ध के समय शत्रु के साथ कोई दया दिखलाने के लिए तैयार नही होता। अत. बर्मी सेनाओ ने स्याम के बौद्ध विहारो और मूर्त्तियों के साथ वैसा ही व्यवहार किया, जैसा बख्तियार खिलजी की सेना ने नालन्दा और विक्रमशिला की मूर्तियों के साथ किया होगा। धातु की विशाल मूर्त्तियों पर सोने की परत चढ़ी हुई थी। उसे निकालने के लिए मूर्त्तियो को तोड़कर आग में डाल दिया गया। अयोध्या की तो सचमुच ईंट से ईंट ऐसी बजी कि उसका फिर से बसाना असभव समझा गया और नये राजा फाया-ताक्-सिन् ने वहाँ से हटाकर बकाक मे राजधानी बनाना पसन्द किया।

अयोध्या काल की एक और महत्त्वपूर्ण बात है, स्याम का सिंहल के धर्म-ऋण से उऋण हो जाना। पोर्तुगीजो के धर्मान्ध शासन (१५२७–१६५८ ई०) ने सिंहल से बौद्ध धर्म को उखाड़ फेंकने मे कोई कसर उठा नहीं रखी। सिहल के कैथोलिक उन्ही की देन है। सिंहलियो ने अपनी संस्कृति और धर्म की रक्षा के लिए देश के बिचले पहाड़ो को मेवाड़ बना रखा था, पर भिक्षु-संघ नष्ट हो चुका था। सिंहल से निमन्त्रण आने पर अयोध्या के राजा ने १७५२ ई० मे महास्थविर उपालि के साथ कितने ही स्थविरों को भेजा, जिन्होने सिंहल में भिक्षु-संघ की स्थापना की। आज सिंहल के भिक्षुओं की अधिक सख्या 'स्यामी-निकाय' (उपालि-वंश) की है।

'ताक्-सिन्' के बाद सेनापति चक्री ने अपने राजवंश की स्थापना की, जो आज तक चला जा रहा है।

(५) **वजिरञाण संघराज**—ये १८०४–५२ ई० तक सघराज रहे और बाद में १८५२–६८ ई० तक स्याम के राजा। वास्तविक अधिकारी राज यही थे, पर प्रभावशी दबारियों ने अराजवंशिक माता के सौतेलेपुत्र

को गद्दी पर बैठाया। 'वजिरञाण' ने कोई विरोध नही किया। उसने अपने व्यवहार से सौतेले भाई राम तृतीय के हृदय को जीत लिया। अप्रैल १५५१ ई० मे उसके मरने पर २०वर्षके बाद उसे ही गद्दी पर बैठाया गया। 'वजिरञाण' के पत्रो और पद्यो से मालूम होता है कि उनका पालि पर असाधारण अधिकार था। ये अंग्रेजी भी बोल लेते थे। अंग्रेजी और फ्रेंच इन दो साम्राज्यो के बीच में रहकर स्याम की सत्ता को बनाये रखने मे इनका बड़ा हाथ था। इन्होने संघराज होने के समय अपने 'रामञ्ञ-(बर्मा) निकाय' मे सुधार कर 'धम्मयुत्तिक' नाम से उसे आगे बढाया था; पर स्याम मे भिक्षुओ की सबसे अधिक संख्या 'महानिकाय' को ही मानती थी। 'महानिकाय' तेरहवी सदी से पहले से ही थाईयो मे चला आ रहा था। अशान्ति के समय लाखों बर्मी शरणार्थी स्याम मे चले आये, जिनके साथ उनके भिक्षु (रामञ्ञ) भी स्याम मे आ बसे, जो उन्नीसवी सदी मे स्याम के राजवंशिको को अपनी ओर खींचने मे सफल हुए, जिसके उदाहरण स्वय 'महामुकुट वजिरञाण' थे। प्राय· डेढ सौ वर्षों तक उन्ही मे से स्याम के संघराज होते थे। अभी हाल मे ही 'महानिकाय' का सघराज बना है।

(६) **ईसाई बनाने का षड्यन्त्र**—सत्रहवी सदी के पूर्वार्ध मे ही डच, फ्रेंच और अंग्रेज स्याम को हडपने में लगे हुए थे। अयोध्या के राजा 'नरइ' (नारायण) को अपने प्रभाव मे लाने मे (पहले अंग्रेजो और पीछे फ्रांसिसियो का समर्थक) एक ग्रीक महाशय 'फलकोन' सफल हो गये। वे अपने ही नये कैथोलिक नही बने, प्रत्युत थाईयो को भी वे कैथोलिक बनाना चाहते थे। बौद्ध धर्म बहुत गहराई तक पहुँच गया था। नरई को आगे बढने की हिम्मत नहीं हुई। जब फ्रेंच तोपों के साथ फ्रेंच सेना भी बंकाक पहुँच गयी, तो स्यामी फ्रांसीसियों के उद्देश्य को समझने लगे। उन्होने 'फलकोन' को फासी पर लटका दिया। लुई की सेना कठिनाई से भाग सकी। स्याम मे उतने ही ईसाई न बन सके, जितने वियतनाम मे है।

स्याम में भी काव्य-रचना बौद्ध भिक्षुओं के लिए उचित नहीं समझी

जाती, इसलिए व्याकरण आदि ही उनके लिखने के विषय होते हैं। आधुनिक यंत्रों में मुद्रित त्रिपिटक स्याम में ही पहले पहल छपा।

(७) **रतनपञ्ञा** (१५१७)—ऊपर इनके ग्रन्थ 'जिनकालमाली' का उल्लेख किया जा चुका है। पालि के इस पद्यमय इतिहास में ये लिखते हैं—

त्रिरत्न-वन्दना

"ज्ञानरूपी किरण, श्रेष्ठ धर्म-रूपी किरण द्वारा मोह के अत्यन्त घने अन्धकार को नष्ट कर, जिसने विनय के पात्र तीनों बन्धुरूपी कमलों को खिलाया, उस बुद्धरूपी सूर्य की मैं वन्दना करता हूँ।

सघ-सहित बुद्ध और धर्म को नमस्कार कर मैंने जो बहुत पुण्यप्रवाह प्राप्त किया, उससे नष्ट-बाधावाला हो, मैं 'जिनकालमाली' नामक ग्रन्थ को कहता हूँ।"

हरिपुंजय वर्णन

"शास्ता के परिनिर्वाण के १२०४ वर्ष बाद (६६१ ई०) इस चूल शकाब्द के बाईसवें वर्षमें फाल्गुन पूर्णिमा को 'वासुदेव' नामक ऋषि ने 'हरिपुजय' नगर को बसाया। उसके दूसरे साल 'चम्मदेवी' ने लवपुर (लाव) से जाकर 'हरिपुजय' में राज्य किया। उसके बाद चूल-शकाब्द ४०६ में आदित्य राजा का हरिपुज्य में अभिषेक हुआ। उसके पश्चात् चूल-शकाब्द ४२५ में हरिपुंजय नगर में महाधातु का प्राप्त होना पुरानी कथा में आता है, जो वहाँ के राजवंश के इतिहास-क्रम में प्राप्त होता है...प्राचीन समय में वासुदेव, सुक्कदन्त, बुद्धजटिल...प्रव्रज्या में साधु हुए।"

लंका द्वीप में भिक्षु-संघ की स्थापना

"वे स्थविर एक मत हो क्रमशः सिंहल द्वीप में 'वनरतन' स्वामी के पास जा, अभिवादन कर, मधुर वचन से सत्कार कर वहाँ रहने लगे। उन स्थविरों और 'रम्मनिवासी' (रामञ्ञवासी) छः महास्थविर—सम्पूर्ण उनतालीस स्थविरों ने सिंहल द्वीप में प्रचलित अक्षरपरम्परा, तदनुसार

ध्यानादि और उच्चारण-क्रम को सीख, उत्तम अर्थ की कामना से उपसम्पदा पाने की प्रार्थना की।

शास्ता के परिनिर्वाण से १९६८ वर्ष बाद (१४२५ ई०) शक सवत् ७८६ में महासर्प वर्ष में द्वितीय आषाढ़ शुक्ल पक्ष द्वादशी शनिवार, तेरस तिथि, ज्येष्ठा नक्षत्र के योग में विद्यमान सिंहलराज (षष्ठ पराक्रमबाहु) द्वारा 'कल्याणी' नामक नगर में बने बेड़े में आरोहण कर, 'कम्मवाचाचार्य' 'वनरतन महास्वामी' और उपाध्याय 'धम्मचारी' के साथ बीस गणवाले संघ द्वारा उपसम्पादित किये गये।

वे स्थविर उपसम्पन्न हो दन्तधातु, 'समन्तकूट' के पदचिह्न और सोलह महास्थानों की वन्दना कर आचार्य-उपाध्याय से अनुज्ञा ले क्रमश. लौट आये। दुर्भिक्ष के भय से वे सिंहल द्वीप मे चार ही मास रहे। लौटते समय उन्होने उपाध्याय के कार्य के लिए महाविक्रमबाहु और उत्तम प्रज्ञ दो स्थविरो एवं वन्दना के लिए बुद्धधातु माँगी। उनमे विक्रमबाहु भिक्षु होने से १५ वर्ष के और महाउत्तमप्रज्ञ १० वर्ष के थे। जहाज में आते समय ब्रह्म स्थविर और सोम स्थविर से भेट हो गयी। उन दोनो महास्थविरो को भी समुद्र मे ही उपसम्पन्न कर 'अयोध्यापुर' में अयोध्याधिपति 'परमराज' की रानी के गुरु शीलविशुद्धि महास्थविर और सद्धर्मकोविद महास्थविर को सम्पादित किया...उसके बाद 'सज्जनालय' मे पहुँच वहाँ 'बुद्धसागर' स्थविर को उपसम्पादित कर पीछे सुखोदया मे छ वर्ष रहे।"

—:०:—

तीसरा अध्याय

३. कम्बोज और लाव में थेरवाद तथा पालि

१. लाव में थेरवाद

लाव के लोग भी थाई जाति के ही हैं। हरिपुंजय के स्यामी लोगों ने जब थेरवाद स्वीकार किया, तब लावो का भी थेरवादी होना स्वाभाविक था। थाईयों का यह जातीय धर्म होने से युन्नन् ताई भी थेरवादी हैं, यद्यपि उनके पडोस का चीन महायानी है। थेरवाद की सरलता और भिक्षुओं की विनय की पाबन्दी आदि गुण सरल हैं। वहाँ पालि पिटक ही पढा जाता है, लाव भिक्षुओं ने पालि मे लिखा भी होगा, पर उनके बारे मे मालूम नहीं हो सका। वही बात युन्नन् के ताई थेरवादियों के बारे मे है।

२. कम्बोज में थेरवाद

(१) **ब्राह्मण धर्म**—ईसा की सातवी सदी तक कम्बोज मे बौद्धो की नही, ब्राह्मणो की प्रधानता थी। अंकोरवात तथा अंकोरथोम की इमारते भी इसी बात को बतलाती हैं। कम्बोज के हजारो सस्कृत शिलालेख भी इसी की पुष्टि करते है। यशोवर्मा (८५६–६०६ ई०) ब्राह्मणो का अनुयायी मालूम होता है; पर अकोरथोम प्रासाद के बिलकुल पास उसने बौद्ध विहार की प्रशस्ति खुदवाई।[1]

पहले श्लोक मे ही शंकर की स्तुति करके वे तीसरे मे कहते हैं—

"जिसने स्वयं अवगत करके इस भव के बन्धन से मुक्ति के साधनों को तीनों लोक को समझाया, जिसने निर्वाणवर को प्रदान किया, उसी वन्द्यचरण, करुणाहृदय बुद्ध को नमस्कार करता हू।"

उसी लेख में आगे लिखा है—

---

१. द्र०—"बौद्ध संस्कृति" पृ० १७४–१७५।

"राजाधिराज कम्बुज भूमिपति राजा यशोवर्मा ने बौद्धो के हित के लिए इस सौगताश्रम को बनवाया।"

इससे ज्ञात होता है कि ब्राह्मणो के एकान्त प्रेमी कम्बुज राजवश ने बौद्धो के प्रभाव को स्वीकार किया।

इस अभिलेख में कुलाध्यक्ष द्वारा सम्मान आदि के नियम बताये गये हैं, जो बहुत कुछ शैवाश्रमों (शैव मठो) की भाँति ही हैं—

"विद्या-सम्पन्न आचार्य, जिसने बौद्ध शास्त्र और व्याकरण पढ़े हैं, उसका सम्मान ब्राह्मण से कुछ कम होना चाहिए।"

इससे ज्ञात होता है कि कम्बोज देश मे ब्राह्मणो का सम्मान बौद्धो से अधिक था।

(२) **बौद्ध प्रभाव**—महापराक्रमबाहु (११६४-६७ ई०) ने कम्बुज राजा के पास उपाहन के साथ एक राजकन्या भी भेजी थी। बर्मा के राजा ने उसे पकड़ मँगवाया। उसके प्रतिशोध मे पराक्रम ने नौ सैनिक अभियान भेजकर बर्मा के कुसुमी बन्दरगाह को लुटवाया। कम्बोजराज जयवर्मा सप्तम (११८२-१२०२) ने पेगू पर अपनी विजयपताका फहराकर बदला लिया। जयवर्मा सप्तम के राज्य की सीमा चीन से बगाल की खाडी तक थी। जयवर्मा के मरने के बाद परम शासन लिखा गया, जिससे ज्ञात होता है कि वह बौद्ध था—कट्टर नही, क्योकि ब्राह्मणो का प्रभाव अभी कम नही हुआ था। उसके एक शिलालेख मे प्राणिमात्र के शरण बुद्ध पूजित हैं, फिर बोधिमार्ग पूजित है, जिससे ससार का अर्थ स्पष्ट होता है, उस संघ का वर्णन है, फिर कल्पद्रुम के सजीव अवतार लोकेश्वर की वन्दना है। इससे पता लगता है कि उसका आदर स्वरूप पालि बौद्ध धर्म नहीं, महायान बौद्ध धर्म था। इसी लेख मे आगे कहा गया है—"उसने चम्पा जाकर युद्धक्षेत्र में वहाँ के राजा, को पकड़ कर फिर दयावश उसे राज्य देकर छोड़ दिया। उसके इस गौरवपूर्ण कृत्य को दूसरे राजाओं ने सुना...राजा ने अपने गुरु के परिवार को राजवंशिक की भाँति सेनापति की उपाधि दी[1]"।

१. द्र०-"बौद्ध संस्कृति", पृ० १८३।

जयवर्मा सप्तम (११८२-१२०२ ई०) ने 'राजविभार' नामक नगर बसाकर उसे "मुनीन्द्रमाता" (प्रज्ञापारमिता) की सेवा के लिए दान में दे दिया। प्रज्ञापारमिता को अपनी माँ की मूर्ति के रूप में उसने बनवाया था। प्रज्ञापारमिता की मूर्ति से प्रकट है, कि वह महायान को मानता था, जो उस समय नालन्दा और विक्रमशिला में मान्य था। राजा और भूमिपतियों ने ३,१४० गाँव मन्दिर को दिये थे, जिनमें सब मिलाकर १२,६४० व्यक्ति रहते थे। वहाँ पर ६६,६२५ स्त्री-पुरुष देवपरिचारक थे। बर्मी और चम्पा (के बन्दी) सब मिलाकर ७६,३६५ व्यक्ति होते थे। चीनी इतिहास में भी जयवर्मा सप्तम का 'पगान' को जीतकर अपने राज्य में मिलाने का उल्लेख है।

राजा ने भारी परिमाण में चाँदी-सोना और हीरे आदि इस मन्दिर को भेट-स्वरूप दिया था। वहाँ पर ६७० विद्यार्थी अपने अध्यापकों के साथ रहते थे। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इसने ११७ आरोग्यशालाएँ और ६६८ भैषज्यशालाएँ स्थापित की थी, जिनके खर्चे मे ८३८ गाँव लगे थे।

जयवर्मा सप्तम के पश्चात् इन्द्रवर्मा द्वितीय, फिर जयवर्मा अष्टम, फिर श्रीन्द्रवर्मा और श्री इन्द्रजयवर्मा गद्दी के अधिकारी हुए। इन शासन-कालों में कम्बोज देश पतनोन्मुख हो गया। चीन मंगोलो के हाथ मे था। कुबलेखान ने पहले चम्पा लिया, फिर वहीं से दूत कम्बुज को करद बनाने के उद्देश्य से १२९६ ई० में वहाँ गया। इसमे वह सफल न हुआ, पर कम्बोज के लोगों के बारे मे उस दूत ने बहुत-सी ज्ञातव्य बाते लिखी है। भिक्षुओं के बारे में वह कहता है—

"वे अपना शिर मुंडाते हैं, पीले कपड़े पहनते है, दाहिना कंधा नंगा रखते हैं; वे मांस-मछली खाते है, पर मद्य नही पीते। जिन पुस्तकों का वे पाठ करते हैं, उनकी संख्या बहुत है और वे तालपत्र पर लिखी रहती हैं। इन भिक्षुओं में कुछ के पास सोने के डंडेवाली पालकियाँ और सोने के मूठवाले छाते होते हैं। गम्भीर बातों पर राजा इनसे सलाह लेता है। वहाँ बौद्ध भिक्षुणियाँ नहीं हैं।"

इससे यह पता चलता है कि तेरहवी सदी मे वहाँ पर महायान-वज्रयान का प्रभाव कम होकर पालि बौद्ध धर्म का प्रभाव बढ चुका था। माँस-मछली का ग्रहण तथा मद्य से परहेज इसी कारणवश था।

वह फिर लिखता है–

"शैव अपने जूडो को लाल या सफेद कपडो से बांधते है। उनके मन्दिर बौद्ध मन्दिरो से छोटे होते है, क्योकि ताव (ब्राह्मण) धर्म उतना समृद्ध नही है, जितना कि बौद्ध धर्म वे दूसरे के हाथ से भोजन नही ग्रहण करते और न खुले आम खाते है। गृहस्थो के लडके पढने के लिए भिक्षुओ के पास जाते है और बडे होने पर गृहस्थ बनने के लिए (घर) लौट आते हैं लेख साधारणतया काले मृगछाले पर लिखा जाता है।"

कम्बोज के हजारो शिलालेख सस्कृत मे गद्य-पद्य रूप मे प्राप्त है।

(३) **कम्बुज भाषा और संस्कृत**—आज भी वहाँ ब्राह्मण धर्म कम नही है, पर धार्मिक क्षेत्र मे पालि का आधिपत्य है। ख्मेर (कम्बोज) लिपि प्राचीन पल्लव तथा चालुक्य लिपियो से उद्भूत है, जिनसे बृहत्तर भारत तथा सिहल की भी लिपियाँ विकसित हुई। आज भी कम्बोज भाषा मे सस्कृत शब्दो का प्रयोग प्राप्य है, जिनका उच्चारण उन्होने अपने अनुरूप कर लिया है। उदाहरणस्वरूप सस्कृत का 'देवता' शब्द सामान्य ख्मेर भाषा में 'तेपदा' और साहित्यिक ख्मेर भाषा मे 'तेवदा' हो जाता है। इसी प्रकार से अन्य शब्द भी है।

(४) **महायान से हीनयान**—कम्बुज मे बौद्ध धर्म वज्रयान तक नही पहुँचा था। वह महायान तक ही जा पाया था। वज्रयान मे पहुँचने पर उसे भारत, जावा, सुवर्णद्वीप (सुमात्रा) आदि की ही भाँति नष्ट होना पडता। लेकिन हीनयान (पालि पिटक) ने आकर उसकी रक्षा कर ली। स्याम (थाई) उस परिवर्तन में सहायक हुआ, जहाँ थेरवाद पहले ही पहुँच चुका था। थाई 'सुखोदया' को कम्बोज से छीन चुके थे। सिहल से लाकर पालि बौद्ध धर्म को पहले स्यामियो ने स्थापित किया।

यह लिख चुके है कि वर्मी आचार्य चपट' के साथियो में भी एक कम्बोज राजकुमार तामलिन्द' था जो कई वर्षो तक सिंहल रहा था। इसी प्रकार बर्मा और स्याम मे थेरवाद के प्रचार और सिंहल-भिक्षु-सघ स्थापित होने का प्रभाव कम्बुज पर भी पडा और वहाँ धीरे-धीरे महायान से हीनयान मे परिवर्तन हो गया। आज वहाँ महायान का नाम नही है, यद्यपि पूर्व पडोस मे ही वियेतनाम है, जो 'इन्दोचीन' में महायानी देश रह गया है।

सिंहल तथा बर्मा के प्रचलित पालि ग्रन्थो का कम्बोज में भी प्रसार है, पर वहाँ के विद्वानो ने भी कुछ ग्रन्थ लिखे होगे जो अन्य देशो के लोगो को अज्ञात ही है।

आज कम्बोज, थाई और लाव तीनो ही थेरवादी देश हैं।

—:०:—

चौथा अध्याय

४. आधुनिक भारत में पालि

भारत ने तो चौदहवी सदी के प्रारम्भ में ही बौद्ध धर्म से छुट्टी पा ली थी, परन्तु उस पर बौद्ध धर्म ने जो अमिट सांस्कृतिक प्रभाव छोड़ा था, उसके कारण उसे फिर उसे बुलाना पड़ा। इसके निमित्त स्वरूप कितने ही व्यक्ति हैं, जिनमें पहला नाम अनगारिक धर्मपाल का आता है, जिन्होंने अपनी मातृभूमि सिंहल को छोड़कर अपना शेष सम्पूर्ण जीवन भारत में इस कार्य के लिए दिया और अन्त में वहीं 'सारनाथ' में इस शरीर-कलेवर को १९३३ ई० मे छोड़ा। इनके बाद डाक्टर अम्बेडकर ने लाखों की सख्या मे भारत-पुत्रों को त्रिरत्न की शरण में खड़ा कर दिया। आज जो बौद्ध धर्म भारत को अपनी ओर खींच सका है, वह पालि बौद्ध धर्म ही है।

पालि-पिटक-ग्रन्थों का भारतीय भाषाओं में विशेषकर बंगला और हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किया गया। बंगाल में 'चटगाँव' वाले पहले से ही बौद्ध थे, पर बंगला में संख्या में उतने ग्रन्थों का अनुवाद न हो सका, जितना हिन्दी में आज तक सम्पन्न हो पाया है। 'दीघनिकाय' (राहुल, काश्यप), 'मज्झिमनिकाय' (राहुल), 'संयुतनिकाय', (काश्यप, धर्मरक्षित), 'अङ्गुत्तरनिकाय' (आनन्द कौसल्यायन), 'विनयपिटक' (राहुल) एवं 'जातक' (आनन्द कौसल्यायन) आदि के अनुवाद हिन्दी में हो चुके हैं। 'अभिधम्मपिटक' के मूल ग्रन्थों का अनुवाद करनेवाले तथा पढ़नेवालों दोनों ही के लिए रूखा-सा है। अतः इस ओर प्रवृत्ति नहीं हो रही है; परन्तु 'अभिधम्मपिटक' के सारभूत ग्रन्थ' अभिधम्मत्थसङ्गह' (आचार्य अनुरुद्ध कृत) का हिन्दी अनुवाद भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने कर दिया है।

भारत में आज लाखों नर-नारी बौद्ध-धर्म में दीक्षित हुए हैं और हो रहे हैं। इनके शील-शरण की वाणी पालि में उच्चरित होती हैं। भारत का

ही मूल पालि साहित्य सिंहल, बर्मा, कम्बोज, तथा स्याम की लिपियों में छपा था। रोमन लिपि में भी वह 'पालि टेक्स्ट सोसायटी' की कृपा से प्रकाशित हो गया था। परन्तु भारत की किसी भी लिपि में उसका न होना लज्जा की बात थी। हाल में ही नव नालन्दा ने इस कार्य को प्रारम्भ किया और कुछ ही वर्षों में विद्युत गति से नागरी में सम्पूर्ण त्रिपिटक-प्रकाशन कार्य को भिक्षु जगदीश काश्यप तथा उनकी शिष्यमण्डली ने सम्पन्न कर डाला। इस महत्त्वपूर्ण प्रकाशन का श्रेय भिक्षु जगदीश काश्यप को है।

काश्यप जी तथा पं० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय के निर्देशन में वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय भी अट्ठकथाओं के नागरी सस्करण का प्रकाशन प्रारम्भ करनेवाला है और इस सम्बन्ध मे सर्वप्रथम 'जातकट्ठकथा' को लिया गया है।

पालि साहित्य का वृहद इतिहास हिन्दी में डाक्टर भरतसिंह उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत हो चुका है। वर्तमान ग्रन्थ को ३५० पृष्ठों मे लिखना था, इसलिए बहुत विस्तार नहीं किया जा सका। पालि-भाषा-काव्य के सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिए 'पालि काव्यधारा' लिख चुका हूँ, जो जल्दी ही 'साहित्य अकादमी' से प्रकाशित होने जा रही है।

—:o:—